विज्ञप्ति

जहाँ तक मैं समझता हूँ कि विभिन्न विश्वविद्यालयों के बी०ए०के छात्रों के लिए संस्कृत साहित्य के इतिहास की एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता थी जिसमें निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार न अधिक संक्षिप्त और न अधिक विस्तृत ही सामग्री होती। इस पुस्तक का प्रणयन इसी दृष्टिकोण से किया गया है।

प्रयास यह किया गया कि भाषा सरल तथा सरस हो एवं भाव स्पष्ट हों। विषय का स्पष्टीकरण प्रायः शीर्षक देकर किया गया है जिससे छात्र-छात्राओं के मस्तिष्क पर अधीत विषय के संस्कार बन सकें। विशिष्ट कवियों के काव्यवैशिष्ट्य पर समाहित सामग्री के द्वारा छात्र प्रश्नों के उत्तर लिखने की विधि सीख सकेंगे। जिन प्रधान कृतियों के कथानक एवं महाकवियों के काव्यसौष्ठव आदि विषयों पर अन्य अपेक्षित पुस्तिकाओं में पर्याप्त सामग्री नहीं मिलती इस पुस्तक में उन पर प्रकाश डाला गया है। छात्रों के सौविध्यहेतु कवियों एवं ग्रन्थों की अनुक्रमणिकायें भी जोड़ दी गई हैं।

भारतीय प्रकाशन का विशेष अनुरोध था कि संस्कृत-साहित्य का छात्रोपयोगी इतिहास लिख दिया जाये। समय का अभाव होने पर भी इस प्रकाशन के उत्साह एवं कर्त्तव्यनिष्ठा को देखकर मुझे अपनी लेखनी की गति को द्रुततर करना पड़ा और ग्रन्थ शीघ्र ही तैयार हो गया।

—लेखक

विषयसूची

भूमिका १-४

संस्कृत वाङ्मय का महत्त्व एवं आवश्यकता

अध्याय १

रामायण ५-१४

अध्याय २

महाभारत १४-२२

अध्याय ३

महाकाव्य २२-१००

अध्याय ४

नाटक १०१–१४९

अध्याय ५

गद्यकाव्य १५०–१७३

अध्याय ६

गीतिकाव्य १७३–२०२

अध्याय ७

कथासाहित्य २०३–२१२

अध्याय ८

चम्पू (२१३–२२७)

—:※:—

कवियों की अनुक्रमणिका [पृष्ठनिर्देशसहित]

ग्रन्थों की अनुक्रमणिका 'पृष्ठनिर्देशसहित'

—: ० :—

• श्रीगुरवे नमः •

भूमिका

संस्कृत वाङ्मय का महत्त्व एवं आवश्यकता

संस्कृत भाषा का विश्व की विख्यात भाषाओं में उच्च स्थान है और भारतीय भाषायें तो उसकी उपजीव्य ही हैं। संस्कृत भाषा में निहित चमत्कार ने ही सर्वप्रथम सर विलियम जोन्स नामक अंग्रेज विद्वान् को अपनी ओर आकृष्ट किया था जिन्होंने १७९६ ई० में कलकत्ते में बंगाल एशियाटिक सोसाइटी नामक संस्था को जन्म दिया। इन्होंने तारस्वरेण घोषित किया कि संस्कृत निःसंदेह अत्यधिक समृद्ध कही जाने वाली ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं से भी कतिपय महत्त्वपूर्ण अंशों में श्रेष्ठ है—

'The Sanskrit language, whatever be its antiquity, is of a wonderful structure, more perfect than the Greek, more copious than the Latin, and more exquisitely refined than either .. '.

तब से लेकर आज तक बहुसंख्यक विदेशी मनीषियों ने संस्कृत का प्रगाढ़ अध्ययन करके एतादृश ग्रन्थ-रत्नों का निर्माण किया है जिनसे विश्व में संस्कृत, भारतीय संस्कृति, भारत एवं भारतीयों के गौरव की अभिवृद्धि हुई है। प्रत्येक भारतीय को इन मनीषियों का आभारी होना चाहिए। विलियम जोन्स, विलियम ड्वाइट ह्विटनी, मैक्समूलर, हेनरी टामस कोल्ब्रुक, फ्रान्स बॉप, रुडल्फराथ, ए बी० कीथ, मैकडानल, रोजेन, वेबर, श्रोदर, स्टेवेन्सन, ब्लूमफील्ड, हिलेब्रान्ट, विल्सन, ग्रासमन, लुडविग, ग्रिफिथ, ओल्डनबर्ग, श्चेरबात्स्की, उई, टुच्ची, विन्टर निट्ज, ग्रिम, रेनो आदि मनीषी इसी श्रेणी में हैं।

संस्कृत का व्याकरण पूर्ण एवं परिपुष्ट है तथा भावाभिव्यक्ति की क्षमता इतर भाषाओं की अपेक्षा अधिक है। संस्कृत का शब्द भाण्डार अक्षय है। प्रत्ययों की योजना करके असंख्य नवीन शब्दों के निष्पादन का सामर्थ्य इस भाषा में है। भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा तत्तत् प्रान्तीय भाषाओं

को जब शब्द का अभाव खटकता है, तब वे अपनी माता कि वा मातामही अथवा प्रमातामही संस्कृत का मुंह ताकती है। भाषा एवं भाव दोनों दृष्टियों से भारत की भाषाएँ संस्कृत पर आश्रित हैं। यहाँ की किसी भाषा के व्यापक ज्ञान के लिए संस्कृत का ज्ञान अपरिहार्य है। सहस्रों वर्षों के भारतीय मनीषियों का मनन चिन्तन संस्कृत में निहित है। युग युगान्तर के परिपक्व मस्तिष्क के विचार व्यापक अनुभव महर्षियों के त्याग इस भाषा में सञ्चित हैं। आर्य जाति के भागीरथ प्रयत्न उसकी आत्मा एवं प्राण संस्कृत में ही समाहित हैं। आज भी यदि हम भारतीय भाषाओं से संस्कृत के तत्वों का तथा भारतीय हृदय से संस्कृत से अनुप्राणित विचारों को हटा दें तो प्रत्येक भारतीय जंगल में खड़ा अपने को एक वन्य मानुष के रूप में देखेगा। यही नहीं संस्कृत में प्रतिष्ठित वैदिक एवं बौद्ध संस्कृति ने भारतेतर अनेक देशों को जिस रूप में प्रभावित किया है वह संसार से छिपा नहीं है। जावा, सुमित्रा, बोर्नियो, चीन, जापान, कोरिया तथा अन्य बहुत से देशों ने भारत से बहुत कुछ सीखा है, वह संस्कृत के कारण ही। गणित एवं ज्योमिति के क्षेत्र में, बीज गणित एवं ज्योतिष के क्षेत्र में, तथा साहित्य एवं दर्शन के क्षेत्र में संसार संस्कृत का ऋणी है।

क्या संस्कृत के ऋग्वेद से अधिक प्राचीन कोई भी लिखित साहित्य संसार की किसी भी भाषा में वर्तमान है? क्या महाभारत की अपेक्षा विपुलकारा कोई भी ग्रंथ संसार की किसी भाषा में है? हमारे एक-एक ब्राह्मण, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, स्मृति आदि पर अन्य भाषाओं के तत्समकक्ष कहे जाने वाले दर्जनों ग्रन्थ न्योछावर किये जा सकते हैं। संस्कृत के सख्यातिग ग्रन्थ नष्ट हो गये, नष्ट कर दिये गये जिसका साक्षी इतिहास है किन्तु जो भी ग्रन्थसम्पत्ति शेष है वह भी हमारी अपार निधि है जिसके कारण हम संसार के आगे गर्व से मस्तक उठा सकते हैं। संस्कृत की अवशिष्ट ग्रन्थराशि ग्रीक एवं लैटिन की सम्मिलित संख्या से भी कहीं अधिक है।

भारत का जो भी मौलिक चिन्तन है वह संस्कृत में न्यस्त है। भारतीयों के दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, धर्मशास्त्र, विधिशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र, स्थापत्य, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, तन्त्र, विज्ञान, संगीतशास्त्र, सामाजशास्त्र, इतिहास, पुराण, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र आदि सब कुछ

तो सस्कृत मे ही है। प्रान्तीय भाषाओं में लिखे गये ग्रन्थों को हम मौलिक नहीं कह सकते। उदाहरण के लिए धर्म के विषय मे हम सस्कृत के परम्परागत धर्मशास्त्र को ही प्रमाण मानेंगे प्रान्तीय भाषा मे उल्लिखित किसी मौलिक ग्रन्थ को नहीं। भारतीयता को सिद्ध करने के लिए सस्कृत की मुद्रा लगानी आवश्यक है।

हमारे दैनन्दिन व्यवहार में सस्कृत ओतप्रोत है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त होने वाले सस्कारों में सस्कृत भाषा एव मन्त्रों का प्रयोग होता है। उपनयन एव विवाह आदि समस्त कृत्यों में सस्कृत के प्रयोग से ही पवित्रता का बोध अथ च सन्तोष होता है। इन कृत्यों में कोई प्रान्तीय भाषा सस्कृत का स्थान नही ग्रहण कर सकती। आज भी हमारे देश मे गीता, भागवत एव पुराणों का प्रचार कम मात्रा मे नही है। जो भारतीय सस्कृत नही जानते उनका भी सस्कृत के प्रति अनुराग है एव उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए लालायित हैं। यही कारण है कि परतन्त्रतापाश से मुक्त होने के पश्चात् सस्कृतानुरागियों एव अध्येताओं की सख्या अनुदिन बढ़ रही है। प्रान्तीय भाषा में लिखे गये भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय धर्मग्रन्थ तुलसीकृत 'रामचरितमानस' को पवित्रता एव प्रामाणिकता का पुट देने के लिए उसमे सस्कृत के श्लोकों की मुहर लगानी पडी।

तुलनात्मक भाषाविज्ञान के क्षेत्र मे सस्कृत का जो महत्त्व है उसे विद्वद्वर्ग एक स्वर से स्वीकार करता ही है। ससार के प्राचीन धर्म के स्वरूप को जानने में सस्कृत का अत्यधिक योगदान है। अभिप्राय यह है कि ससार के धर्म एव भाषा के इतिहास का अध्ययन खण्डित ही रह जायेगा यदि अध्येतृवर्ग सस्कृत के ज्ञान से शून्य है। भारत मे उत्पन्न पल्लवित एव पुष्पित जैन एव बौद्ध धर्म का विशद परिचय प्राप्त करने के लिए पालि एव प्राकृत भाषाओं का अपेक्षित ज्ञान सस्कृत को आधार बनाकर ही हो सकता है। यही क्यों जैनियों एव बौद्धो ने अपने प्रौढ़ ग्रन्थो की रचना सस्कृत में ही की है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि सस्कृत किसी वर्गविशेष की भाषा न थी जैसा कि कुछ लोगो की भ्रान्त धारणा है। सस्कृत का क्षेत्र व्यापक रहा है। केरल मे बैठे हुए शङ्कराचार्य अपने भाष्यों की रचना जिस भाषा में कर रहे हैं उसी में काश्मीर के मनीषी

आचार्य अभिनवगुप्त तन्त्रालोक अभिनवभारती आदि ग्रन्थो का निर्माण कर रहे हैं और उसी सस्कृत में मिथिला के नैयायिक अपने अमर ग्रन्थो का प्रणयन कर रहे हैं। इस भाषा की व्यापकता मे क्या सन्देह हो सकता है जिसमे परस्पर विरोधी मतों का स्वातन्त्र्येण प्रतिपादन हुआ है। एक ओर वेदविरोधी चार्वाक, जैन एव बौद्धो ने इस भाषा की श्री वृद्धि की है तो दूसरी ओर आस्तिक, दार्शनिक नैयायिक, वैशेषिक, साख्य, योग-ग्रन्थप्रणेता, मीमासक एव वेदान्तियो ने विपुल ग्रन्थसम्पत्ति से इसे सजाया है। यहाँ ईश्वरवादी का उतना ही सम्मान है जितना मीमासक, साख्य एव वैशेषिक आदि अनीश्वरवादियो का। इस भाषा के रचनाकाल मे युगो ने करवटें ली हैं, उत्थान पतन का इतिहास बना है, विविध विचार धाराओं का जन्म हुआ है जिन्हे देखकर व्यक्ति सङ्कीर्ण नही रह सकता। वह कह सकता है कि सस्कृत मे सब कुछ है।

सस्कृत, पालि एव प्राकृत आदि भाषाओ मे लिखे गये शिलालेखो का अध्ययन सस्कृत के ज्ञान के बिना खण्डित ही रहेगा। भारतीय पुरातत्त्व के अध्ययन के लिए सस्कृत का ज्ञान अपरिहार्य है। लक्ष्य को देखकर भी उसके स्वरूप के निर्धारण तथा तद्विषयक किसी सम्मति के स्थिर करने मे लक्षण सहायक होता है। पुरातत्त्व की बहुत सी सामग्रियों का शास्त्रगत पर्यालोचन सस्कृत मे ही मिल सकेगा।

अत यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि सस्कृत-भाषा हमारी ऐसी अनुपम अक्षय्य निधि है जिसकी रक्षा मे हमारा कल्याण निहित है।

अध्याय १

रामायण

रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि हैं। इन्होंने विश्वविश्रुत ग्रन्थ मे मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र के पूतचरित का काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। इसी विशालकाय ग्रन्थ से लौकिक संस्कृत-काव्य का उदय होता है। इसके पूर्ववर्ती सभी ग्रन्थ वैदिकसाहित्य में अन्तर्भुक्त होते हैं। रामायण के सम्बन्ध मे संक्षिप्त विवरण निम्न पंक्तियों मे प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) प्रक्षेप—रामायण की वर्तमान प्रतियो मे २४००० श्लोक तथा ७ काण्ड हैं। बहुत से विद्वानो का विचार है कि बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड मूलग्रन्थ मे नही थे अपितु बाद म जोड़े गये हैं। जर्मन विद्वान् प्रो॰ याकोबी के अनुसार मूलग्रन्थ मे अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक पाँच ही काण्ड थे। वाल्मीकि से परवर्ती विद्वानों को रामायण मे सम्पूर्ण रामचरित का अभाव खटका होगा और उन्होने इस लोकप्रिय ग्रन्थ को प्रियतर बनाने के लिए बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड की सृष्टि की होगी। इन दोनो काण्डो की भाषा एवं शैली अन्य पाँचो काण्डों की भाषा एवं शैली से विसदृश है।

बालकाण्ड का लगभग आधा भाग ऐसा है जिसका सम्बन्ध रामकथा से नहीं है। यही नही, बालकाण्ड के अनेक कथन अन्य काण्डों के वर्णन के सर्वथा विरुद्ध हैं। अरण्यकाण्ड में लक्ष्मण को अविवाहित कहा गया है किन्तु बाल-काण्ड में उनका विवाह उर्मिला से होता है। उत्तरकाण्ड की भाँति बालकाण्ड मे भी राम भगवान् के अवतार के रूप मे चित्रित किये गये हैं परन्तु अन्य पाँचों काण्डो मे राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं, अवतार नहीं। उक्त पाँच काण्डो मे भी कुछ प्रक्षिप्त अंश हैं। उनमे एक-आध स्थल पर राम को अवतार माना गया है। उत्तरकाण्ड की भी यही स्थिति है। उत्तरकाण्ड मे लिखा है कि सीता पूर्वजन्म मे वेदवती थी किन्तु रामायण के अन्य किसी स्थल से यह बात प्रमाणित नही होती। सीता-जन्म के अवसर पर भी इस बात का स्पष्टीकरण

नहीं मिलता। अत इस अश को प्रक्षिप्त मानना उचित प्रतीत होता है। इसी काण्ड मे विभीषण आदि के प्रस्थान करने का उल्लेख मिलता है जब कि युद्धकाण्ड द्वारा पहले ही उनके चले जाने की सूचना प्राप्त होती है। एतादृश असगतियो के आधार पर विद्वान् स्थालीपुलाकन्यायेन सम्पूर्ण उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त मानने के पक्ष में हैं। मूल कहे जानेवाले पाँचो काण्डों मे भी प्रक्षिप्त अश हैं। रामायण के आलोचको को जहाँ पर वर्णन तथा कल्पना का विस्तार खटकने लगा वही पर उन्होने प्रक्षेप का अनुमान किया है।

प्राचीनकाल मे ग्रन्थो को हाथ से लिखकर तैयार किया जाता था अतएव उनमे कुछ जोडने घटाने की सुविधा रहती थी। रामायण एक विशाल राष्ट्र का ग्रन्थ है। उत्तर से दक्षिण एव पूर्व से पश्चिम तक की दूरी कुछकम नही है अतएव विशाल क्षेत्र मे प्रचरित होने के कारण भी इसमे प्रक्षेप का आविर्भाव हुआ होगा। इस प्रकार देश काल के अधिक विस्तार के कारण प्रकृत ग्रन्थ मे प्रक्षिप्त अश का अवतार स्वाभाविक था। रामायण के प्राप्त सस्करणो मे पाठ भेद का बाहुल्य है। श्लोकों और घटनाओ के भेद की तो बात ही क्या, कहीं कहीं तो पूरे सर्ग के सर्ग भिन्न हैं। एक सस्करण की प्रति में पाये जानेवाले सर्ग दूसरे सस्करण की प्रति में नही मिलते। क्या इससे यह सिद्ध नही होता है कि ये अतिरिक्त श्लोक, घटनायें तथा सर्ग प्रक्षिप्त हैं? यदि इस प्रकार के अश निकाल दिये जायें और केवल सभी प्रतियों मे प्राप्त श्लोकसम्पत्ति का ही ग्रहण किया जाये तो २४ हजार के स्थान पर लगभग ८–९ हजार ही श्लोक शेष रहेंगे।

(२) सस्करण—रामायण के अनेक सस्करण हैं। जिनमे मुख्य ये हैं—

(१) निर्णयसागर सस्करण—यह देवनागरी लिपि मे प्रकाशित है। उत्तरभारत में यही सस्करण लोकप्रिय है।

(२) वङ्ग सस्करण—डॉ० गोरेशियो द्वारा प्रकाशित यह सस्करण कलकत्ते से छपा है।

(३) दाक्षिणात्य सस्करण—

(४) पश्चिमोत्तरीय सस्करण—इसका प्रकाशन होशियारपुर से हुआ है।

(३) रचना-काल—जब हम रामायण के रचनाकाल पर विचार करते हैं तो हमें यह न भूल जाना चाहिए कि रामायण के दो रूप रहे हैं। (1)

रामायण का एक रूप वह है जिसे वाल्मीकि ने लिखा, जिसमे प्रक्षिप्त अंश नही था। इसे हम 'अप्रक्षिप्त रामायण' या 'मूलरामायण' कहेंगे। (ii) रामायण का दूसरा रूप वह है जिसमे कालान्तर मे विद्वानों ने स्वरचित श्लोको सर्गों का योग करके उसकी कलेवर-वृद्धि कर दी। इसे हम 'वर्तमान रामायण', 'प्रचलित रामायण', 'प्रक्षिप्त रामायण' या 'रामायण' कहेंगे।

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् याकोबी का मत है कि 'मूलरामायण' की रचना ८००-६०० ईसा पूर्व हुई होगी। इसमें ऐसे पदों का प्रयोग किया गया है जो पाणिनीय व्याकरण से नही सिद्ध होते। इससे यह सिद्ध होता है कि 'मूलरामायण' अवश्य पाणिनि (४ र्थ शताब्दी ई० पूर्व) से पूर्व लिखी गई है। यही नही, पाणिनि ने रामायण मे प्रयुक्त अनेक नामों का व्युत्पत्ति पूर्वक उल्लेख भी किया है। 'मूलरामायण' या 'प्रचलितरामायण' किसी मे भी महाभारत की कथा उल्लेख नही है जबकि महाभारत के वनपर्व में रामोपाख्यान' नामक एक पूरा आख्यान (कथा) प्राप्त होता है। इससे सिद्ध होता है कि रामायण का रचनाकाल महाभारत के रचनाकाल से पूर्व है। 'वर्तमान रामायण' के केवल एक स्थान पर बुद्ध का उल्लेख हुआ है किन्तु विद्वान् इस अंश को प्रक्षिप्त मानते हैं।

'रामायण' (प्रचलित रामायण) ३०० वर्ष ईसापूर्व के बाद की रचना नही हो सकती क्योंकि 'दशरथजातक' (ईसा की तीसरी शताब्दी) में रामायण के एक श्लोक का पालिरूपान्तर प्राप्त होता है। महाकवि अश्वघोष (७८ ईसवी सन्) के 'बुद्धचरित' नामक महाकाव्य पर रामायण की स्पष्ट छाप है। अश्वघोष ने कितनी ही मनोरम उपमाओ एव उत्प्रेक्षाओं को रामायण के सुन्दरकाण्ड से लेकर बुद्धचरित मे समाविष्ट कर दी हैं।

पार्टिजर ने राम का समय १६०० ईसापूर्व माना है। विद्वानो का मत है कि वाल्मीकि रामायण की रचना के पहले भी रामकथा का प्रचलन था और वाल्मीकि ने रामकथा-सम्बन्धी आख्यानों के आधार पर 'रामायण' की रचना की होगी। वे विद्वान् इस कथन से सहमत नहीं हैं कि वाल्मीकि राम के समकालिक थे। स्वय रामायण मे वाल्मीकि के राम के समकालिक होने का उल्लेख है और भारतीय परम्परा इसी में विश्वास करती है तथापि विद्वद्गण इस बात से सहमत नही हैं।

विद्वानों का मत है कि 'रामायण' की कथा 'महाभारत' की कथा से प्राचीन है किन्तु 'रामायण' की रचना बाद में हुई और 'महाभारत' की उससे पूर्व क्योंकि 'रामायण' की भाषा एवं शैली परिष्कृत-विकसित है और 'महाभारत' की अपरिष्कृत एवं अविकसित इत्यादि।

(४) रस—'रामायण' महाकाव्य का रस करुण है*। रामायण क्या है ? करुणरस का स्थायीभाव—शोक—वाल्मीकि के हृदय का शोक। वाल्मीकि ने देखा कि एक बहेलिये ने क्रौञ्च-क्रौञ्ची के जोड़े में से क्रौञ्च पक्षी को उस समय मार दिया जब वह कामभावना से अभिभूत था। क्रौञ्च छटपटा रहा था, क्रौञ्ची चीख रही थी—आर्तस्वर में विलाप कर रही थी। वाल्मीकि का हृदय वेदना से भर आया, बहेलिये को शाप दे दिया-"रे ! तू कभी प्रतिष्ठा न प्राप्त करे, तूने क्रौञ्च के जोड़े में से काममोहित क्रौञ्च को जो मार दिया है इसलिये,—

'मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥'
(बालकाण्ड–२।१५)

वाल्मीकि के करुणरससमाहित शापसमन्वित श्लोक को सुनकर प्रभावित ब्रह्माजी ने उनसे रामचरित लिखने का अनुरोध किया। वाल्मीकि का शोक अनायास ही रामचरित के व्याज से काव्य बन गया। यही करुणरस रामायण की आत्मा है। रस ही तो काव्य की आत्मा होती है—

'काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥'
(ध्वन्यालोक-कारिका-५)

वाल्मीकि 'रामायण' के करुणरस के आस्वाद से प्रभावित कालिदास, भवभूति आदि यशस्वी महाकवियों ने करुणरस का जैसा सफल समावेश अपनी-अपनी कृतियों में किया वैसा अन्य कवि नहीं कर सके हैं। तभी तो भवभूति ने अकेले करुण को ही रस माना है। उनकी दृष्टि में अन्य रस तो उसी के विकार हैं—'एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्।' तभी तो

*'रामायणे हि करुणो रसः' (ध्वन्यालोक पर उद्योत, कारिका ४)

राम के करुणचरितों से प्रभावित होकर पत्थर आँसू टपकाते हैं और वज्र का हृदय भी विदीर्ण हो जाता है—

'जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै-
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ।'
(उत्तररामचरित १।२८)

'रामायण' में राम का वनवास, सीता का हरण, सीता का विलाप, राम की वेदना, सीता की अग्निपरीक्षा करुणरस से ओत-प्रोत अतीव मार्मिक स्थल हैं और वे 'रामायण' के प्राण हैं।

राम कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! देखो तो, यह मोर अपने मनोहर पंखों को फैलाकर शब्द कर रहा है, मानों हँस रहा है। निश्चय ही इसकी प्रियतमा को वन में राक्षस ने हरण नहीं किया है। कितना मार्मिक वर्णन है—

'वितत्य रुचिरौ पक्षौ रुतैरुपहसन्निव।
मयूरस्य वने नूनं रक्षसा न हृता प्रिया ॥'

(५) छन्द तथा अलंकार—वाल्मीकि की ही लेखनी से सर्वप्रथम लौकिक 'अनुष्टुप्' छन्द का अवतार हुआ। यह अनुष्टुप् छन्द उपनिषदों के अनुष्टुप् से भिन्न है। वाल्मीकि के अनुष्टुप् छन्द में लघु गुरु के नियम का सर्वथा पालन हुआ है। वैसे सम्पूर्ण काव्य अनुष्टुप् में ही निबद्ध है तथापि बहुत से ऐसे पद्य हैं जिनकी रचना अन्य छन्दों में हुई है।

रामायण में अलंकारों की छटा द्रष्टव्य है। अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है। उन्हें बरबस लाने का प्रयास नहीं किया गया है। उपमा—हेमन्त ऋतु में चन्द्रमा कुहरे के कारण धुँधला हो गया है मानो इसने अपनी कान्ति सूर्य को दे दी हो। एतादृश चन्द्र उसी तरह नहीं प्रकाशित हो रहा है जैसे फूँक मारा हुआ दर्पण (उपमा)—

'रविसङ्क्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः ।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥'

शरत्काल की नदियाँ अपने तटों को शनैः-शनैः दिखला रही हैं—खोल रही हैं जैसे नव समागम के कारण लज्जित सुन्दरियाँ अपनी जाँघों को धीरे धीरे ही खोलती हैं।

'दर्शयन्ति शरन्नद्य. पुलिनानि शनैः शनैः ।
नवसङ्गमसव्रीडा जघनानीव योषित. ॥'

रूपक—रात्रि में अपने प्रियतमो द्वारा भुक्त रमणियाँ प्रात काल में जैसे मन्द गमन करती हैं उसी प्रकार मछलियों-रूपी मेखला वाली नदी-रूपी वधुओं की गति शरत्काल में मन्द हो जाती है—

'मीनोपसन्दर्शितमेखलाना नदीवधूना गतयोऽद्य मन्दाः ।
कान्तोपभुक्तालसगामिनीना प्रभातकालेष्विव कामिनीनाम् ॥'

समासोक्ति—अलकार का सौन्दर्य निम्न उदाहरण में देखिए—

चञ्चचन्द्रकरस्पर्शहर्षोन्मीलिततारका ।
अनुरागवती सन्ध्या जहाति स्वयमम्बरम् ॥'

उत्प्रेक्षा—मेघ ही जिनके काले मृगचर्म हो, जलधारायें ही जिनके यज्ञोपवीत हो, वायु के आघात के कारण गुफाओ से उत्पन्न होने वाली ध्वनि ही जिनके रटने का शब्द हो ऐसे पर्वत अध्ययनशील ब्रह्मचारियो की भाँति शोभित हो रहे हैं ।

'मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः ।
मारुतापूरितगुहा प्राधीता इव पर्वता ॥'

प्रतीप—हे लक्ष्मण ! ये कमलपुष्प की पखुडियाँ सीता के नेत्रो के समान हैं और वृक्षो में से होकर आयी हुई वायु, जो कमलकिञ्जल्क के स्पर्श के कारण सुगन्धित हो गई है, सीता के नि.श्वास के समान सुगन्धित है—

'पद्मकोशपलाशानि द्रष्टु दृष्टिर्हि मन्यते ।
सीताया नेत्रकोशाभ्या सदृशानीति लक्ष्मण ॥'
'पद्मकेसरसंसृष्टो वृक्षान्तरविनि सृत ।
नि.श्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहर. ॥'

(७) प्रकृतिवर्णन—वाल्मीकि का प्रकृतिवर्णन स्वाभाविक एव हृदयग्राही है। वे प्रकृति के किसी भी पदार्थ का हूबहू चित्र उपस्थित कर देते हैं। उनका वर्णन सीधे हृदय पर उतर जाता है तथा श्राता वर्णनजन्य आनन्द में निमग्न हो जाता है। कैसी सरल एव मनोरम उक्तियाँ होती हैं महाकवि की। हेमन्त की ऋतु में कुहरे के पड़ने से धुँधली पूर्णिमा की ज्योत्स्ना

शोभा नहीं देती, उसी तरह धूप से साँवली पड़ जानेवाली सीता देखने में तो आती है लेकिन सुन्दर नहीं लगती—

'ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्या न राजते ।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न च शोभते ॥'

जलचर पक्षी जलाशय के पास बैठे हैं। जलाशय का जल अधिक ठण्डा है। ये पक्षी जल मे उसी प्रकार प्रवेश नही कर रहे हैं जैसे कायर पुरुष संग्राम मे प्रवेश नही करते—

'एते हि समुपासीना विहगा जलचारिणः ।
नावगाहन्ति सलिलमप्रगल्भा इवाहवम् ॥'

वर्षा के दिनो मे नदियाँ बह रही हैं, बादल बरस रहे हैं, मतवाले हाथी चिंघाड़ रहे हैं, वनप्रान्त शोभा दे रहे हैं, वियोगी उन प्रियाओं का ध्यान कर रहे हैं, मोर नाच रहे हैं और सुग्रीव के पक्ष के वानर विजय के कारण आश्वस्त रहे हैं —

'वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति ।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ता. प्रियाविहीना. शिखिन. प्लवङ्गमा. ॥

सप्तपर्ण वृक्षो मे, सूर्य चन्द्र तथा नक्षत्रो की प्रभा में और उत्तम हाथियों की क्रीडा मे शोभा विभक्त करके अर्थात् इन सबको सुशोभित करती हुई शरद् ऋतु आ गई—

'शाखासु सप्तच्छदपादपाना प्रभासु तारार्कनिशाकराणाम् ।
लीलासु चैवोत्तमवारणाना श्रिय विभज्याद्य शरत्प्रवृत्ता ॥'

चन्द्रमा रात्रिरूपी वधू का सुन्दर मुख है, तारागण सुन्दर उन्मीलित नेत्र हैं और ज्योत्स्ना है ओढने का रेशमी वस्त्र। नारी के समान एव-विधा रात्रि शोभा दे रही है—

'रात्रि शशाङ्कोदितसौम्यवक्त्रा तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा ।
ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति नारीव शुक्लांशुकसंवृताङ्गी ॥'

(७) भाषा—वाल्मीकि की भाषा नितान्त सरल, सरस तथा समासरहित अथवा अल्पसमास युक्त है। भाषा का प्रवाह स्वाभाविक एव शब्दावली श्रुति-मधुर है। भाषा के सारल्य एव भाव के सौष्ठव का एक उदाहरण प्रस्तुत है। राम लक्ष्मण से कहते हैं कि शायद सुग्रीव मुझे भूल गया, मेरे

दु ख मे सहायता नही कर रहा है, उससे कह दो कि सुग्रीव ! जिस रास्ते से मारा हुआ वाली गया है वह रास्ता सँकरा नही, अपने वायदे को पूरा करो, बालि के मार्ग पर मत जाओ—

'न स सङ्कुचित पन्था येन वाली हतो गत ।
समये तिष्ठ सुग्रीव ! मा वालिपथमन्वगा.॥'

(८) उपदेश—वाल्मीकि 'रामायण' मे लोककल्याण की भावना कूट कूट कर भरी हुई है। रामचन्द्र एक महामानव हैं—मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। उनके चरित से हमे जो शिक्षा मिलती है वह व्यक्ति एव समाज लक्ष्मीपति एव रङ्क, पण्डित एव निरक्षर,कुलीन एव अकुलीन,स्वदेशी एव विदेशी सभी के लिए सभी कालो मे प्रेरणा देनेवाली है। भारत के हृदय के परिष्कार, मति के वैमल्य, स्वभाव की निश्छलता, कर्तव्यपालन मे कष्ट, सहिष्णुता, अन्याय के विरोध आदि मे जितना योगदान रामायण एव रामकथा का रहा है उतना किसी भी ग्रन्थ का नही। भारत के जन जीवन को रामायण के उपदेश सूर्य की किरणें बनकर प्रकाशित करता रहा है। रामकथा को उपनिवद्ध करने वाली सभी रचनायें रामायण से अनुप्राणित हैं। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' जिससे आधुनिक भारत के कोटिश आबालवृद्धवनिता प्रेरणा एव मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं वाल्मीकि 'रामायण' को आधार बनाकर लिखी गई है।

राम का चित्त शान्त है। वे मृदुभाषी हैं, कठोर वचन नही बोलते, भले ही कोई व्यक्ति उनके प्रति कटुवचनो का प्रयोग करे। वे ओजस्वी, सत्यवादी तथा विद्वान् हैं। प्रजा उनका आदर करती है। वे प्रजा का कल्याण करते हैं। उनकी प्रसन्नता व्यर्थ नही जाती,उनका क्रोध कुछ करके दिखलाता है, मित्रता का निर्वाह करना वे जानते हैं,उनकी पितृ भक्ति,उनकी सङ्गठनशक्ति अपूर्व है, अन्यायी एव दुराचारी का वध करके शरणागत की रक्षा करते हैं वे। उनकी उदारता एव आदर्शप्रियता अनुपम है। उनकी दृष्टि मे शत्रु जब तक जीवित रहता है तभी तक शत्रु रहता है। रावण के मरने पर राम विभीषण से कहते हैं कि 'हमारा उद्देश्य पूरा हो गया। वैर वैरी के मरते ही समाप्त हो जाता है। इसका सस्कार करो। यह हमारा वैसा ही सम्बन्धी है जैसा तुम्हारा'। उदारता की पराकाष्ठा है—

'मरणान्तानि वैराणि निवृत्त न प्रयोजनम् ।
क्रियतामस्य सस्कारो ममाप्येप यथा तव ॥'

राम को लोभ छू नही गया था । आपत्तियाँ उनके हृदय को विकृत नहीं कर सकती थी । उनका चरित्र-अलोक-सामान्य है—

'न वन गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम् ।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया ॥'

लक्ष्मण एव भरत का चरित्र जन-जीवन को उपदेश देता है कि एक भाई का दूसरे के साथ कैसा सम्बन्ध व्यवहार होना चाहिए । लक्ष्मण ज्येष्ठ भ्राता के साथ गिरि, वन, गुहा सर्वत्र विचरण करते हैं, नानाविध कष्ट सहन करते हैं और ज्येष्ठ भ्राता तथा भ्रातृजाया की चरण सेवा करते हैं सभी सुखों को तिलाञ्जलि देकर । भरत प्राप्त राज्य का परित्याग करते हैं । पत्नी सीता पति राम के साथ घोर कान्तार जाने मे भी नही हिचकती । रावण द्वारा अपहृता सीता अनेक लोभों एव कष्टों से विचलित नहीं होती । वह परपुरुष का स्पर्श नही कर सकती अन्यथा वह हनुमान् के साथ ही राम के समीप आ जाती । वह हनुमान से कहती है—

भर्तुर्भक्ति पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर !
नाह स्प्रष्टु स्वतो गात्रमिच्छेय वानरोत्तम ॥'

और रावण को तो वह बायें पैर से भी नही छुयेगी—

'चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम् ।
रावण किं पुनरह कामयेय विगर्हितम् ॥'

यदि स्वामिभक्ति का आदर्श देखना हो तो हनुमान् के चरित में देखा जा सकता है ।

'रामायण' में राजधर्म का उल्लेख हुआ है । वहाँ प्रजारञ्जक राजा की प्रशंसा एव अराजकता की निन्दा मिलती है । 'रामायण' हमारा राष्ट्रिय महाकाव्य है । हमारा धर्म, हमारी संस्कृति, हमारा गौरव इसमे निहित है । 'रामायण' हमारी सतत प्रवहमान संस्कृति का आधार है, हमारा प्राण है । हम विश्व मे गौरव से सिर ऊँचा करके कह सकते हैं कि राम हमारे हैं, 'रामायण' हमारी है । नमस्कार आदि कवि को जिन्होंने 'रामायण की रचना करके हमारे हृदयों को आह्लादित करते हुए कर्तव्य मार्ग का उपदेश दिया है—

'सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला।
नमस्तस्यै कृता येन रम्या रामायणी कथा॥'

अध्याय २

महाभारत

'धर्मे ह्यर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति तत् क्वचित्॥' (महाभारत)

(हे भरतवंश के श्रेष्ठ पुरुष ! धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के सम्बन्ध में जो यहाँ अर्थात् महाभारत मे मिलता है वही दूसरे ग्रन्थो मे भी प्रतिपादित है और जो प्रतिपादन यहाँ नही है वह कही भी नही है)।

महाभारत का उक्त कथन सर्वथा समीचीन है। महाभारत हमारी जाति का इतिहास-ग्रन्थ है। इसमे न केवल राजवंशो की शृङ्खला एवं तत्सम्बन्धी घटनाओं या राजनीति का ही विवेचन है अपितु धर्म, अध्यात्म, दर्शन एवं जीवन से सम्बद्ध प्रत्येक समस्या एवं उसका समुचित समाधान इस विशालकाय ग्रन्थ में मिलता है।

(१) रचयिता—भारतीय परम्परा के अनुसार 'महाभारत' के रचयिता वेदव्यास माने जाते हैं। इनका पूरा नाम है—कृष्णद्वैपायन वेदव्यास। शरीर का वर्ण 'कृष्ण' (काला) होने के कारण इन्हे कृष्ण कहा गया है। यमुना नदी के एक द्वीप मे इनका जन्म हुआ था अतः इनका द्वैपायन नाम हुआ और वेद के अभिप्राय का इन्होने विस्तार (व्यास) किया अर्थात् 'महाभारत' मे सरल भाषा के माध्यम से वेद के सूक्ष्मतत्त्वो का विस्तृत वर्णन किया है अतः वेदव्यास कहलाये। इनकी माता 'सत्यवती' थी। 'दासराज' नामक मल्लाह ने इनका पालन-पोषण किया था। धृतराष्ट्र पाण्डु एवं विदुर इन्ही की सन्तानें थी जो नियोग द्वारा उत्पन्न हुई थी।

(२) रचना-सोपान—'महाभारत' मे प्रसिद्ध कौरव-पाण्डवो के युद्ध की कथा है। एतदतिरिक्त अनेक आख्यान हैं जिनका मुख्यकथा से कोई विशेष सम्बन्ध नही है। 'महाभारत' का वर्तमान रूप जिसमे लगभग १ लाख श्लोक मिलते हैं, एक व्यक्ति की अथवा एक युग की कृति नहीं है

क्योंकि इस ग्रन्थ में भाषा, विषय, कथानक, विवेचन आदि का वैषम्य स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।

सूत्रग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि वैदिकयुग में श्रौत तथा गृह्यकर्मों के सम्पादन-काल में वैदिक आख्यानों के सुनने का प्रचलन था। इसके अतिरिक्त वीरों तथा देवताओं के आख्यानों के श्रवण की भी परम्परा थी। इस प्रयोजन को पूरा करने के निमित्त आख्यानों के ऐसे अनेक संग्रह थे जिनमें देवताओं, वीरों, राजाओं, ऋषियों, नागों एवं राक्षसों आदि की कथाओं का सन्निवेश था। समय-समय पर इन संग्रहों में अनेक आख्यानों का समावेश होता गया। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हीं आख्यानसंग्रहों का आश्रय लेकर महाभारत के मूल रूप को जन्म दिया गया जिसका नाम (१) 'जय'*था। महाभारत के मङ्गलश्लोक में 'जय' नामक इतिहास के कहने का उल्लेख है। इसी को वेदव्यास ने अपने शिष्य को सुनाया था—

'नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥'

वस्तुतः 'महाभारत' की बिखरी हुई सामग्री को व्यवस्थित करके 'महाभारत' के प्रथम आकार को जन्म देने का यह प्रथम प्रयास था। इस ग्रन्थ का रस 'वीर' है। इस जय को महाभारत में 'इतिहास' कहा गया है— 'जयनामेतिहासोऽयम्'। महाभारत के विकास का दूसरा सोपान (२) 'भारत' नाम से प्रसिद्ध है। जय के संग्रह अथवा रचना के पश्चात् जो भी महत्त्वपूर्ण नवीन सामग्री एकत्र हुई होगी वह जय में जोड़ दी गई होगी। इस प्रकार परिवर्धित संस्करण को 'भारत' कहा गया होगा। इसी 'भारत' को वैशम्पायन ने जनमेजय के सर्पसत्र में सुनाया था। इसमें उपाख्यानों को सम्मिलित नहीं किया गया था और इसका कलेवर २४ हजार श्लोक था—

'चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः॥' (महाभारत)

---

*महाभारत के विकास के तीन सोपान माने जाते हैं—(१) जय, (२) भारत, (३) महाभारत।

और अन्तिम संस्करण या संग्रह है (३) महाभारत। जैसा इसका नाम है यह 'भारत' से बड़ा (महा-महान्) था। अर्थात् भारत को ही परिवर्धित करके 'महाभारत' का रूप दिया गया। इसके रचयिता मुनि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास थे जिन्होंने तीन वर्ष के अविरत परिश्रम से इसकी रचना की[1]। इसमें एक लाख श्लोक थे। इसी महाभारत को सौति ने शौनक आदि ऋषियों को सुनाया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभारत को तीन वक्ताओं ने तीन श्रोताओं को तीन बार क्रमशः 'जय', 'भारत' एवं महाभारत' नाम से सुनाया था। महाभारत के उक्त तीनों रूप (जय, भारत, महाभारत) तीन संस्करण हैं जिनमें काल क्रम से एकत्र सामग्री का समावेश किया गया।

(३) कलेवर—वर्तमान 'महाभारत' में एक लाख से भी कुछ अधिक श्लोक मिलते हैं। किन्तु इस श्लोक संख्या में हरिवंश' नामक परिशिष्ट के भी श्लोक सम्मिलित हैं। हरिवंश महाभारत का परिशिष्ट है जिसका स्थान महाभारत के अन्त में है। 'हरिवंश' की श्लोकसम्पत्ति १६ हजार है। इसमें ३ पर्व हैं—हरिवंशपर्व, विष्णुपर्व, भविष्यपर्व।

'हरिवंश' को न मिलाकर महाभारत का विभाग 18 पर्वों में है। ये पर्व हैं—आदि, सभा, वन, विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, अश्वमेध, आश्रमवासी, मौसल, महाप्रस्थानिक, स्वर्गारोहण।

(४) रचनाकाल—'आश्वलायन गृह्यसूत्र' में 'भारत' तथा 'महाभारत' शब्दों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है—'सुमन्तजैमिनी-वैशम्पायनपैलसूत्र-भाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्याः।' (३।४।४) इसके अतिरिक्त 'बोधायनगृह्यसूत्र' में श्रीमद्भगवद्गीता का एक श्लोक उद्धृत किया गया है। 'गीता' महाभारत का ही अङ्ग है। इसी ग्रन्थ में 'विष्णुसहस्रनाम' का भी उल्लेख है। इस प्रकार महाभारत की रचना उक्त दोनों गृह्यसूत्रों से पूर्व हो चुकी होगी। इन गृह्यसूत्रों का समय ईसापूर्व लगभग ४०० वर्ष है। पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' में 'भीम', 'विदुर', 'युधिष्ठिर' एवं 'महाभारत' शब्दों की

१—'त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम्॥

व्युत्पत्ति की है अत यह ग्रन्थ ईसा की ५वीं शताब्दी के बाद का नहीं हो सकता। इस प्रकार महाभारत की रचना ईसापूर्व ४०० वर्ष के पश्चात् नहीं हो सकती। सम्भव है इस समय से एक दो शताब्दी पूर्व भी हो। पाश्चात्य विद्वान् मानते हैं कि 'महाभारत' के वर्तमान रूप की रचना ईसा की चतुर्थ शताब्दी तक सम्पन्न हो चुकी थी। उनकी इस मान्यता का आधार ४४२ ईसवी का गुप्तकालीन एक लेख है जिसमें 'महाभारत' के प्रसङ्ग में 'शतसाहस्र्या संहितायां' पदों का उल्लेख है।

(५) **भाषा, शैली तथा रस**—'महाभारत' एक काल अथवा एक व्यक्ति की कृति नहीं है। अत कालभेद एवं व्यक्तिभेद के कारण भाषा एवं शैली में अन्तर होना स्वाभाविक है। बहुत से ऐसे प्रयोग हैं जिन्हें हम 'आर्ष' कहेंगे क्योंकि वे पाणिनीय व्याकरण से मेल नहीं खाते। कहीं तो कथा पौराणिक शैली में वर्णित है तो कहीं वाक्यों जैसी अलंकृत भाषा का प्रयोग है। कहीं पर पद्य के अतिरिक्त गद्य के भी दर्शन होते हैं। वैदिक 'त्रिष्टुप्' छन्द के दर्शन होते हैं। महाभारत का अङ्गी रस 'शान्त' है। अन्य वीर आदि–रस 'शान्त रस' के अङ्ग रूप में समाविष्ट हुए हैं। वैसे प्राय सभी रसों की उपलब्धि महाभारत में होती है।

(६) **आख्यान**—आख्यानों का बाहुल्य भी महाभारत की विशेषता है। आख्यान कलेवर में छोटे बड़े सब प्रकार के हैं। कुछ आख्यान ऐतिहासिक हैं, यद्यपि इनमें भी अलौकिक एवं कल्पना तत्त्व का समावेश पाया जाता है। कुछ आख्यानों का लक्ष्य केवल उपदेश है। उनका इतिहास से सम्बन्ध नहीं, यथा 'शान्तिपर्व' का कपोतलुब्धकोपाख्यान'। इसका वर्ण्य विषय इस प्रकार है—

एक बहेलिया था। उसके शरीर के सभी अंग बहुत ही भयानक थे अत उसे देखकर डर लगता था। जाल से पक्षियों को पकड़ कर बेचना ही उसकी आजीविका थी। एक बार वह वन ही में था कि अन्धड़ आया, महावृष्टि हुई। बहेलिया सर्दी से काँप रहा था। उसने देखा कि भूमि पर एक कबूतरी पड़ी है। उसे सर्दी लग गई थी। बहेलिये ने कबूतरी को उठाकर पिंजरे में डाल लिया। आकाश स्वच्छ हो गया किन्तु रात्रि हो गई। बहेलिया सर्दी के कारण ठिठुरा मरा जा रहा था। उसने वृक्ष के नीचे पत्ते बिछाये, सिर के

नीचे पत्थर रखा और वहीं सो गया। उसी वृक्ष पर एक कबूतर रहता था। उसकी पत्नी बाहर गई थी किन्तु रात हो गई वापस नहीं आयी थी अतः कबूतर बहुत ही अधिक चिन्तित हुआ। वह विलाप करने लगा। वृक्ष के नीचे बहेलिये के पिंजरे में बन्द कबूतरी ने कहा कि 'मैं पिंजरे में हूँ, तुम मेरी चिन्ता न करो। यह बहेलिया तुम्हारा अतिथि है। इसका स्वागत करो'। उसने पत्ते जलाकर बहेलिये की सर्दी का उपचार किया और उसकी क्षुधा की निवृत्ति के निमित्त अपने शरीर को जलती हुई अग्नि में भुन जाने के-लिये डाल दिया। कबूतर को इस प्रकार गतप्राण देखकर बहेलिये को अपनी आजीविका के साधन पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और कबूतरी तो अत्यधिक शोक के कारण आग में कूद कर मर गई। किन्तु थोड़ी देर में कबूतरी ने देखा कि उसका पति ससम्मान विमान द्वारा स्वर्ग ले जाया जा रहा है। कबूतरी भी अपने पति के साथ स्वर्ग गई और अपनी अतिथिसेवा के पुण्य के कारण स्वर्ग का भोग करने लगी।

प्रसिद्ध उपाख्यानों में शकुन्तलोपाख्यान, नलोपाख्यान, शिवि-उपाख्यान, सावित्री-उपाख्यान, रामोपाख्यान, मत्स्योपाख्यान आदि हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से आख्यान हैं।

(७) महत्त्व—'महाभारत' एक विश्वकोष है जिसमें मानवजीवन के प्रत्येक अङ्ग से सम्बन्धित प्रायः सभी प्रश्नों को उठाकर उनका समाधान किया गया है। कथाओं, उपाख्यानों, घटनाओं तथा प्रश्नोत्तर रूप में वर्ण्य-विषय को सरल बना दिया गया है। व्यासदेव का यह कथन कि धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के विषय में जो कुछ महाभारत में है वही अन्यत्र प्राप्त होता है, सर्वथा सत्य है।

(१) 'महाभारत' हमारा राष्ट्रिय महाकाव्य है। हमारे राष्ट्र की समूची संस्कृति इस विशालकाय ग्रन्थ में प्रतिबिम्बित हुई है। इतना बड़ा ग्रन्थ विश्व की किसी भी भाषा में नहीं मिलता। इस ग्रन्थ में ऐसे तत्त्वों का समावेश है जिनकी प्रेरणा से हमारा राष्ट्र सम्पन्न एवं बलवान् हो सकता है। राजा का कर्त्तव्य प्रजा का पालन माना गया है। राजा के अभाव में मात्स्यन्याय प्रवर्तित होता है, धर्म का लोप होता है—

राजमूलो महाप्राज्ञ धर्मो लोकस्य लक्ष्यते।
प्रजा राजभयादेव न खादन्ति परस्परम्॥
मज्जेद् धर्मस्त्रयी न स्याद्यदि राजा न पालयेत्।'(शान्तिपर्व)

(२) महाभारत में धर्म को सुख का सम्बल माना गया है। धर्म से ही सुगति की प्राप्ति होती है। कुगति होने पर ईश्वर को दोष नहीं देना चाहिए–

'धर्म एव प्लवो नान्यस्स्वर्गं द्रौपदि गच्छताम्।
ईश्वरं चापि भूतानां धातारं मा च वै क्षिप॥'(वनपर्व)

(३) महाभारत में जहाँ युद्ध आदि की विभीषिका के दर्शन होते हैं वहीं शान्तिदायक सूक्ष्म अध्यात्म तत्त्व का भी उपदेश दिया गया है जो सर्वथा व्यावहारिक है, कोरे सिद्धान्तों का व्याख्यान नहीं है। गीता का अमर उपदेश भारत की जनता को पदे-पदे मार्ग-दर्शन कराता है। गीता विश्व के समस्त देशों के मानवों का अर्थात् मानव-मात्र का अधिकाधिक कल्याण करने में क्षम है।

(४) महाभारत में नैतिक नियमों का सन्निवेश है। अतिथि का सम्मान, पति का पत्नी के प्रति प्रेम, पत्नी का पति से प्रेम, दया, दान, सेवा, तप, त्याग इन गुणों का प्रचार महाभारत का लक्ष्य रहा है। यदि शत्रु भी अतिथि रूप में आ जाये तो उसका अतिथि-सत्कार करना चाहिए। वृक्ष अपनी छाया उस व्यक्ति से भी नहीं हटाता जो उसे काटने के लिए आता है—

'अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुमप्यागते छाया नोपसंहरते द्रुमः॥'

सद्गृहणी के महत्त्व को दिखलाते हुए व्यास कहते हैं—

'पुत्रपौत्रवधूभृत्यैराकीर्णमपि सर्वतः।
भार्याहीनं गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं भवेत्॥
न गृहं गृहमित्याहुर्गृहणी गृहमुच्यते।'

पति के महत्त्व का प्रतिपादन निम्न पंक्तियों में देखें—

'मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य हि दातारं भर्तारं का न पूजयेत्॥'

दुष्ट का सम्पर्क कभी नहीं करना चाहिये। जो व्यक्ति ऐसे कर्म करता है जिससे स्वयं अधोगति को प्राप्त करता है, भला वह दूसरे का क्या कल्याण करेगा—

'आत्मानं योऽभिसन्धत्ते सोऽन्यस्य स्यात् कथं हितम् ।'

(४) 'महाभारत' काव्यों, नाटकों, चम्पू, गद्यकाव्यों–सभी का उपजीव्य रहा है। महाभारत की रचना के बाद से आज तक के संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों ने महाभारत' के आख्यानों का आश्रय लेकर विश्वविख्यात साहित्य की सृष्टि की है। कालिदास के लोकप्रख्यात नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का आधार महाभारत का 'शकुन्तलोपाख्यान' है। श्रीहर्ष के महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' का उपजीव्य महाभारत का 'नलोपाख्यान' है। महाभारत के शिवि-उपाख्यान' की कथायें जातकों में मिलती हैं। यह तो एक आद्य उदाहरण हैं, वस्तुतः ऐसे असंख्य ग्रन्थ हैं जिनके उपजीव्य महाभारत की कथायें हैं।

(८) महाभारत काल की संस्कृति—यद्यपि महाभारत में नैतिक मूल्यों पर विशेष बल दिया गया है एवं मानव को सन्मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित किया है तथापि उस समय की संस्कृति रामायणकाल की संस्कृति की अपेक्षा हीन है। धृतराष्ट्र के द्वारा बहुशः समझाये जाने पर भी उनके पुत्र कौरव न तो युद्ध से विरत होते हैं और न ही पाण्डवों को उनका उचित भाग ही देते हैं। अर्जुन एवं भीम आदि अनुज तथा पत्नी द्रौपदी कटूक्तियों द्वारा युधिष्ठिर को गर्हा करते हैं कि वे कौरवों से युद्ध क्यों नहीं करते। महाभारत में गुरुजनों के प्रति आदर्श शिष्टाचार का अभाव खटकता है। यहाँ गुरु-शिष्यों के बीच भीषण युद्ध होते हैं। पक्षपात, दर्प, स्वेच्छाचारिता, छल-कपट एवं स्वार्थ का सर्वत्र साम्राज्य है। सभी अपनी बुद्धि अपने बल पर गर्व करते हैं। सर्वत्र मर्यादा की सीमायें खण्डित दिखलाई पड़ती हैं। कुन्ती पुंश्चारिणी में कर्ण को जन्म देती है। और नियोग द्वारा युधिष्ठिर, भीम एवं अर्जुन को उत्पन्न करती है। द्रौपदी पाँचों-पाण्डवों की पत्नी होकर भी अनिन्द्य है। महाभारत की नारियों को नियोग द्वारा परपुरुष से सम्पर्क प्राप्त करने का सामाजिक अधिकार तो प्राप्त ही था इनके अतिरिक्त किन्हीं स्थितियों में परपुरुष का संसर्ग हो जाने पर भी नारी पतित नहीं मानी जाती थी। प्रायः सम्पूर्ण महाभारत छल-कपट, दम्भ-द्वेष की कहानी है।

रामायण एवं महाभारत की तुलना

(१) रामायण (प्रक्षिप्त अंश छोड़कर) एक कवि की एक काल की कृति है जबकि महाभारत वेदव्यास के नाम से प्रचलित होने पर भी अनेक कवियों की अनेक शताब्दियों की रचना है। (२) रामायण आदिकाव्य है जिसमे भाषा का लालित्य एव भाव का सौष्ठव निहित है। महाभारत 'इतिहास' *ग्रन्थ है जिसका उद्देश्य राजाओ के इतिहास का वर्णन करना है।* (३) रामायण के कथानक छोटे-छोटे हैं और उनका प्रयोजन राम-रावण युद्ध की मूलकथा का अङ्ग बनकर उसकी पुष्टि करना है जबकि महाभारत के बहुत-से आख्यान मुख्य घटना से कम सम्बद्ध हैं एव अधिक अंश में स्वतन्त्र हैं। (४) रामायणकाल का भूगोल सङ्कुचित है। इसका क्षेत्र कम है जबकि महाभारत का भूगोल अति विस्तृत है जैसा कि युधिष्ठिर के राजसूय मे आगत विभिन्न देशो के नृपगणो की सूची से विदित होता है। (५) भारतीय परम्परा के अनुसार वाल्मीकि ने रामायण की रचना त्रेतायुग मे की और व्यास ने महाभारत की रचना द्वापर युग मे की। (६) रामायण में दया, करुणा, धर्मभीरुता, कर्तव्यपालन, सत्यवादिता, निश्छलता, सच्चरित्रता का महत्त्व एव उदाहरण सुलभ हैं तो महाभारत मे क्रूरता, धूर्तता, कपट, अन्याय, दर्प, कठोरता, असयम, स्वच्छन्दचारिता, मिथ्याभाषण, निर्भीकता का खुला साम्राज्य है। रामायण के वानर, रीछ, निषाद तथा शूद्र भी धार्मिक, कर्तव्यपरायण एव तपस्वी हैं जबकि महाभारत के धर्मात्मा धर्मपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर भी जुआ ही नहीं खेलते हैं अपि जुये मे द्रौपदी को बाजी लगाकर हार भी जाते है। यदि रामायण में धर्म की प्राणपण से रक्षा की जाती हुई देखी जाती है तो महाभारत मे धर्म की यथारूप अवहेलना की जाती है। यदि रामायण मे कर्तव्य का पालन करके पात्र सन्तोष का अनुभव करता है तो महाभारत का पात्र अकर्तव्य को करने के पश्चात् अपने किये पर नाज करता है। (७) रामायण मे परपत्नी को अपहरण करनेवाले रावण का वध किया जाता है और सीता की अग्निपरीक्षा लेकर निर्दोष सिद्ध होने पर ही पुनः ग्रहण किया जाता है। परन्तु महाभारत की द्रौपदी पाँचों

भाइयों की पत्नी ही नहीं है अपितु जब काम्यक वन मे जयद्रथ उसका बलपूर्वक हरण कर लेता है तब उसके चरित्र के विषय मे कोई व्यक्ति सन्देह करने की आवश्यकता नही समझता। रामायण की सीता पर-पुरुष के स्पर्श के भय से हनुमान् के साथ लङ्का से राम के पास नही जाती किन्तु सत्यवती और कुन्ती कुमारावस्था में भी सन्तति का जनन करती हैं। (८) रामायण के लक्ष्मण एवं भरत जैसे भाई हैं जो राज्य को ठुकरा देते हैं। महाभारत के बान्धव अधिकारी को भी सुई की नोक के बराबर भूमि नही देते और महाभारत का भीषण विनाशकारी युद्ध रच डालते हैं। (९) रामायण के पात्रों की प्रवृत्ति में यदि कर्तव्य कारण होता है तो महाभारत के पात्रों मे काम-क्रोध द्वेष आदि निसर्गजन्य भावनायें। (१०) रामायण मे यदि धर्मयुद्ध होता है तो महाभारत मे छल युद्ध (११) रामायण मे रावण के दस सिर होना, वानर रीछों द्वारा युद्ध आदि अपेक्षाकृत अधिक अलौकिक घटनाओं का समावेश है और महाभारत में अपेक्षाकृत कम।

अध्याय ३

महाकाव्य

संस्कृत काव्य के प्रमुख दो भेद होते हैं—

(१) दृश्यकाव्य (२) श्रव्यकाव्य। दृश्यकाव्य उन्हे कहते हैं जिनका आनन्द चक्षुओं द्वारा भी लिया जाता है। इन्हें 'रूपक' कहा जाता है जिसका एक प्रभेद 'नाटक' भी होता है। 'नाटक' शीर्षक के अन्तर्गत नाटकों का विवेचन किया गया है। श्रव्यकाव्य के तीन भेद हैं—(१) पद्यकाव्य (२) गद्यकाव्य तथा (३) चम्पूकाव्य। 'चम्पू' म काव्य के दोनों स्वरूप—पद्य एवं गद्य मिश्रित रहते हैं। 'चम्पू' काव्य का विवेचन 'चम्पू साहित्य' के अन्तर्गत देखिए। 'गद्यकाव्य' के दो प्रमुख प्रभेद हैं—(१) कथा और (२) आख्यायिका। 'पद्यकाव्य' के तीन प्रभेद—(१) महाकाव्य (२) खण्डकाव्य एवं (३) मुक्तक—होते हैं। प्रस्तुतस्थल में महाकाव्यों का विवेचन किया जा रहा है।

महाकाव्य की उत्पत्ति एवं विकास—जिस प्रकार अन्य विद्याओं एवं शास्त्रों का मूलरूपयथा सर्वत. प्राचीन रूप प्राय. ऋग्वेद मे प्राप्त होता है उसी

प्रकार काव्य के सबसे प्राचीन रूप के दर्शन हमें ऋग्वेद में होते हैं। किन्तु *ऋग्वेद में पारिभाषिक अर्थ में काव्य (प्रौढकाव्य) का रूप नहीं प्राप्त होता* है। संस्कृत-काव्य या महाकाव्य का प्रारम्भ वाल्मीकि की 'रामायण' से होता है। तदन्तर कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ एवं श्री हर्ष आदि के काव्य विभिन्न धाराओं मे प्रवाहित हो चले एवं जन-मानस को आनन्दवारि से सींचते गये, सींच रहे हैं। 'काव्यालङ्कार' के टीकाकार नमिसाधु के अनुसार पाणिनि (लगभग ४०० ई.पू.) ने 'पातालविजय' तथा 'जामवन्तीविजय' नामक दो काव्यों की रचना की थी। इसी प्रकार महाभाष्य (ई. पू. १५०) के अध्ययन से पता चलता है कि अनेक काव्यों की रचना हो चुकी थी। दुर्भाग्य का विषय है कि ये काव्य-ग्रन्थ लुप्त हो गये। अनेक शिलालेख भी इस बात को प्रमाणित करते हैं कि बहुत से उत्तम काव्य-ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी जो काल के गाल मे अकाल ही समा गये। अब कालिदास ही हमारे सर्वप्राचीन महाकाव्यकार हैं।

महाकाव्य के लक्षण—महाकाव्य 'सर्गों' मे विभक्त होता है। सर्ग न बहुत छोटे हों, न बहुत बड़े। सर्गों की सख्या आठ से अधिक होनी चाहिये। वैसे तो एक सर्ग मे प्राय एक ही छन्द का प्रयोग किया जाता है (अन्तिम पद्य को छोड़कर) परन्तु किसी-किसी सर्ग में नाना छन्दों का उपयोग भी देखा जाता है। किसी सर्ग के अन्त मे भावी कथा का सकेत भी देखा जाता है। सर्ग का नाम सर्ग से विशेष सम्बद्ध कथा पर रखा जाता है। महाकाव्य के प्रारम्भ मे जो मङ्गल होता है उसमे या तो स्तुति की जाती है अथवा श्रोताओं को आशीर्वाद दिया जाता है अथवा कथावस्तु का निर्देश होता है। *दुष्ट-निन्दा एवं सज्जन-प्रशसा भी किसी-किसी महाकाव्य मे प्राप्त होती है।*

महाकाव्य के नामकरण का आधार वर्ण्यविषय, कवि तथा नायक का नाम अथवा अन्य कोई आधार होता है। महाकाव्य का नायक देवता, उत्तम वश मे उत्पन्न धीरोदात्त गुणो से युक्त कोई क्षत्रिय होता है अथवा एक ही कुल मे उत्पन्न बहुत से नृप नायक हो सकते हैं (जैसे रघुवंश मे) प्रमुख रस एक ही होता है। शृङ्गार, वीर तथा शान्त इन तीन रसों में से एक ही रस मुख्य होता है, शेष सभी रस अङ्ग होते हैं। नाटक की सभी सन्धियाँ भी इसमे होती हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों मे से एक उस

महाकाव्य का फल होता है। कथानक या तो ऐतिहासिक होता है अथवा किसी सज्जन व्यक्ति के चरित्र पर आधृत होता है। महाकाव्य मे यथायोग्य इन विषयो का साङ्गोपाङ्ग वर्णन प्राप्त होता है--संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष (रात्रि का प्रारम्भिक भाग रजनीमुख), अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, आखेट, पर्वत, ऋतुएँ, वन, समुद्र, सम्भोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्रोत्पत्ति इत्यादि।*

महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षण सभी महाकाव्यो मे घटित नही होते अत. इन्हे अनिवार्य लक्षण न मानकर सामान्य लक्षण मानना चाहिए।

* उक्त पंक्तियों मे 'साहित्यदर्पण' के प्रकृतस्थल का अभिप्राय उपनिबद्ध किया गया है। ऐसा करने मे श्लोको का क्रमशः अनुवाद न करके उपयोगिता की दृष्टि से एक विषय की पूर्णता हेतु अर्थों का संचयन तत्तत् श्लोकों से कर लिया गया है—

'सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंश. क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते॥
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधय'।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा॥
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः॥
नाति स्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमय' क्वापि सर्ग. कश्चन दृश्यते॥
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथाया. सूचनं भवेत्।
संध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः॥
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।
संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः॥
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः।
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु॥'

कालिदास

कालिदास संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। यही कारण है कि भारतीय परम्परा ने इन्हें 'कविकुलगुरु' की उपाधि से विभूषित किया है। इन्होंने 'कुमारसम्भव' एवं 'रघुवंश' नामक दो महाकाव्य, 'मालविकाग्निमित्र' विक्रमोर्वशीय' एवं 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नामक तीन नाटक तथा 'ऋतुसंहार' और 'मेघदूत' नामक दो गीतिकाव्य लिखे हैं। निःसन्देह तीनों काव्यविधाओं में महाकवि की रचनाएँ सर्वोत्कृष्ट हैं। नाटक एवं गीतिकाव्यों का विवेचन सम्बद्ध अध्यायों में किया गया है। प्रस्तुतस्थल में पहले महाकवि के जीवन-वृत्त, निवासस्थान, व्यक्तित्व आदि पर विचार प्रस्तुत करने के पश्चात् उनके महाकाव्यों एवं काव्यगत विशेषताओं का परिचय दिया जा रहा है।

कालिदास का जीवनवृत्त—महाकवि कालिदास का जीवनवृत्त अज्ञानान्धकार के पटलों में दब गया है। सम्भावना यही है कि दबा ही रहेगा। परिपुष्ट प्रमाणों के अभाव में कितनी ही कहानियाँ गढ़कर कालिदास के सिर पर थोप दी गई हैं।

इन्हीं कल्पित कथाओं में से एक कथा के अनुसार कालिदास पहले एक निरे मूर्ख आदमी थे। राजा शारदानन्द की एक कुमारी पुत्री थी। नाम था उसका—विद्योत्तमा। विद्वत्ता के गर्व एवं अनिन्द्य सौन्दर्य का अपूर्व संयोग था उसमें। उसकी प्रतिज्ञा थी कि जो व्यक्ति शास्त्रार्थ में उसे परास्त कर देगा उसी को वह पतिरूप में वरण करेगी। विद्योत्तमा की विद्वत्ता के आगे बड़े-बड़े शास्त्रार्थी पण्डित भी मात खा गये। अतः पण्डितों ने ईर्ष्यावश षड्यन्त्र करके विद्योत्तमा का विवाह किसी अतिमूर्ख व्यक्ति के साथ करा देने की ठान ली।

पण्डित लोग मूर्खराज की खोज में निकल पड़े। मूर्खान्वेषणतत्पर पण्डितों ने देखा कि एक व्यक्ति जिस डाल पर बैठा है उसी को सन्धिस्थान पर काट रहा है। उन्हें उपयुक्त मूर्ख वर मिल गया। उन्होंने मूर्ख से कहा

कि 'हमलोग तुम्हारा विवाह एक अतीव सुन्दरी कन्या से करवा देंगे किन्तु तुम मौन धारण किये रहना, बोलना नहीं'। पण्डितो ने विद्योत्तमा के समीप उस मूर्ख को ले जाकर कहा कि ये हैं हमारे गुरुदेव-परम विद्वान्-मौनव्रत-धारी, संकेत द्वारा शास्त्रार्थ करेंगे। विद्योत्तमा ने एक उँगली उठाकर यह संकेत किया कि ईश्वर एक है, परन्तु मूर्ख ने यह समझकर कि उँगली उठाकर वह मेरी एक आँख फोड देने का संकेत कर रही है तो क्यो न उसकी दोनों आँखों के फोड़ देने का उत्तर दे दिया जाये—दो उँगलियाँ उठा दीं। बस, पण्डितो ने दो उँगलियों के उठाने के ऐसे तत्त्वपूर्ण शास्त्रीय अर्थ निकाले कि विद्योत्तमा को उस मूर्ख के साथ विवाह करना ही पडा।

मूर्खता प्रकट होने मे देर ही कितनी लगती है। प्रथम वार्तालाप के अवसर पर ऊँट के स्वर को सुनकर विद्योत्तमा ने पूछा कि यह क्या है? तो मूर्ख ने 'उट्र' कहकर अपनी मूर्खता का परिचय दे डाला। पण्डितो के षडयन्त्र से उत्पन्न अपनी इस दशा पर उसे घोर दु ख हुआ। क्रोध के कारण उसने मूर्ख पति को अपमानित करके घर के बाहर ढकेल दिया। पत्नीकृत तिरस्कार के दुःख से अतीव दु.खी वह मूर्ख कालीदेवी के मन्दिर मे जाकर आत्महत्या करने के लिए उद्यत हो गया। भगवती प्रसन्न हो गईं, बोलीं—'वरं-ब्रूहि' मूर्ख (कालिदास) ने 'विद्या' की सिद्धि की याचना की। देवी ने कहा—'ऐवमस्तु'। अब क्या था। कालिदास पूर्ण विद्वान् हो गये। झट घर दौड़े गये। द्वार बन्द थे। पुकार लगाई—'अनावृतं कपाट द्वारं देहि' (दरवाजे के किवाड़ खोलो) विद्योत्तमा ने पूछा—'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः (क्या वाणी मे कुछ विशेषता है?) कालिदास ने वाणी की विशेषता को प्रदर्शित करने के लिए 'अस्ति' पद को लेकर 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा···*' प्रारम्भ करके 'कुमारसम्भव' नामक महाकाव्य की रचना की; 'कश्चित्' पद को लेकर 'कश्चित्कान्ता-विरहगुरुणा····' से प्रारम्भ होने वाले 'मेघदूत' नामक गीतिकाव्य की रचना की और 'वाग्' पद को लेकर 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ···' से प्रारम्भ होने वाले 'रघुवंश' नामक महाकाव्य की रचना कर डाली। इस प्रकार विद्योत्तमा के द्वार खोलने पर स्वयं उसके सौभाग्यद्वार खुल गये कि पति पूर्ण विद्वान् होकर घर लौटा।

उक्त किंवदन्ती सारहीन इसलिए प्रतीत होती है कि—(१) एक सकोच-हीन विदुषी वर के विषय मे बिना पूरी छानबीन किये ही विवाह कर ले, विश्वास करना कठिन है। (२) विद्योत्तमा राजा की पुत्री थी, साधारण व्यक्ति की नही। तो क्या विवाह कराते समय पण्डितजन भयभीत नहीं हुए कि वस्तुस्थिति का पता चलने पर राजदण्ड भोगना होगा? (३) यदि कालिदास को 'काली' द्वारा विद्या प्राप्त हुई होती तो वे काली के प्रति अवश्य कृतज्ञ होते और अपने ग्रन्थो मे उसे विशिष्ट स्थान देते। किन्तु ऐसा नही है। (४) ऐसा प्रतीत होता है कि 'कालिदास' के नाम में 'कालि' शब्द देखकर किसी व्यक्ति ने प्रकृत घटना की कथा को गढ़ लिया हो अथवा काली के किसी भक्त ने ऐसी कल्पना की हो। (५) 'अस्ति कश्चिद्वाग्विशेष:' प्रश्न के उत्तर मे लिखे गये तीनों ग्रन्थों मे से किसी भी ग्रन्थ को कालिदास की सर्वप्रथम कृति नहीं माना जा सकता। अतः यह मानना होगा कि कुछ ग्रन्थ पहले लिखे गये और बाद मे उक्त प्रश्न के उत्तर रूप में निर्दिष्ट ग्रन्थो का प्रणयन किया गया। यह क्यों? (६) उक्त प्रश्न के उत्तर मे 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' नाटक को क्यो नही लिखा गया जो कालिदास की रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ है? क्या प्रश्नगत पदों मे से किसी एक पद द्वारा महाकवि अपने विश्वविख्यात नाटक की रचना नही प्रारम्भ कर सकते थे?

इसी प्रकार कालिदास के विषय मे एक अन्य कथा भी है। लङ्का के राजा कुमारदास (लगभग ५०० ई०) ने एक वेश्या की गृहभित्ति पर एक श्लोक का आधा भाग लिखवा दिया था।[1] उस श्लोक की पूर्ति करनेवाले को प्रचुरमात्रा मे स्वर्ण प्रदान करने की घोषणा की गई थी। रसिक महा-कवि भी वहाँ पधारे और अपूर्ण श्लोक को पूरा कर दिया।[2] वेश्या ने स्वर्ण के लोभ मे आकर कालिदास को मार डाला और स्वय श्लोक रचयित्री बन बैठी। कुमारदास वेश्या द्वारा कालिदास के वध को जानकर इतना दुःखी हुआ कि कालिदास की चिन्ता मे जलकर मर गया।

१—'कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न तु दृश्यते।'

२—'बाले तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्' (हे बाले! तुम्हारे मुख कमल पर ये दो कमल कैसे हैं?)

यह कथा भी कल्पित ही प्रतीत होती है किन्तु प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूप से कुछ भी कहना सम्भव नही। वैसे कालिदास ने अपनी कृतियो मे वेश्याओ का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है। उनकी दृष्टि में वेश्या अधम नहीं है अतः कालिदास की हत्यासम्बन्धी इस कथा को केवल उनके वेश्यासम्बन्ध के कारण मिथ्या नही बतलाया जा सकता। इस प्रकार प्रकृत कथा के खण्डन एव मण्डनहेतु प्रबल प्रमाणों का सर्वथा अभाव होने के कारण किसी निष्कर्ष पर पहुचना सम्भव नही।

कालिदास की जन्मभूमि एवं निवास-स्थान

जन्मभूमि—महाकवि ने अपने जन्म द्वारा किस ग्राम, नगर अथवा प्रान्त को पवित्र किया है, कहना अत्यधिक कठिन है। पुष्ट प्रमाणो के अभाव में तत्तत्प्रान्तीय विद्वान् अपने अपने प्रान्तो में कालिदास का जन्म मानते हैं। हमारे बङ्गाली विद्वान् मुर्शिदाबाद के 'गडडा सिगरू' नामक ग्राम में महाकवि का जन्म मानते हैं।[1] बङ्ग विद्वानो के अन्य तर्कों में एक प्रबल तर्क यह है कि बङ्ग देश में 'काली' की उपासना सर्वाधिक होती है तथा 'काली से महाकवि को काव्य प्रतिभा या विद्या प्राप्त हुई थी अत कालिदास नि सन्देह बङ्ग देश में अवतरित हुए। किन्तु बङ्ग विद्वानो के उक्त तर्क में सार नहीं है। 'कालिदास का जीवनवृत्त' शीर्षक द्वारा पिछले पृष्ठो में इस मत का खण्डन किया जा चुका है।

प्रोफेसर लक्ष्मीधर कल्ला ने अधिक प्रयास एव विस्तार के साथ कालिदास को काश्मीर मे जन्म लेने वाला सिद्ध करना चाहा है, विशेष रूप से हिमालय एव हिमालय से सम्बद्ध स्थानो के कालिदासकृत वर्णन के आधार पर। किन्तु 'राजतरङ्गिणी' में कालिदास का नाम काश्मीरी कवियो के अन्तर्गत उल्लिखित नही है तथा हिमालय या काश्मीर से सम्बद्ध स्थानो के वर्णन कर देने मात्र से कालिदास को काश्मीरी नहीं मान लेना चाहिए। हिमालय के वर्णन के अतिरिक्त अन्य स्थानो का हूबहू वर्णन भी कालिदास ने प्रस्तुत किया है। फिर क्यो कालिदास का जन्म काश्मीर से सम्बद्ध किया

[1]–देखिए 'कालिदास' (लेखक 'मिराशी') पृष्ठ ५३-५४, तृतीय संस्करण।

जाये, अन्य स्थानों से नहीं ? पूर्वाग्रह पर आधृत तर्क निर्णय के लिए समर्थ नहीं होता।

एक मत के अनुसार कालिदास का जन्म विदर्भ है क्योंकि विदर्भ का उल्लेख कालिदास के ग्रन्थों मे हुआ है किन्तु कालिदास ने अपने ग्रन्थों मे विदर्भ का साङ्गोपाङ्ग वर्णन नहीं प्रस्तुत किया है अत यह मत भी अमान्य ही सिद्ध होता है।

महामहोपाध्याय हरप्रसादशास्त्री का मत है कि कालिदास का जन्म विदिशा में हुआ होगा। क्योंकि विदिशा के समीपस्थ वनों नदियों एव स्थानों का वर्णन कालिदास ने 'मेघदूत' मे किया है। यह मत इसलिए मान्य नहीं है कि विदिशा के वर्णन की सीमा केवल तीन ही श्लोक हैं तथा उस वर्णन से भी मातृभूमि जैसा प्रेम नहीं टपकता।

'दरभङ्गा' जिले के 'उच्चैठ नामक ग्राम के समीप भगवती दुर्गा की एक मूर्ति तथा पास ही मे एक टीला है। परम्परा के अनुसार यही कालिदास को विद्या प्राप्त हुई थी। मैथिल विद्वान् उक्त स्थान के आधार पर कालिदास को मिथिला मे जन्म लेनेवाला मैथिल मानते हैं।

निवास स्थान—(उज्जयिनी) उज्जयिनी से महाकवि का बहुत अधिक लगाव है। उज्जयिनी का जितना एव जैसा वर्णन महाकवि ने किया है उतना एव वैसा वर्णन अन्य किसी नगरी का नहीं किया है। यद्यपि कालिदासकृत अलकावर्णन सर्वोत्कृष्ट है तथापि अलका है दिव्यनगरी और उसके वर्णन मे कविकल्पना अङ्क ग्रहीन हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि कालिदास का अधिक समय उज्जयिनी म व्यतीत हुआ था। इतना तो स्पष्ट ही है कि उज्जयिनी से महाकवि को अतिशय प्रेम रहा था। यह भी असम्भव नहीं कि कालिदास का जन्म भी उज्जयिनीमे ही हुआ हो किन्तु जब किसी भी मत के प्रबल प्रमाण न मिल सके तो कोई भी मत स्थिर करना समीचीन नहीं।

कालिदास का व्यक्तित्व

कालिदास का जन्म-स्थान एव समय तो विवादास्पद है ही किन्तु उनके व्यक्तित्व से सम्बद्ध अनेक विषयों में हमारा ज्ञान असंदिग्ध नहीं है।

कालिदास किस वर्ण[1] के थे ? इनके माता-पिता का नाम क्या था ? उनकी आजीविका क्या थी ? महाकवि के गुरु कौन थे ? शिक्षा कहाँ हुई थी ? उनका दाम्पत्यजीवन कैसा था ? वंशपरम्परा कैसी थी ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर प्रायः अन्धकार के गर्त मे पड़े हुए हैं, सम्भवतः पड़े ही रहेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास का जन्म किसी अतीव समृद्ध एवं प्रकाण्ड विद्वान् के घर मे नही हुआ होगा अन्यथा उसका संकेत कहीं न कहीं अवश्य किया गया मिलता। उनकी प्रतिभा ने ही उनको ऊपर उठाया होगा और प्रसिद्धि पाने के लिए अथवा काव्य के उचित मूल्यांकन के लिए उन्हें संघर्ष करना पड़ा होगा। 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक में कालिदास ने स्वयं इस प्रश्न को उठाया है कि यदि 'भास', 'सौमिल्ल' एवं 'कविपुत्र' आदि कवियों की रचनायें पहले से ही विद्यमान हैं तो फिर क्यों कालिदासकृत नवीन नाटक का अभिनय होना चाहिए ? यह प्रश्न कालिदास का नहीं था, सहृदयों का था जो कालिदासीय प्रतिभा से परिचित नहीं हो पाये थे।

कालिदास श्रुतिस्मृतिसम्मत वैदिकधर्म के अनुयायी थे—'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छन्'[2] 'पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः'[3]। तथा जैसा कि अन्य विद्वानों का मत है, अधिक सम्भावना कि कालिदास वर्ण से ब्राह्मण हों। कालिदास के प्रगाढ़ पाण्डित्य से तथा ऋषियों एवं आश्रमों के वर्णन से ऐसा अनुमान होता है कि उन्होंने किसी अच्छे गुरुकुल मे शिक्षा प्राप्त की थी ? इनके ग्रन्थों से पता चलता है कि इन्होंने अवश्य ही संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद्, स्मृति, दर्शन, धर्मशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, कामशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, पुराण, इतिहास, सामुद्रिकशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, ज्योतिष, चित्रकला, सङ्गीत, युद्धविज्ञान तथा साहित्य-शास्त्र के समस्त अङ्गों का सूक्ष्म अध्ययन किया था तथापि वे अभिमानशून्य थे—

१–मिराशी के अनुसार कालिदास निश्चित रूप से ब्राह्मण थे, म.म. हरप्रसादशास्त्री के अनुसार कालिदास दसोरा ब्राह्मण थे। ('कालिदास' पृष्ठ ६९, तृ० सं०)

२–रघुवंश-२।२;　　　३–अभिज्ञानशाकुन्तलम्—अङ्क ६;

'क्व सूर्यप्रभवो वंश क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्[१] ॥'

कालिदास सरल एवं विनोदप्रिय व्यक्ति थे । तभी तो उन्हें 'कविता-कामिनी का विलास' कहा जाता है । विद्वत्ता का प्रदर्शन छोड़कर महाकवि सरल एव सरस भाषा में अपने वक्तव्य का प्रकाशन करके श्रोताओं को रस से आप्लावित कर देना चाहते हैं ।

कालिदास को भूगोल का अच्छा ज्ञान था । 'मेघदूत' भौगोलिक स्थानों के वर्णनों से भरा पड़ा है । 'कुमारसंभव' में हिमालय का यथार्थ चित्रण मिलता है । सुदूर पूर्व में किया गया वर्णन आज के समालोचकों की दृष्टि में खरा इसलिए उतरा है कि भूगोलसम्बन्धी विवरण का आधार कल्पना न होकर स्वय निरीक्षण था ।

कालिदास का प्रेय एव श्रेय दोनों के प्रति पक्षपात था । जहाँ उन्होंने यह लिखा है कि—

'विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां ।
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि[२] ॥'

तथा 'न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः[३] ।'
वहीं पर श्रेय भी उतना ही अनिवार्य है—

'प्रजायै गृहमेधिनाम्'[४], 'योगेनान्ते तनुत्यजाम्'[५] इत्यादि ।

प्रेय एवं श्रेय का एकत्र मिलन भी द्रष्टव्य है—

'वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर ! हतास्त्वं खलु कृती[६] ।'

दुष्यन्त शकुन्तला के रूप का उपभोग करना चाहता है । प्रेय के प्रति उसका अतीव अनुराग है किन्तु श्रेय उसके लिए अपरिहार्य है । उसका उतना ही, सम्भवतः उससे भी अधिक महत्त्व है । तत्त्वान्वेषण के पूर्व उसने शकुन्तला को स्वीकार नहीं किया । कालिदास को श्रेयात्मक प्रेय भी स्वीकार्य है । एवमेव—

१–रघुवंश १।२; २–पूर्वमेघ २८; ३–अभिज्ञानशाकुन्तलम्–अङ्क २;
४–रघुवंश १।७; ५–रघुवंश १।८; ६–अभिज्ञानशाकुन्तलम्–अङ्क १;

:भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुपार ।
न च खलु परिभोक्तु नैव शक्नोमि हातुम्[१] ॥'

का भाव विचारणीय है ।

कालिदास शिव के उपासक थे । 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के नान्दी श्लोक मे शिवस्तुति है । 'रघुवश' के आदि श्लोक मे शिव-पार्वती की वन्दना है । 'कुमारसम्भव, तो शिवतनय कार्तिकेय के जन्म से सम्बद्ध महाकाव्य ही है । 'मेघदूत' मे बहुत शिव का सङ्कीर्तन है ।

ऐसा सरस एव सहृदय विश्वविश्रुत महाकवि कितनी आयु भोगकर इस मधुर मर्त्यलोक को छोडने के लिए विवश हुआ होगा, हम निश्चितरूप से नही वतला सकते तथापि विद्वानों की गवेषणा के अनुसार कालिदास ने कम से कम पचपन वर्ष की आयु अवश्य प्राप्त की होगी ।[२]

कालिदास का समय

कालिदास के समय को लेकर विद्वानो में विशेष विप्रतिपत्ति है । ऐकमत्य इसी मे है कि कालिदास का समय ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी के पूर्व नही है और ईसा के पश्चात् छठी शताब्दी के वाद नही है । प्राय. सभी मुख्य मतो का सार यहाँ दिया जा रहा है । प्रमुख मत ५ हैं—

(१) ईसा से पूर्व द्वितीय शताब्दी,
(२) ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी,
(३) ईसा की तृतीय शताब्दी,
(४) ईसा की पञ्चम शताब्दी,
(५) ईसा की छठी शताब्दी,

(१) ईसा से पूर्व द्वितीय शताब्दी—यह मत प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० कुन्हन राजा का है । इनके अनुसार कालिदासकृत 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक के भरतवाक्य[३] मे शुङ्गवंशीय राजा अग्निमित्र का उल्लेख है । ईसा के पूर्व द्वितीय शताब्दी मे अग्निमित्र राज्य करता था । इसकी राजधानी

१—अभिज्ञानशाकुन्तलम्-अङ्क ५.
२—कालिदास (मिराशी पृष्ठ ८६ तृतीय सस्करण)
३—'आशास्यमीतिविगमप्रभृति प्रजानां सम्पत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे ।'

विदिशा थी। कालिदास इन्हीं अग्निमित्र के आश्रय में रहते होंगे। 'विदिशा' का उल्लेख 'मेघदूत'[1] में हुआ है।

यह मत बहुसमर्थित नहीं है। सम्भव है अग्निमित्र कालिदास के समसामयिक न रहे हों अपितु अग्निमित्र और कालिदास के बीच में अधिक समय का व्यवधान हो। विदिशा का उल्लेखमात्र कर देने से यदि कालिदास को अग्निमित्र के समय से सम्बद्ध करना उचित माना जाये तो अनेक नगरों के विशद वर्णन करने के कारण तत्तत् नगरों के शासकों के काल से कालिदास को क्यों न सम्बद्ध माना जाए? अतः इस मत को समर्थन न मिल सका।

(२) ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी—भारत के पण्डितवर्ग की परम्परा कालिदास को विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक मानती है—

'धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटकर्परकालिदासः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपते सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥'

विद्वद्वर्ग में इस विषय पर मतभेद है कि ईसा से ५६ वर्ष पूर्व विक्रम संवत् के संस्थापक तथा 'विक्रमादित्य' उपाधि का धारण करनेवाले उज्जयिनी के राजा कालिदास के आश्रयदाता थे अथवा विक्रमादित्य की उपाधि को धारण करनेवाले चन्द्रगुप्त द्वितीय जिनका समय ईसवी सन् ३५१ से ४१३ है। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी' मत के समर्थक विद्वान् चन्द्रगुप्त द्वितीय को कालिदास का आश्रय नहीं मानते अपितु ईसा पूर्व ५६ वर्ष विक्रम संवत् के संस्थापक 'विक्रमादित्य' को क्योंकि—

(१) भारतीय परम्परा चन्द्रगुप्त द्वितीय को कालिदास का आश्रयदाता मानने के पक्ष में नहीं है। (२) गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' पर आधृत सोमदेवकृत 'कथासरित्सागर' में उज्जयिनी के राजा एवं महेन्द्रादित्य के पुत्र परमारवंशीय राजा विक्रमादित्य का वर्णन मिलता है। विदेशियों को हराकर 'मालवगणस्थिति' संज्ञक एक नवीन संवत् का प्रवर्तित करनेवाले इस परम शैव सम्राट् ने वैदिक धर्म का पुनः प्रसार-प्रचार करवाया तथा उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर का निर्माण करवाया। (३) कालिदासकृत 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक में विक्रमादित्य एवं उनके पिता महेन्द्रादित्य दोनों का प्रकारान्तर से उल्लेख मिलता है और ऐसी सम्भावना है कि इस नाटक का अभिनय

१. तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम्' (पूर्वमेघ–२५)।

विक्रमादित्य के सिंहासनारूढ़ होने के समय हुआ होगा। (४) हाल (प्रथम शताब्दी) द्वारा प्रणीत 'गाथासप्तशती' नामक ग्रन्थ मे विक्रम का उल्लेख हुआ है। (५) विक्रमादित्य परमारवंशीय होने के साथ ही सूर्यवंशीय भी थे। रघुवंश मे कालिदास ने सूर्यवंश का वर्णन किया है। (६) महाकाल के मन्दिर को बनवानेवाले विक्रमादित्य शैव थे तथा कालिदास भी शैव थे। (७) अश्वघोष (ईसा की प्रथम शताब्दी) का काव्य कालिदास के काव्य से प्रभावित है। (८) कालिदास के काव्य मे परवर्ती कवियों की अपेक्षा अपाणिनीय प्रयोगो का आधिक्य कालिदास को अपेक्षाकृत पूर्ववर्ती सिद्ध करता है।

(२) ईसा की तृतीय शताब्दी—ज्योतिष के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री केतकर ने 'रघुवंशमहाकाव्यम्' के कतिपय श्लोको के आधार पर कालिदास का का समय ईसा पश्चात् तृतीय शताब्दी (लगभग २८० वर्ष ईसा के पश्चात्) माना है। उन्होने सामान्य वर्णन मे ज्योतिषशास्त्र की सूक्ष्मता की कल्पना करके प्रकृत मत को स्थिर करने का प्रयास किया है।

विद्वानो ने उक्त मत का समर्थन नही किया है। यद्यपि कालिदास को ज्योतिषशास्त्र का सूक्ष्म ज्ञान था तथापि उनका प्रयोजन काव्य द्वारा सहृदयो के हृदयो को आनन्दित करना था, ज्योतिष की सूक्ष्मताओ द्वारा काव्य को जटिल बनाना अथवा ज्योतिषशास्त्र के पाण्डित्य का प्रदर्शन करना नही था।

(४) ईसा की पञ्चम शताब्दी—प्रो. के बी पाठक के अनुसार 'रघुवंश' के कतिपय श्लोको (४।६६-६८)से सूचित होता है कि 'वक्षु'संज्ञक नदी के तट पर रघु ने हूणो को पराजित किया था। आधुनिक'आक्सस' नदी ही 'वक्षु' नदी है। ई० सन् ४५० के आसपास 'आक्सस' नदी पर हूणो का आधिपत्य हुआ और उसी समय उन्होने भारत पर आक्रमण किया। स्कन्दगुप्त ने हूणों से मोर्चा लिया यह बात, एक शिलालेख से (गिरनार का शिलालेख) जिसका समय ४५५-४५६ ई० सन् है, सिद्ध होती है अतः कालिदास का समय ४५० ई० सन् और ४५५-४५६ ई० सन् के बीच है अर्थात् ईसा की पञ्चम शताब्दी (का मध्य) है।

हूणो का उल्लेख 'अवेस्ता' 'महाभारत' 'ललितविस्तार' (ईसा की तृतीय शताब्दी) आदि ग्रन्थो मे भी है अतः कालिदास पञ्चम शताब्दी के

पूर्व भी हो सकते हैं। इस प्रकार प्रो० पाठक के तर्क निर्बल पड़ जाते हैं और उनके मत को सिद्ध करने में सहायक नहीं हो पाते।

(५) ईसा की छठी शताब्दी—इस मत के जन्मदाता जर्मन विद्वान् मैक्समूलर थे। इनके समर्थकों में से प्रमुख हैं—डा० हार्नेली, महामहोपाध्याय हरप्रसादशास्त्री, कृष्णमाचारियर, जेम्स फर्ग्यूसन इत्यादि।

मैक्समूलर का कथन है कि छठी शताब्दी के पूर्व के जितने शिलालेख हैं, वे सब प्राकृत भाषा में हैं अतः छठी शताब्दी के पूर्व का समय संस्कृत वाङ्मय के विकास की दृष्टि से वैभवशाली नहीं था, अतएव कालिदास का समय छठी शताब्दी के पूर्व नहीं हो सकता। किन्तु मैक्समूलर की उक्त धारणा समीचीन नहीं है क्योंकि ईसा की प्रारम्भिक पाँच शताब्दी में प्राप्त शिलालेखों से तत्कालीन संस्कृत भाषा के विकास की पुष्टि हो चुकी है। अश्वघोष के महाकाव्य 'बुद्धचरित' एवं 'सौन्दरनन्द' संस्कृत भाषा की अनूठी कृतियाँ हैं।

फर्ग्यूसन महोदय की धारणा है कि राजा विक्रमादित्य ने शकों को ५४४ ईसवी सन् में पराजित किया था और अपनी इस विजय को चिरस्थायी करने के निमित्त विक्रम संवत् को चलाया किन्तु इस सन् को उन्होंने अधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन सिद्ध करने के लिए ६०० वर्ष का समय दे दिया अर्थात् इस सन् का प्रारम्भ ईसा पूर्व ५६–५७ वर्ष से किया जब कि इसके प्रचलित होने का वास्तविक समय ईसवी सन् ५४४ है। इस प्रकार विक्रमादित्य का समय ५४४ ईसवी सन् के आसपास है और विभिन्न विद्वानों के अनुसार कालिदास विक्रमादित्य के नवरत्नों में से थे। अतएव कालिदास का समय छठी शताब्दी है।

भारतीय शिलालेखों के अध्ययन से स्पष्ट हो गया है कि ५४४ ईसवी सन् से एक शताब्दी से भी अधिक पहले 'मालव' संवत् के नाम से 'विक्रम' संवत् चल चुका था। फिर विक्रम संवत् के आधार पर कालिदास का समय छठी शताब्दी कैसे हो सकता है।

ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित आचार्य वराहमिहिर की कृति 'बृहत्संहिता' तथा कालिदासकृत 'रघुवंश' में प्राप्त ज्योतिष-सम्बन्धी विवरण में अत्यधिक समानता है, यथा–(१) भूमि की छाया के कारण चन्द्रग्रहण होना, (२)

सर्गों में प्राप्त वर्णन प्रायः इस प्रकार है—सर्ग (१) मे हिमालय वर्णन, नारद द्वारा शिव के साथ पार्वती के विवाह की भविष्यवाणी, शिव तथा पार्वती द्वारा हिमालय पर तपश्चर्या। पार्वती द्वारा उनकी सेवा। सर्ग २—तारकासुर का उपद्रव तथा ब्रह्मा द्वारा यह विज्ञापन कि शिव के द्वारा उत्पन्न पुत्र तारक को मार सकेगा। सर्ग ३—इन्द्र की आज्ञा से कामदेव रति तथा वसन्त को लेकर समाधिस्थ शिव के मन मे कामवासना जगाने के लिए प्रहरी नन्दी से आँख बचाकर भीतर चला गया और जब शिव के समीप आई पार्वती शिव को माला समर्पित कर रही थी काम ने शिव पर सम्मोहन बाण चला दिया। शिव की चित्तवृत्ति चञ्चल होने लगी, जिसका उन्होंने दमन किया और क्रोध के कारण अपराधी काम को अपनी नेत्राग्नि से भस्म कर डाला। सर्ग ४—काम की पत्नी रति का विलाप। आकाशवाणी हुई कि शिव पार्वती के विवाह के अवसर पर काम को प्राण दान मिलेगा अत अतीव विह्वल रति ने अपने प्राण नहीं त्यागे। सर्ग ५—पार्वतीद्वारा शिव को पतिरूप मे प्राप्त करने हेतु घोरतपश्चर्या, ब्रह्मचारीवेश मे शिव द्वारा पार्वती के प्रेम की परीक्षा, पार्वती के निश्चल एव असामान्य प्रेम द्वारा शिव की तुष्टि। सर्ग ६—शिव के द्वारा पार्वती के साथ विवाह के प्रस्ताव का हिमालय द्वारा अनुमोदन। सर्ग ७—शिव पार्वती विवाह। सर्ग ८—शिव पार्वती की क्रीडा का वर्णन। सर्ग ९—देवताओं द्वारा प्रेषित कपोतरूपधारी अग्नि म शिव द्वारा वीर्यस्थापन। असहनीय होने के कारण अग्नि के द्वारा उस वीर्य को गङ्गा मे डालना। सर्ग १०—गङ्गा के द्वारा असह्य वीर्य को ६ कृत्तिकाओं मे और कृत्तिकाओं द्वारा उसे वेतसवन में डालकर प्रस्थान कर जाना। सर्ग ११—विमान द्वारा जाते हुए शिव पार्वती द्वारा बालक को देखना, ६ दिनो म ही कुमार का सर्वशास्त्रपारङ्गत होने का वर्णन। सर्ग १२—कुमार देवसेना के सेनापति बनते हैं। सर्ग १३—सेनापति कुमार के साथ देवों द्वारा तारकासुर पर चढ़ाई। सर्ग १४–१७ मे रोमाञ्चकारी युद्ध, तारक की कुमार के बाण से मृत्यु, स्वर्ग से कुमार से पर पुष्पवृष्टि एवं इन्द्र की निश्चिन्तता वर्णित है।

प्रथम ८ अथवा ९ सर्ग कालिदास रचित हैं। बाद के सर्ग अन्य कवि की रचना है क्योकि परवर्ती सर्ग भाषा एव भाव की दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं हैं।

कला एव भाव दोनो की दृष्टि से 'कुमारसम्भव' उत्तम महाकाव्य है। चाहे प्रकृतिवर्णन हो अथवा मानवीय हृदय का वर्णन; चाहे शिव पार्वती की शृङ्गार-चेष्टाओ का वर्णन हो अथवा रति के विलाप का, प्रत्येक वर्णन मे महाकवि के शब्दो मे चमत्कार है। कुमारसभव का प्रारभ हिमालय के वर्णन से होता है। हिमालय का जैसा चित्रण कालिदास ने किया है वैसा सम्भवत किसी अन्य कवि ने नही किया है[1]।

शिव मे सभोगेच्छा उत्पन्न करने हेतु कामदेव चल पडा। उसने वसन्त को सहायक रूप मे लिया। उस समय सम्पूर्ण वातावरण मुग्ध हो गया, भावविभोर हो उठा। आम की मञ्जरियो का आस्वाद करके जब कोकिल मधुरस्वर से कूज पडा तो मनस्विनी स्त्रियाँ अधीर होकर स्वत मान त्याग देती थी, जैसे वह कोकिल का स्वर न होकर कामदेव का ही स्वर हो[2]। और अनुरक्त भ्रमर भ्रमरी का ही अनुगमन कर रहा था। जिस पुष्परूपी पात्र मे भ्रमरी रस पीने लगी भ्रमर भी उसी के साथ उसी पुष्प-पात्र में रसपान करने लगा। कृष्णसार मृग जब अपनी प्रियतमा को सींग से खुजलाने लगा तो प्रियतम के स्पर्श से भाव विह्वला मृगी के नेत्र एकदम बन्द हो गये[3]। अनुरक्ता हस्तिनी की सूँड मे जो कमल के पराग से सुगन्धित जल था उसे बडे प्रेम से हाथी को सूँड मे देकर पिलाने लगी और चक्रवाक अपना अधकुतरा कमलनाल प्रियतमा को देकर प्रसन्न करने लगा[4]।

कालिदास मानव सौन्दर्य के अनूठे चित्रकार हैं। अपनी मगनी के प्रस्ताव को सुननेवाली पार्वती की स्थिति निम्नलिखित श्लोक मे देखिए—

१ देखिये– कालिदास का प्रकृतिवर्णन'शीर्षक मे प्रारम्भ के दो उद्धरण।

२ चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठ पुंस्कोकिलो यन्मधुर चुकूज।
मनस्विनीमानविघातदक्ष तदेव जात वचन स्मरस्य॥
(कुमार०–३।३२)

३–मधु द्विरेफ. कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमान।
शृङ्गेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसार॥'
(कुमार० ३।३६)

४–'ददौ रसात्पङ्कजरेणुगन्धि गजाय गण्डूषजल करेणु।
अर्द्धोपभुक्तेन बिसेन जायां सभावयामास रथाङ्गनामा॥'
(कुमार० ३।३७)

'एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥'[1] (कुमार० -६।८४)

तपोलीना पार्वती पर गिरी हुई वर्षा की प्रथम जलबिन्दु उसकी नाभि तक जिस प्रकार पहुँचती है, उसे देखिए—

'स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः ।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः ॥'[2]

अभी रात्रि का चतुर्थांश ही व्यतीत हुआ था। शङ्कर के चिन्तन में निमग्न पार्वती की पल भर के लिए आँख लगी कि सहसा चौंक पड़ी। यद्यपि वहाँ शङ्कर विद्यमान नहीं थे फिरभी पार्वती को ऐसा लगा कि शङ्कर वहाँ हैं और 'नीलकण्ठ कहाँ जा रहे हो?' कहकर शङ्कर के अस्तित्वहीन गले में बाहें डाल दीं। भावुक हृदय का कैसा मार्मिक एवं यथार्थ चित्रण है—

'त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं, निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत ।
क्व नीलकण्ठ व्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना ॥'
(कुमार०—५।५७)

कामदेव को भस्म करने के निमित्त महादेव के तृतीय नेत्र से निकली हुई ज्वाला को देख डरी कामपत्नी रति मूर्च्छित हो गई। अतः उसने काम को भस्म होते नहीं देखा। मूर्च्छा के दूर होते ही उसने देखा कि पुरुष के आकार की राख का ढेर पड़ा हुआ है। दुःख से पगलाई रति बिलख-बिलख कर रोने लगी—'हे प्रियतम! तुम जो कहते थे कि रति मेरे हृदय में रहती है, बिल्कुल झूठ है क्योंकि जब तुम्हारा समग्र शरीर जल गया तो मैं क्यों नहीं जली।[3] हे प्रियतम! इसके पूर्व कि स्वर्ग की चतुर सुरसुन्दरियाँ तुम्हे छुभा लें,

---

१—इस श्लोक का अभिप्राय देखिये—'कालिदास के काव्य की विशेषतायें' शीर्षक के प्रारम्भिक अंश में।

२—श्लोक का अभिप्राय देखिये—'कालिदास के काव्य की विशेषतायें' शीर्षक के अन्तर्गत (१) ध्वनि के अन्तिम भाग में।

३—'हृदये वससीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम् ।
उपचारपदं न चेदिदं त्वमनङ्गः कथमक्षता रतिः ॥'
(कुमार० ४।९)

मैं आग से जलकर तुम्हारी गोद में आ बैठूंगी।[1] और देख बसन्त ! जब तू अपने मित्र कामदेव का श्राद्ध करे तो उसे आम की चञ्चल पल्लवयुक्त मञ्जरी अवश्य देना क्योंकि तुम्हारे मित्र को आम की मञ्जरी बहुत ही प्रिय थी।[2]

महाकवि की अन्य कृतियों के समान कुमारसम्भव भी चुभती हुई सूक्तियों का आगार है, यथा–'क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव' (१।१२), 'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः' (१।५९), 'क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्' (५।५) 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' (५।३३), 'न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्' (५।४५) 'क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते' (५।८६) इत्यादि।

(२) रघुवंश—रघुवंश समग्र संस्कृत साहित्य में सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है इस बात को विद्वान् एक स्वर से स्वीकार करते हैं। इसकी उत्कृष्टता के कारण ही कालिदास को 'रघुकार' कहा जाने लगा–'क इह रघुकारे रमते'।

रघुवंश में कुल १९ सर्ग हैं जिनमें राम एवं उनके वंशजों का सर्वगुणसमन्वित चरित्र का वर्णन किया गया है। रघुवंश महाकाव्य का नामकरण दशरथ के पितामह 'रघु' के नाम पर हुआ है। प्रथम ३ सर्गों में रघु के पिता दिलीप का वर्णन, ४ थे सर्ग में रघु की दिग्विजय का वर्णन है। ५ वें सर्ग में 'वरतन्तु' नामक गुरु का शिष्य 'कौत्स' रघु के समीप गुरु के लिये धन माँगने आता है। धन प्राप्ति से सन्तुष्ट कौत्स के आशीर्वाद से रघु को 'अज' नामक पुत्र की प्राप्ति होती है। ६ ठे सर्ग में अज-इन्दुमती स्वयंवर का वर्णन। ७ वें में अज को राज्य समर्पित करके रघु संन्यास लेते हैं। ८ वें में वर्णित है–रघु की मृत्यु, अज को दशरथ नामक पुत्र की प्राप्ति, नारद की वीणा से गिरे हुए पुष्प से इन्दुमती की मृत्यु एवं अज का मार्मिक

१–'अहमेत्य पतङ्गवर्त्मना पुनरङ्काश्रयिणी भवामि ते।
चतुरैः सुरकामिनीजनैः प्रिय यावन्न विलोभ्यसे दिवि॥'
(कुमार० ४।२०)

२–परलोकविधौ हि माधव स्मरमुद्दिश्य विलोलपल्लवाः।
निवपेः सहकारमञ्जरीः प्रियचूतप्रसवो हि ते सखा॥'
(कुमार० ४।३८)

—हृदय को पिघला देने वाला—विलाप। ६–१२ सर्गों में दशरथ एवं राम की कथा। १३ वें सर्ग में राम विमान द्वारा सीता के साथ अयोध्या लौटते हैं। १४ वें में राम-राज्य का प्रारम्भ, सीता पर चरित्र सम्बन्धी लाञ्छन' गर्भिणी सीता का परित्याग, वाल्मीकि द्वारा राम की भर्त्सना, अयोध्या में अश्वमेध यज्ञ का शुभारम्भ। १५ वें में लवकुश का जन्म, शत्रुघ्न के द्वारा मथुरावासी लवणासुर का वध, लवकुश का परिचय, पृथ्वी देवी के साथ सीता का चला जाना, तथा राम-लक्ष्मण आदि का दिवङ्गत होना वर्णित है। १६–१९ सर्गों में राम के वंशजों (कुश से लेकर अग्निमित्र) का वर्णन है। रघुवंश में कुल २८ राजाओं का वर्णन है।

मङ्गलाचरण में कवि पार्वती एवं शिव की वन्दना वाक् एवं अर्थ की प्रतिपत्ति के लिये करता है और वस्तुतः रघुवंश में वाक् एवं अर्थ का अनूठा संयोग है भी। तदनन्तर कवि ने अपनी नम्रता का परिचय दिया है। रघु के वंश में उत्पन्न राजाओं के चरित्र का जैसा चित्रण महाकवि की लेखनी से हुआ वैसा उदात्त, आदर्श, महनीय एवं समाकर्षक चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। ये राजा धन का सञ्चय त्याग करने के लिये करते थे (न कि भोग विलास या लोभ के वश में होकर), सत्य बोलने के लिये मितभाषण करते थे (ऐसा नहीं कि वे वावदूक नहीं थे), यश प्राप्त करने के लिये विजय चाहते थे (न की लोभ, ईर्ष्या अथवा शत्रु एवं जनता को पीडित करने की इच्छा से प्रेरित होकर) सन्ततिलाभ के निमित्त पाणिग्रहण करते थे (भोग के निमित्त नहीं)—

'त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्॥'
(रघु० १।७)

प्रजा को सन्मार्ग पर चलाने, रक्षा करने तथा भरण-पोषण करने के कारण राजा दिलीप प्रजा का पिता था। और लोग तो पिता इसलिये कहे जाते थे कि वे पुत्रों के जन्मदाता थे—

'प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥'
(रघु० १।२४)

विद्वान् गुरुओं एवं उनके शिष्यों का उस समय समाज में क्या स्थान था यदि ऐसी जिज्ञासा हो तो रघुवंश का ५ वां सर्ग देखना चाहिए। आदर्श गुरु वरतन्तु जो शिष्य द्वारा पुनः पुनः आग्रह किये जाने पर भी एक कौड़ी दक्षिणा में नहीं चाहता, अति आग्रह करने पर क्रुद्ध हो जाता है और १४ करोड़ मांग बैठता है। शिष्य-कौत्स रघु के समीप धन- याचना के निमित्त जाता है किन्तु विश्वजित यज्ञ मे सर्वस्व दान कर देने के कारण रघु के पास धन का सर्वथा अभाव है तथापि वे कौत्स को विमुख नहीं करते और कुबेर से प्रभूत स्वर्णराशि प्राप्त करके कौत्स को सम्पूर्ण स्वर्णराशि दे देना चाहते हैं। किन्तु कौत्स उतना ही धन स्वीकार करना चाहता है जितना उसे गुरु को देना है। निर्लोभिता का कितना सुन्दर निदर्शन है? साकेत निवासी जन कौत्स की निर्लोभिता—अपरिग्रह—एवं रघु की दानप्रियता की महती वृत्ति को देखते ही रह गये—

जनस्य, साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ'।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च॥'
(रघु० ५।३१)

रघुवंश मे प्राय सभी रसो का विचित्र समावेश है। स्वयम्वरवेला मे इन्दुमती की ओर सैकड़ों नृप निर्निमेष दृष्ट्या देखने लगे जैसे उसी मे उनका अन्तःकरण लीन हो गया हो और केवल शरीर ही आसनस्थ हो—

'तस्मिन् विधानातिशये विधातु कन्यामये नेत्रशतैकलक्ष्ये।
निपेतुरन्तः करणैर्नरेन्द्रा देहै स्थिता केवलमासनेषु॥'
(रघु० ६।११)

इन्दुमती की मृत्यु हो जाने पर अज पर दुःख का वज्रपात हो गया। उनकी जिजीविषा समाप्त हो गई। चाहा कि इन्दुमती के साथ ही चिता पर चढ़कर जल जायें। किन्तु सोचा कि लोग यही कहेंगे कि राजा होकर भी अज पत्नी के पीछे प्राणों का परित्याग कर दिया और आत्मदाह से विरत हुए—

'प्रपदामनुसस्थित शुचा नृपति सन्निति वाच्यदर्शनात्।
न चकार शरीरमग्निसात् सह देव्या न तु जीविताशया॥'

राम विमान द्वारा सीता के साथ अयोध्या लौटते हैं। सीता को तत्तत् स्थानों का परिचय देते हैं। सीते! देखो यह वही माल्यवान् पर्वत की चोटी

है जिस पर बादलो ने वर्षा की पहली पहली बूँदो को और तुम्हारे वियोग मे विधुर मैंने आँसुओ को साथ ही साथ गिराया था प्रिये ! कैसी मार्मिक अनुभूति है—

'नव पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम् ।'
(रघु० १३।२६)

और यह, यह है वह स्थली जहां तुम्हारी खोज करते-करते मैं पहुँचा और देखा कि तुम्हारा एक नूपुर पृथ्वी पर गिरा पडा हुआ है बिल्कुल शान्त, चुप। लगता था जैसे तुम्हारे चरण के वियोगसे दु खी होने के कारण उसका बोल न फूट रहा हो—

'सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वा भ्रष्ट मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदु खादिव बद्धमौनम् ॥'
(रघु० १३।२३)

इसी प्रकार वीररस का समावेश रघु, अज एव राम के द्वारा किये गये युद्धो मे देखा जा सकता है। शान्तरस की व्यञ्जना रघु के दान तथा वसिष्ठ एव वाल्मीकि के आश्रमवर्णनो मे हुई है।

अलङ्कार—उपमा अलङ्कार के एक दो उदाहरणो द्वारा कालिदास के अलङ्कार-प्रयोग की निपुणता का आभास हो जायेगा। चण्डी कैकेयी के मुख से निकलने वाले दो वर ऐसे थे जैसे वर्षा से भीगी हुई भूमि के छेद से निकले हुये दो सर्प हो—

'सा किलाश्वासिता चण्डी भर्त्रा तत्सश्रुतौ वरौ ।
उद्ववामेन्द्रसिक्ता भूर्बिलमग्नाविवोरगौ ॥'
(रघु०-१२।५)

वसिष्ठ की गाय नन्दिनी के पीछे चलने वाले दिलीप की उपमा 'छाया' से दी गई है- 'छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्' (रघु०२।६) नन्दिनी के मार्ग का अनुगमन करने वाली सुदक्षिणा की उपमा श्रुति का अनुगमन करनेवाली स्मृति से दी गई है—'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्' दिलीप एव सुदक्षिणा के बीचशोभा देने वाली नन्दिनी की उपमा दिन एव रातके बीच शोभा देनेवाली सध्या से दी गई है-'दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या'। स्वयवर मे इन्दुमती जिस नृप को छोडकर आगे बढती थी वह वैसा ही मलिनहो जाता था जैसा राजमार्ग पर स्थित वह महल जिसे रात्रि मे दीपशिखा छोडकर आगे बढ जाये—

'सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥'
(रघु०-६।६७)

निदर्शना—'क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥'

व्यतिरेक—'दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि ।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे ॥'

विरोध—'अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः ।
स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव ॥'

छन्द—रघुवंश मे छन्दों की विविधता है–वंशस्थ, वसन्ततिलका हरिणी, पुष्पिताग्रा, मालिनी, उपजाति, द्रुतविलम्बित आदि बहुत से छन्दों का उपयोग हुआ है ।

सूक्तियाँ—रघुवंश की सूक्तियाँ अतीव मार्मिक हैं यथा, 'पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघनरो हि वृद्धेः' (५।१६), 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' (६।३०), 'अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु' (८।४३), 'तेजसा हि न वयः समीक्ष्यते', 'आज्ञा गुरुणा ह्यविचारणीया' (१४।४३) इत्यादि ।

विवेचन का सारांश यह है कि रघुवंश संस्कृत का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है ।

कालिदास के काव्य की विशेषताएँ

(१) ध्वनि—*कालिदास के काव्यों की गणना ध्वनि काव्य के अन्तर्गत* की जाती है । काव्यमीमांसकों ने ध्वनिकाव्य को उत्तम काव्य माना है । *अभिधेय एवं लक्ष्य अर्थ के अतिरिक्त सहृदयहृदयवेद्य अर्थ के बोधक काव्य* को ध्वनि काव्य कहते हैं । ऋषि अङ्गिरा हिमालय से पार्वती की मंगनी का *प्रस्ताव करते हैं । समीप ही बैठी पार्वती सब कुछ सुन रही है । आकार* एवं चेष्टाओं द्वारा उसकी मानसिक स्थिति का अद्भुत चित्रण कालिदास की *लेखनी से इस प्रकार हुआ है—*

'एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥' (कुमार०-६।८४)

[जब देवर्षि ऐसा बोल रहे थे तब पिता—हिमालय—के बगल मे मुँह झुकाये बैठी पार्वती लीला-कमलों (खेलने के कमलों) की पखुडियों को गिनने लगी] । पिता के पास बैठी पार्वती का सिर नीचा कर लेना एव कमल की पखुडियो को गिनने लगना उसकी लज्जा, आनन्द, प्रस्ताव की स्वीकृति एव कोमलता के द्योतक हैं । कमल की पखुडियो को गिनना प्रारम्भ करना यह सूचित करता है कि जैसे वह प्रस्ताव को सुन ही नही रही है अपितु किसी दूसरे कार्य—पत्रगणना—म लगी हुई है तथापि सिर झुका लेने से उसकी मानसिक स्थिति को बखूबी पढ़ा जा सकता है । बहाना भी समझ लिया गया । ऐसे प्रसङ्गों मे सम्बद्ध व्यक्ति का बहाना समझ लेना भी सहृदयों के लिये आनन्द का विषय बन जाता है । कालिदास ने यहाँ पार्वती से 'कमल-पत्रों' की गणना करवाई है । इससे उनका अङ्कुरित यौवन ध्वनित होता है क्योंकि लज्जा होने के कारण वह निरी अबोध बालिका भी नहीं है और 'लीला-कमलों' का सम्पर्क होने के कारण उसका बचपन भी स्वभाव म है यह अर्थ ध्वनित होता है । कमलो से लीला का सम्पादन करनेवाली बाला का हृदय कितना अधिक कोमल होगा ?

प्रस्ताव-काल मे पार्वती लीला-कमलों को या लीला कमल से खेलने नही लगती जिसके निमित्त वे होते हैं अपितु गिनने लगती है क्योंकि यदि वह लीला कमल खेलने लगती तो लज्जा का बोध न होता तथा प्रस्तूयमान विषय को वह पूर्णत समझ न सकती । पत्र-गणना के कार्य से यह ध्वनित होता है कि वह निर्विघ्न तथा सावधानी से प्रस्ताव को सुनती हुई भी उसका निश्चय कर रही है ।

'अभिज्ञानशाकुन्तल' की प्रस्तावना में ग्रीष्म ऋतु के दिनो का वर्णन करता हुआ सूत्रधार कहता है—

> 'सुभगसलिलागाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः ।
> प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीया. ॥'

'दिवसाः परिणामरमणीयाः' से यह अर्थ ध्वनित होता है कि यह नाटक भी सुखान्त है—इसका फल (अन्त) रमणीय है । 'दिवसा' के अन्य सभी विशेषणो का सम्बन्ध स्पर्शेन्द्रिय के विषय स्पर्श से है । ग्रीष्म ऋतु के दिनों मे जल मे स्नान करते अच्छा लगता है (जल स्पर्श); पाटल के सम्पर्क से

वन की वायु सुगन्धित है (सुगन्धित वायु का स्पर्श) तथा छाया में नींद अच्छी आती है (छाया-स्पर्श)। (यहाँ 'निद्रा' पद दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला के विस्मरण का भी बोधक है)। ग्रीष्म-ऋतु के ऐसे दिनों में किसी भी व्यक्ति का, असामान्य रूप देखकर, 'स्पर्श'–हेतु साकाङ्क्ष होना स्वाभाविक है, यह अर्थ ध्वनित होता है। दुष्यन्त के विषय में यही घटना घटी।

इसी नाटक के चतुर्थ अङ्क में देखिये—

'अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभि.।
परभृतविरुतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ॥'

वृक्षों ने कोयल के स्वर के द्वारा शकुन्तला को विदाई दे दी। शकुन्तला को वृक्षों के प्रति सोदर स्नेह था क्योंकि शकुन्तला की भाँति ये वृक्ष भी जनक-जननी द्वारा सम्वर्धित नहीं हैं। दोनों की समान परिस्थितियाँ एक दूसरे के प्रति समवेदना का कारण हैं। यदि शकुन्तला का भरण-पोषण उसके अपने माता-पिता ने नहीं किया अपितु दूसरे (कण्व) ने किया और इस प्रकार वह 'परभृता' हुई तो कोयल भी तो 'परभृत' है। फिर क्यों न वह समवेदना के स्वरों में कूज उठे ?

दिलीप वशिष्ठ की धेनु नन्दिनी—को वन में चराकर लौटे तो दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा ने बिना पलक मारे ही अपनी उपवास रही जैसी आँखों से दिलीप को पी लिया अर्थात् देखा—

'वसिष्ठधेनोरनुयायिनं तमावर्तमानं वनिता वनान्तात्।
पपौ निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिरुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम् ॥'
(रघुवंश—२।१९)

यहाँ 'उपोषित' शब्द द्वारा यह तो बोध होता ही है कि जैसे उपवास काल में अधिक प्यास रहती है उसी तरह अधिक देर तक दिलीप से वियुक्त रहने के कारण सुदक्षिणा को दिलीप दर्शन की अतीव उत्कण्ठा थी किन्तु यहाँ व्यङ्ग्य अर्थ यह है कि सुदक्षिणा के लिए दिलीप का वियोग उपवास के समान है—इष्ट है। उपवास-काल में जल नहीं पिया जाता तथापि जहाँ जल पान के अभाव में कष्ट रहता है वहीं धार्मिक कृत्य के सम्पादित हो रहे होने के कारण प्रसन्नता एवं उत्साह भी रहता है। दिलीप का वियोग सुदक्षिणा के लिए उत्कण्ठा का कारण अवश्य है किन्तु वह वियोग एक महान्

धार्मिक कृत्य—गुरुगोचारण—के सम्पादन का हेतु है, इससे महान् आनन्द एवं संतोष है। अत. वियोग की इष्टता प्रदर्शित करने के लिए 'उपोषित' पद का प्रयोग महाकवि ने किया है।

तपोलीना पार्वती के ऊपर गिरी हुयी वर्षा की पहली बूँदें जिस प्रकार उसके पलकों पर थोडा सा अटक कर होते-होते नाभि तक पहुँचती हैं उसका वर्णन देखिये—

'स्थिता क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधरा पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिता.।
वलीषु तस्याः स्खलिता प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दव ।'
(कुमार०–५।२४)

अभिप्राय यह है कि बूँदें पलकों पर क्षण भर के लिए रुककर अधरोष्ठ पर गिरती है। इस प्रकार अधर को आघातित करके वे बूँदें स्तनों पर गिर कर चूर चूर हो गई, तत्पश्चात् त्रिवली मे रेंगती हुई बडी देर मे जाकर कही नाभि म समाहित हो गई। प्रकृत श्लोक के 'क्षण' पद से पलकों की चिकनाहट व्यङ्ग्य है। इसी प्रकार 'ताडित' पद से अधरोष्ठ की कोमलता, 'चूर्णित' पद से कुचकाठिन्य, 'स्खलित' पद से *त्रिवली की सुष्ठुता* एवं 'नाभि' 'प्रपेदिरे' पदों से नाभि का गाम्भीर्य व्यङ्ग्य है।

(२) रस—वैसे तो कालिदास क ग्रन्थो म समस्त रसो का समावेश है किन्तु रसराज शृंगार-की प्रधानता महाकवि के काव्यों म हैं। (१) सभोग शृंगार-सभोग शृङ्गार का एक उदाहरण प्रस्तुत है। *शकुन्तला के अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर अत्यधिक मुग्ध हुआ दुष्यन्त कहता है—*

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै—
रनाविद्धं रत्नं मधुनवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्याना फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधि. ॥'
(अभिज्ञानशाकुन्तलम्-अङ्क २)

अर्थात् शकुन्तला का रूप क्या है—बिना सूँघा हुआ फूल, नाखूनो से जिसे खोटा नही गया है ऐसी नयी पत्ती, ऐसा रत्न जिसमे छेद नही किया गया है, नया शहद जिसका रस नहीं चखा गया है और है पुण्यों का अखण्ड फल जैसा वह रूप। पता नहीं ब्रह्मा किस व्यक्ति को ऐसे अनिन्द्य रूप का भोग करने के लिए प्रस्तुत करेगा। (२) विप्रलम्भ शृंगार—विरह विधुर

यक्ष की दयनीय दशा पर दृष्टिपात कीजिए। वह कहता है कि मैं विरह-पीडिता अतएव प्रणयकुपिता प्रियतमा का चित्र धातु (गेरु आदि) से प्रस्तरखण्ड पर चित्रित करके उसके पैरो पर गिरकर क्षमा-याचना करना ही चाहता था कि वैसे ही मैं इतना भाव विह्वल हो उठा कि आँखों में आँसुओं की बाढ़ आ गई और प्रियाचित्रण कर्म रुक गया। निष्ठुर देव को यह भी सह्य नहीं कि चित्र के माध्यम से ही मेरा प्रिया से समागम हो जाये—

> 'त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
> मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
> अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
> क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः॥
>
> (उत्तरमेघ-४५)

शृङ्गार के अतिरिक्त प्रायः अन्य सभी रसों का भी प्रसङ्गतः कालिदास के ग्रन्थों में सन्निवेश हुआ है।

(३) वैदर्भी रीति—विशिष्ट पद-रचना को 'रीति' कहा जाता है। वैदर्भी, पाञ्चाली तथा गौडी ये तीन रीतियाँ हैं। इनमें सर्वश्रेष्ठ वैदर्भी है क्योंकि इसमें तीनों गुण—माधुर्य, ओज एवं प्रसाद-पाये जाते हैं। कालिदास की भाषा में श्रुतिमाधुर्य, पदलालित्य एवं सारल्य के दर्शन होते हैं। दीर्घ-समास, क्लिष्टकल्पना, कृत्रिमता एवं पाण्डित्य प्रदर्शन का सर्वथा अभाव है।

(४) मनोविज्ञान—कालिदास मानव एवं पशु-पक्षियों के मनोभावों के ज्ञाता हैं। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के प्रथम अङ्क में भागते हुए हिरन का 'ग्रीवाभङ्गाभिरामं' इत्यादि श्लोक द्वारा वर्णन उसकी मनःस्थिति का कैसा समीचीन चित्रण है।

शकुन्तला-द्वारा परिपालित मातृविहीन हरिणशावक पतिगृह जाती हुई शकुन्तला के कपड़े से चिपट जाता है—'को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते' (चतुर्थ अङ्क)। मृग का छौना अपनी माता को खोज रहा है, बड़ी उत्कण्ठित दृष्टि से शकुन्तला की सखियों की ओर देख रहा है—'अनसूये! इतो दत्त दृष्टिरुत्सुको मृगपोतको मातरमन्विष्यति। एहि संयोजयाव एनम्।' (तृतीय अङ्क)।

कालिदास की प्रसिद्धि तो प्रमुखतः मानव-मनोभावों के चित्रण पर निर्भर है। विभिन्न दशाओं में मानव हृदय में कैसे विचार उठते हैं इनका जितना सफल चित्रण कालिदास की कृतियों में हुआ है उतना अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। शकुन्तला के सौंदर्य पर दुष्यन्त अतीव मुग्ध है। आकर्षण इस सीमा पर पहुँच जाता है कि उसे ऐसा लगता है मानो वह शकुन्तला के पीछे पीछे गया हो और पुनः लौट आया हो, यद्यपि मर्यादा का विचार करके वह अपने स्थान से किञ्चिन्मात्र भी नहीं हटा। मर्यादा ने भौतिक शरीर को जाने से तो रोक लिया किन्तु दुष्यन्त के मन को सशरीर जाने से न रोक सका—

'अनुयास्यन् मुनितनया सहसा विनयेन वारितप्रसरः।
स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः॥'
(अभिज्ञानशाकुन्तल—अङ्क १)

'अभिज्ञानशाकुन्तल' के चतुर्थ अङ्क में शकुन्तला की विदाई के अवसर पर कण्व, शकुन्तला और शकुन्तला की सखियों के हृदयगत भावों का, सप्तम अङ्क में भरत को देखकर तथा उससे शनैः-शनैः वार्तालाप करते समय दुष्यन्त की मानसिक स्थिति का चित्रण अतीव स्वाभाविक एवं प्रभावपूर्ण है।

(५) अलौकिक तत्त्व—संस्कृत के अन्य कवियों के काव्य की भाँति कालिदास के काव्य भी अलौकिक तत्त्व से युक्त हैं। कुबेर द्वारा यक्ष को शाप दिया जाना एवं तदनुसार यक्ष की महिमा का विलोप, दुर्वासा द्वारा शकुन्तला को शाप, दुष्यन्त की इन्द्र से मैत्री, इन्द्र के सारथी मातलि का धरती पर आना, अप्सराओं का सम्पर्क, कण्व की दिव्य शक्ति द्वारा वृक्षों से शृङ्गार सामग्री की प्राप्ति, पुरूरवा का अप्सरा उर्वशी से सम्पर्क (विक्रमोर्वशीय) इत्यादि ऐसी घटनायें हैं जो अलौकिक तत्त्व के अन्तर्गत आती हैं। कालिदास द्वारा इनके उल्लेख का आधार तत्कालिक विश्वास तथा कथानक को रोचक बनाना है।

(६) भारतीय संस्कृति का भव्य-चित्रण—कालिदास की रचनाओं में भारतीय संस्कृति का व्यापक चित्रण है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष सभी पुरुषार्थों के प्रति महाकवि का समान पक्षपात है। राजधर्म, तपस्विजन, वर्ण एवं आश्रम आदि के धर्मों का व्यापक चित्रण किया गया है। दुष्यन्त वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करते हुए अपने राजधर्म का पालन करते हैं—

'असावनभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो व प्रतिपालयति।' (अभिज्ञानशाकुन्तल—अङ्क ५)। अन्त मे मुक्ति के प्रतिलक्ष्य का उद्घोष—'ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः' इस (अभिज्ञानशाकुन्तल के) भरतवाक्य मे किया गया है। कौत्स एव वरतन्तु का कथानक, दिलीप की गुरुगोसेवा, ऋषियो एव मुनियो के प्रति श्रद्धा एव सम्मान के साथ व्यवहार, राजा द्वारा प्रजापालन, मर्यादित भोग, धर्म के लिये कष्ट सहन करना आदि विषयो से कालिदास के ग्रन्थ भरे हुरे हुए हैं।

(७) प्रेय एव श्रेय का सगम—देखिए इसी अध्याय मे 'कालिदास का व्यक्तित्व' शीर्षक के अन्तर्गत।

(८) विनोद एव रावकता—कालिदास के काव्य में विनोद का पुट भी समुचित मात्रा मे है। विदूषक के अतिरिक्त अन्य पात्रों मे भी विनोदप्रियता देखी जाती है। 'मालविकाग्निमित्र' मे बकुलवलिका, 'विक्रमोर्वशीय' मे चित्रलेखा तथा 'अभिज्ञानशाकुन्तल' की प्रियवदा अतीव विनोदप्रिय पात्र हैं। शकुन्तला अनसूया से कहती है कि 'सखी! प्रियवदा ने वल्कल को अधिक कसकर बाँध दिया है, जरा ढीला तो कर दे'। ऐसा सुनकर प्रियवदा विनोद करती है—'अत्र पयोधरविस्तारयितृ आत्मनो यौवनमुपालभस्व' (अर्थात्) 'स्तनो को विकसित करने वाली अपनी जवानी को उलाहना दे' (मुझे क्यो?) अन्यत्र प्रियवदा कहती है कि शकुन्तला 'वनज्योत्स्ना' नामक लता को इसलिये बडे गौर से देख रही है कि जैसे वनज्योत्स्ना को अनुरूप वर मिल गया वैसे मुझे (शकुन्तला को) भी मिल जाये—'यथा वनज्योत्स्नानुरूपेण पादपेन सङ्गता अपि नामैवमहमप्यात्मनोऽनुरूप वर लभेयेति' (अङ्क–१)।

(९) सूक्तियाँ—महाकवि के काव्यो में प्राप्त अत्युत्कृष्ट सूक्तियाँ संस्कृत साहित्य की अनुपम निधि हैं। प्रेमी तथा प्रेमिका एक दूसरे को चाहते हैं यह समझकर ही उन्हें आनन्द मिलता है, भले ही उनका समागम न हो पा रहा हो—'अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते।'❀। गुणी व्यक्ति से याचना करनी उचित है, चाहे सफलता भले ही न मिले किन्तु

❀ अभिज्ञानशाकुन्तल-अङ्क २,

सफलता की आशा होने पर भी अधम व्यक्ति से याचना करना उचित नहीं—'याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा'[1]। समझदार आदमी किसी विषय के गुण-दोष आदि का निर्णय उस विषय की परीक्षा द्वारा स्वयं करता है जब कि मूढ़ व्यक्ति की बुद्धि दूसरों के निर्णय का अनुसरण करती है—'सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः'[2]। विकार का अवसर प्रस्तुत होने पर भी जिन लोगों के चित्त में विकार न उत्पन्न हो वही 'धीर' कहे जाने योग्य होते हैं—'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः'[3]। गुरुओं की आज्ञा का पालन बिना विचार किये—बिना सन्देह—बिना परीक्षण किये—करना चाहिये—'आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया।'[4]

(१०) प्रगाढ़ पाण्डित्य—कालिदास की कृतियों का मनन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उनका ज्ञान बहुमुखी था। उन्हें वैदिकसाहित्य, स्मृति, धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास, आयुर्वेद, धनुर्वेद, सङ्गीतशास्त्र, चित्रकला, ज्योतिष युद्धविज्ञान, राजनीति, साहित्यशास्त्र, कामशास्त्र आदि का प्रौढ़ ज्ञान था।

(११) कथानक में स्वाभाविक प्रवाह—कालिदास की कृतियों का कथानक सरस एवं स्वाभाविक है। इसका कारण यह है कि एक के बाद दूसरी घटनायें या कथायें बलपूर्वक नहीं आ टपकती वरन् पूर्वकथा से ही दूसरी कथा स्वतः अङ्कुरित होती है। जैसे आतिशबाज़ी के एक स्फुलिङ्ग से दूसरे स्फुलिङ्ग अनायास उद्भूत होते हैं वैसे ही कालिदास के कथानक की घटनायें एवं उपकथायें हैं।

(१२) राष्ट्रियता—कालिदास राष्ट्रकवि हैं; क्योंकि एक राष्ट्रिय कवि में जो गुण होने चाहिए वे सभी कालिदास में एक साथ हैं। उनकी दृष्टि व्यापक एवं उदार है। उनके ग्रन्थों में उन तत्त्वों का समावेश है जिनके आधार पर राष्ट्र समुन्नत हो सकता है। भारत के प्रहरी हिमालय का वर्णन, 'रघुवंश' में सूर्यवंशीय राजाओं का चरित्र-चित्रण, 'कुमारसंभव' में शिव का संयम तथा कार्तिकेय द्वारा तारक से मोर्चा लेकर उसका वध, 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में

१. पूर्वमेघ-६;　　२. मालविकाग्निमित्र-१।२;
३. कुमारसम्भव-१।५९;　　४. रघुवंश-१४।४६;

दुष्यन्त की धर्म-भीरुता एव कर्तव्यपरायणता, कण्व-द्वारा शकुन्तला को उपदेश 'मेघदूत' में यक्ष के अधिक भावुक होने का परिणाम एव उसका सदाचार आदि ऐसे प्रभूत विषय हैं जो हमारे राष्ट्र को अविरत प्रेरणा देने मे एव उसे सबल बनाने मे सक्षम हैं। महाकवि के काव्यो से हमे आनन्द का आस्वाद होता है तथा राष्ट्र के कल्याण का उपदेश मिलता है अत. हमारे राष्ट्र को अपने कालिदास पर गर्व है।

(१३) छन्द और अलंकार—कालिदास ने प्राय सम्पूर्ण प्रमुख छन्दो एव अलङ्कारो का उपयोग किया है। यमक, अनुप्रास, रूपक, स्वभावोक्ति, विशेषोक्ति, अन्योक्ति, समासोक्ति, पर्यायोक्ति, दृष्टान्त, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास आदि सभी प्रमुख अलङ्कारो का चमत्कारी सन्निवेश महाकवि के ग्रन्थों मे हुआ है। उपमा का चमत्कार तो 'उपमा कालिदासस्य' शीर्षक के अन्तर्गत अग्रिम पृष्ठो मे देखिये।

(१४) प्रकृति वर्णन—कालिदास का प्रकृति-चित्रण अतीव मनोरम है। इसका विवेचन 'कालिदास का प्रकृति-वर्णन' शीर्षक के अन्तर्गत अगले पृष्ठो मे देखें।

(१५) कालिदास के दोष—आलोचकों की दृष्टि मे कालिदास की कृतियो मे पाये जानेवाले प्रमुख दोष ये हैं—

(१) अश्लीलता—'कुमारसमव' मे शिव-पार्वती के सभोग-शृगार का वर्णन तथा मेघदूत के 'ज्ञातास्वादो विवृतजघना को विहातु समर्थः'[1] (रतिरस को चखा हुआ कौन ऐसा पुरुष होगा जो खुली जाँघो वाली सुन्दरी को देखकर बिना सभोग किये ही छोड सकता है) आदि स्थलो मे अश्लीलता दोष खटकता है। (२) च्युतसस्कृति—व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध शब्द के प्रयोग को 'च्युतसस्कृति' दोष कहा जाता है। कालिदास ने कतिपय स्थलों पर ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है जो पाणिनीय व्याकरण से सम्मत नही हैं। यथा—'कामायमान' शुद्धरूप के स्थान पर 'कामयान' इस अशुद्ध रूप का प्रयोग—

राजयक्ष्मपरिहानिराययौ कामयानसमवस्थया तुलाम्।[2]

१—पूर्वमेघ—४५; २—रघुवंश—१९।५०;

(३) अनौचित्य—यद्यपि कालिदास के काव्य में 'औचित्य' का आश्चर्य जनक उत्कर्ष है तथापि एक-आध स्थल पर वे चूक गये हैं। देखिए—

'क्रोध प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति ।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥'[1]

यहाँ महादेव की नेत्राग्नि से काम को भस्म कर देने की बात कही गई है फिर भी महादेव के लिए उत्पत्तिबोधक 'भव' शब्द का प्रयोग किया गया है न कि संहारबोधक किसी शब्द का। (४) रसदोष—कालिदास की कृतियों में कतिपय स्थलों पर रस दोष दिखलाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त अन्य दोषों के भी दर्शन होते हैं तथापि महाकवि के काव्यों की समग्र गुणसम्पत्ति के समक्ष ये दोष वैसे ही नगण्य हो जाते हैं जैसे सूर्य की किरणराशि के समक्ष चन्द्रकिरणें।

कालिदास के विषय में बाण का यह आभाणक सर्वथा सत्य है—

'निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥' (हर्षचरित)

उपमा कालिदासस्य

कालिदास की उपमायें सर्वोत्तम हैं। किन्तु 'उपमा' से तात्पर्य केवल पारिभाषिक 'उपमा' अलङ्कार से न होकर सब प्रकार के साम्यबोधक अलङ्कारों से है। इसी के अन्तर्गत दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार आ जाते हैं अतएव किसी तत्त्वान्वेषी व्यक्ति ने कालिदास की उपमा को सर्वश्रेष्ठ न मानकर अर्थान्तरन्यास का सर्वश्रेष्ठ माना है—

'उपमा कालिदासस्य नोत्कृष्टेति मतं मम ।
अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते ॥'

तथापि प्रकृतस्थल में अन्य साम्यबोधक अलंकारों का विवेचन न करके छात्रहितार्थ केवल उपमा अलंकार के प्रयोग पर ही विचार किया जायेगा।

इन्दुमती के स्वयंवर में नृपगण आसन जमाये हुए हैं। बड़ी आशा लगाये हुए हैं कि कदाचित् अनिन्द्य सुन्दरी इन्दुमती उन्हें वरण करले, उनका भाग्य जग उठे। किन्तु इन्दुमती जिस जिस नृप का बिना वरण किये ही छोड़ कर निकल जाती है वह वह नृप उसी प्रकार म्लान हो जाता है जैसे रात्रि में

१–कुमारसंभव ३.७२;

घोर अन्धकार मे राजमार्ग पर स्थित भवन को दीप शिखा (दीपक की लौ) छोड कर आगे बढ जाती है (और वे भवन अन्धकार में लीन होकर काले पड जाते हैं।) दीप शिखा के हटते ही त्वरित भवनो के काले होने के समय राजाओं के पास से इन्दुमती के हट जाने पर राजाओ के म्लान होने की कल्पना महाकवि के अतिरिक्त और किसे सूझ सकती थी ?

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ य य व्यतीयाय पतिवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभाव स स भूमिपाल.॥'
(रघुवश-६।६७)

अङ्गनाओ का हृदय कुसुम के समान होता है। कितना अधिक औचित्य है यहां। कुसुम होता है सुरभिपरिपूर्ण एव कोमल और अङ्गना हृदय भी भावपरिपूर्ण एव कोमल होता है, विशेषतः वियोगावस्था मे—

'आशाबन्धः कुसुमसदृश प्रायशो ह्यङ्गनाना
सद्य. पाति प्रणयि हृदय विप्रयोगे रुणद्धि।'[1]

प्रिय पत्नी इन्दुमती को विधाता ने अज से सदा के लिये वियुक्त कर दिया। उनके लिये ससार सूना हो गया और जीना दूभर। वसिष्ठ ने बहुतेरा समझाया। पुत्र दशरथ अल्पवयस्क होने के कारण राज्यभार धारण करने मे समर्थ न था अत अज को राज्यकार्य देखना ही था। किन्तु प्रियाविरह से समुद्भूत दु ख ने अज के हृदय को वैसे ही विदीर्ण कर दिया जैसे विशाल महल के समीप उगा प्लक्ष वृक्ष अपनी जडो से उस महल को उखाड फेकता है। भवन को उखाड डालने का कार्य जडें धरती के भीतर ही भीतर किया करती हैं और इन्दुमती के वियोग का दु ख भी अज के हृदय को भीतर ही भीतर विदीर्ण कर रहा था।

शकुन्तला को छोडकर चलते हुए आकृष्ट दुष्यन्त की दशा कैसी हो रही है ? देखिये दुष्यन्त कहता है—

'गच्छति पुर शरीर धावति पश्चादसस्तुत चेत.।
चीनाशुकमिव केतो प्रतिवात नीयमानस्य॥'[2]

अर्थात् जब मैं चलता हूँ तब मेरा शरीर तो आगे चलता है लेकिन मेरा अपरिचित(जैसा) मन पीछे भागता है, ठीक वैसे ही जैसे वायु की विरुद्ध

१—पूर्वमेघ-९, २—अभिज्ञानशाकुन्तल अङ्क १;

दिशा मे ले जाये जाते हुए पताका में लगा हुआ चीन देश का बना रेशमी वस्त्र। यहाँ शरीर है पताका का दंड, पताका का वस्त्र है मन। यह मन इस प्रकार पीछे भागता है जैसे अपना हो ही न, पूर्ण अपरिचित हो।

सुरयुवती मनका से उत्पन्न और परित्यक्त वह शकुन्तला मुनि (कण्व) की सन्तान उसी तरह है जैसे अर्क (अकौड़ा मदार) के वृक्ष पर शिथिल होकर टपका हुआ चमेली का फूल। यहाँ उपमा का सौन्दर्य द्रष्टव्य है। *शकुन्तला देखने में कितनी अधिक सुन्दर है। वह कण्व की सन्तान कैसे हो सकती है? वह है सुरयुवती मेनका की सन्तति—चमेली के फूल जैसी।* वह फूल जो पूर्ण विकसित होकर अर्क वृक्ष पर चू पड़ा हो। वैसे ही अकस्मात् वह कण्व को पड़ी मिल गई। अर्कवृक्ष देखने में बदसूरत और नेत्रों का विनाशक होता है—

'सुरयुवतिसंभवं किलमुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्॥'[1]

कामपीडिता शकुन्तला दुबली, पीली तथा शिथिलगात्र होने पर भी *वैसी ही सुन्दर लगती है जैसे पत्तों को सुखा देनेवाली वायु के द्वारा स्पर्श की गई वासन्ती लता—*

'क्षाम्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते।
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी॥'[2]

कण्वशिष्यों के बीच शकुन्तला की शोभा वैसी ही है जैसी पके पीले-नीरस पत्तों के किसलय की—

'मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्'[3]

यहाँ पीत वल्कलधारी तपस्वी कण्वशिष्यों को पाण्डुपत्र (पीले पत्ते) कहा गया है क्योंकि कण्व के शिष्य भी विलास से सर्वथा दूर अत नीरस हैं और शकुन्तला है किसलय के समान कोमल, नवीन, स्वभावतः सुन्दरी मन खिलाह्लादिका। पीले पत्तों के बीच किसलय का अंकुरित होना स्वाभाविक ही है।

दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त शकुन्तला को न पहचान सका। अनायास उपस्थित अतिसुन्दरी शकुन्तला को देखकर वह दुविधा में पड़

१–अभिज्ञानशाकुन्तल अङ्क २. २–अभिज्ञान०-अङ्क ३,
३–अभिज्ञान० अङ्क ५;

गया—शकुन्तला मेरी पत्नी है या नहीं। ऐसी दुविधा की स्थिति में मैं न तो उसका उपभोग ही कर पा रहा हूँ (क्योंकि हो सकता है कि वह दूसरे की पत्नी हो) और न परित्याग ही (क्योंकि वह अति सुन्दरी है तथा हो सकता है कि वह अपनी ही पत्नी हो) उस भ्रमर के समान जो प्रात.काल ओस मे सराबोर कुन्द के फूल का न तो उपभोग ही कर सकता है (क्योंकि ओस में सन जाने का भय है) और न उसे छोड ही सकता है (क्योंकि कुन्द के पुष्प के प्रति उसका सहज आकर्षण जो है)—

'इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेत्यव्यवस्यन्।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषार
न खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम् ॥'[1]

शास्त्रीय सिद्धान्त है कि स्मृति सदा श्रुति के अर्थ का अनुगमन करती है। इस सिद्धान्त का उपयोग कालिदास ने एक उपमा मे किया है। राजा दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा 'नन्दिनी' नामक गाय के मार्ग पर वैसे ही पीछे-पीछे चली जैसे स्मृति श्रुति के अर्थ के पीछे चलती है (अनुगमन करती है)—

'मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ॥'[2]

एक दार्शनिक उपमा के भी दर्शन कीजिए। यथार्थवक्ता कहते हैं कि ब्रह्मसरोवर से सरयू नदी वैसे ही आविर्भूत हुई जैसे मूलप्रकृति से बुद्धि तत्त्व—

'ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति'[3]

शकुन्तला का विवाह दुष्यन्त के साथ हो गया अतः कण्व निश्चिन्त हो गये क्योंकि अब शकुन्तला के साथ सद्व्यवहार होगा, उसे किसी प्रकार के अनुचित कष्ट की संभावना दुष्यन्त की ओर से नहीं रही। कण्व कहते हैं कि अच्छे शिष्य को दी गई विद्या के समान तुम्हारे विषय मे कोई चिन्ता नहीं करनी है—

'वत्से! सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीया सवृत्ता,'[4]

मालोपमा का चमत्कार रघुवंश (सर्ग १३, श्लोक ५४-५७) मे देखिये[5]।

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल—अङ्क ५; २ रघुवंश—२।२;
३. रघुवंश—१३।६०; ४. अभिज्ञानशाकुन्तल—अङ्क ४,
५. देखिये 'कालिदास का प्रकृति-वर्णन' शीर्षक के अन्तर्गत अगले पृष्ठों में (क्वचित्प्रभा''''''से लेकर' '''भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः' तक)

कालिदास का प्रकृति-वर्णन

कालिदास का प्रकृतिवर्णन अनूठा है। इनके काव्य मे गिरि, सागर, नदी निर्झर, सरोवर, वन, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, दिवस, वनस्पति, लता एव पशु पक्षियो आदि प्राकृतिक विषयो का हृदयाकर्षक चित्रण किया गया है। 'कुमारसभव' के प्रारम्भ के अनेक श्लोको मे हिमालय का विशद एव विस्तृत चित्रण किया गया है। कवि की दृष्टि मे हिमालय मात्र पत्थरो का ढेर नही है, वह है देवता (देवतात्मा)—

'अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा हिमाल्यो नाम नगाधिराज।'[1]

हाथी अपने कपोलो की खुजली को दूर करने के लिये हिमालय के देवदारु वृक्षो पर कपाल रगडते हैं जिससे देवदारु का दूध निकलता है और उसकी सुगन्ध से शिखर महक उठते हैं—

'कपोलकण्डू करिभिर्विनेतु विघट्टिताना सरलद्रुमाणाम्।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूत सानूनि गन्ध सुरभीकरोति॥'[2]

रघुवश का १३ वाँ सर्ग सागर के वर्णन से प्रारम्भ होता है जो कई श्लोको मे जाकर समाप्त होता है। सागर का अधरपान भी विचित्र है। उसकी पत्नियाँ नदियाँ जब अपने मुख को अधरपानहेतु सागर को अर्पण करती हैं तो समुद्र उनके अधरो का पान तो करता ही है अपने तरङ्गरूपी अधरो को नदियों के मुख में दे देता है। इस प्रकार समुद्र पत्नी के अधर का पान तो करता ही है अपने अधर को भी पिलाता है। यह है कालिदास द्वारा प्रकृति मे मानवीय भाव की कल्पना—

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भा स्वय तरङ्गाधरदानदक्ष।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्ति पिबत्यसौ पाययते च सिन्धु॥'[3]

कालिदास की लेखनी से प्रसूत गङ्गा यमुना के सङ्गम का वर्णन संस्कृत-साहित्य की अमूल्य निधि है। देखिये—

---

१ कुमारसभव—१।१, २ कुमारसभव—१।९,
३ रघुवंश १३।९,

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।
अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥
क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पङ्क्तिः ।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥
क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव ।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विव लक्ष्यनभःप्रदेशा ॥
'क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः ॥'[1]

(राम कहते हैं कि हे सुन्दर अङ्गोवाली सीते ! देखो तो यमुना की श्यामल तरङ्गों से मिश्रित श्वेतजलवाली गंगा कही तो ऐसी लगती है जैसे इन्द्रनील मणियों से गुंथी मोती की माला, कही श्यामलवर्ण हंसों से युक्त श्वेत हंसो की पंक्ति, तो कही काले अगर से रचित पत्र से युक्त चन्दन द्वारा बनाई गई पृथ्वी की रेखा के समान, कही छाया मे स्थित अन्धकार से चितकबरी चाँदनी के सदृश, दूसरी जगह शरत्कालीन मेघरेखा के समान जिसके छेदों से आकाश झांक रहा हो और कही पर ऐसा लगता है जैसे काले सर्पो से युक्त चन्दन-चर्चित शिव का शरीर हो) ।

वसन्त ऋतु ने तो स्त्रियो के शृङ्गार को मात कर दिया । 'मालविकाग्निमित्र' मे राजा अग्निमित्र कहता है—

'रक्ताशोकरुचा विशेषितगुणो बिम्बाधरालक्तक.
प्रत्याख्यातविशेषकं कुरबकं श्यामावदातारुणम् ।
आक्रान्ता तिलकक्रिया च तिलकैर्लग्नद्विरेफाञ्जनैः
सावज्ञेव मुखप्रसाधनविधौ श्रीर्माधवी योषिताम् ॥'[2]

(लाल अशोक की लालिमा ने स्त्रियो के बिम्बाधरो की लालिमा का अतिक्रमण कर दिया । काले, श्वेत एवं लाल कुरबक पुष्प ने स्त्रियो के मुख की चित्रकारी का तिरस्कार किया । काले भौरो से लिपटे तिलक पुष्प ने स्त्रियो के मस्तक की बिन्दी का अतिक्रमण कर दिया । लगता है वसन्त की शोभा आज स्त्रियो के प्रसाधन का अनादर करने पर उतारू है ।)

---

१. रघुवंश १३।५४-५७, २. मालविकाग्निमित्र—३।५,

कालिदास की दृष्टि मे प्रकृति सजीव है। मेघदूत का यक्ष मेघ को राय देता है कि वह अपने मित्र रामगिरि से विदाई लेले जो समय समय पर उससे मिलकर चिरविरह के कारण आँसू रो दिया करता है—

'आपृच्छस्व प्रियसखममु तुङ्गमालिङ्ग्य शैल'
वन्द्यै पुसा रघुपतिपदैरङ्कित मेखलासु।
काल काल भवति भवतो यस्य सयोगमेत्य,
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहज मुञ्चता वाष्पमुष्णम् ॥'[1]

कालिदास की प्रकृति म कृतज्ञता का भाव है। मूसलाधार वर्षा के द्वारा वन के उत्पात को शान्त करके, मार्ग चलने से थके हारे मेघ को आम्रकूट पर्वत बड़े सम्मान के साथ सिर पर धारण कर लेगा। अधम व्यक्ति भी मित्र को आश्रय देता है इतने ऊँचे आम्रकूट पर्वत की तो बात ही क्या—

'त्वामासारप्रशमितवनोपप्लव साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगत सानुमानाम्रकूट।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया सश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुख किं पुनर्यस्तथोच्चै '[2]

आम्रकूट पर्वत पके हुए जगली आमो से ढक जाने के कारण पीला हो गया है। उसी चोटी पर काला मेघ जब चिपक जायेगा तो ऊपर से देव दम्पतियो को ऐसा सुन्दर लगेगा जैसे वह पृथ्वीरूपी नायिका का स्तन हो जो बीच म काला हो और शेष भाग पीला। कैसी अनूठी कल्पना है—

'छन्नोपान्त परिणतफलद्योतिभि काननाम्रै—
स्त्वय्यारूढे शिखरमचल स्निग्धवेणीसवर्णे।
नून यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्था
मध्ये श्याम स्तन इव भुव शेषविस्तारपाण्डु ॥'[3]

कालिदास की प्रकृति म समवेदना है। शकुन्तला के पतिगृह जाते समय वियोग के कारण हरिणियाँ कौर उगल देती हैं मोर नाचना रोक देते हैं, लतायें पीले पत्तों के गिराने के बहाने आँसू टपका कर रोने लगती हैं—

'उद्गलितदर्भकवला मृग्य परित्यक्तनर्तना मयूरा।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लता ॥'[4]

---

१ पूर्वमेघ १२, २ पूर्वमेघ १७,
३ पूर्वमेघ १८, ४ अभिज्ञानशाकुन्तल अङ्क ४,

यही क्यों, शकुन्तला के द्वारा पालित मृग छौना शकुन्तला के वस्त्र को पकड लेता है।

और भी, वृक्ष शकुन्तला के लिये रेशमी वस्त्र, लाक्षारस एव आभूषण उपहार मे देते हैं[3] और कोयल के शब्दो द्वारा शकुन्तला के लिये विदाई की अनुमति देते हैं।[4]

अश्वघोष

बौद्ध महाकवि अश्वघोष के महाकाव्य (१) सौन्दरनन्द एव (२) बुद्धचरित अतीव उत्कृष्ट हैं। महाकवि के नाम से ३ और कृतियाँ प्राप्त होती हैं (१) शारिपुत्र प्रकरण (नाटक) (२) गण्डीस्तोत्र (२९ स्रग्धरा छन्दो का ग्रन्थ) एव (३) वज्रसूची (इसमे वर्णव्यवस्था का खण्डन किया गया है।) कतिपय विद्वान् 'गण्डीस्तोत्र' एव 'वज्रसूची' को अश्वघोष की रचना नही मानते। अधिकाश विद्वान् मानते हैं कि अश्वघोष राजा कनिष्क (७८ ई०) के राजसभा के रत्न थे। विद्वानों मे इस विषय मे मतभेद है कि अश्वघोष कालिदास से पूर्ववर्ती थे अथवा परवर्ती। कालिदास की अपेक्षा अश्वघोष मे अपाणिनीय प्रयोगों का बाहुल्य है।

ऐसा प्रतीत होता है कि अश्वघोष ब्राह्मण थे जो बाद मे बौद्ध हो गये। उन्होने अपने ग्रन्थो की रचना बौद्धधर्म के प्रचार हेतु ही किया। अश्वघोष को दार्शनिक का मस्तिष्क और कवि का हृदय मिला था। सगीत शास्त्र के वे मर्मज्ञ थे और नाटक के सफल रचयिता। वेद, उपनिषद्, इतिहास, पुराण, राजनीति, धर्मशास्त्र, कामशास्त्र, आयुर्वेद आदि नैकविध शास्त्रो पर उनका असाधारण अधिकार था। संस्कृत-साहित्य के बौद्ध कवियो मे अश्वघोष नि सदेह सर्वश्रेष्ठ कवि हैं वे वैदर्भी शैली के कवि हैं।

(१) सौन्दरनन्द—अश्वघोष के इस महाकाव्य मे १८ सर्ग हैं। इसमे गौतम बुद्ध के सौतेले भाई सुन्दरनन्द सक्षेप मे नन्द गौतम बुद्ध के उपदेशो से प्रभावित होकर गृहत्याग करते हैं। नन्द की पत्नी 'सुन्दरी' है। नन्द एव सुन्दरी दोनो सौन्दर्य की प्रतिमा हैं दोनो परस्पर पूर्णभावेन अनुरक्त एव भोग विलास में अहर्निशि निमग्न हैं। तथागत ने यौवन के रसास्वादन म

३-अभिज्ञानशाकुन्तल—अक ४, ४. अभिज्ञानशाकुन्तल—अक ४,

आकण्ठ निमग्न नन्द को देखा। तथा उन्हे विरक्त होने का उपदेश देते हैं। नन्द सांसारिक भोगों का विशेषतः *पतिव्रता सुन्दरी का परित्याग कर सकने* मे अपने को असमर्थ पाते हैं। तथागत के उपदेशो से प्रभावित होने पर भी उन्हें सांसारिक भोग अपनी ओर आकृष्ट करते हैं किन्तु अन्त मे प्रव्रज्या ग्रहण की जाती है। नन्द के अन्तर्द्वन्द्व तथा सुन्दरी की मूकवेदना का अङ्कन द्रष्टव्य है। बौद्धधर्म के उपदेशो को सरल, सरस एव आकर्षक भाषा मे व्यक्त करने मे कवि सिद्धहस्त है। इसीलिए कतिपय विद्वान् 'सौन्दरनन्द' को 'बुद्ध-चरित' से भी अधिक गौरवशाली ग्रन्थ मानते हैं।

सौन्दरनन्द मे मानव-हृदय की विभिन्न दशाओं का सफल चित्रण हुआ है। एक ओर तो नन्द बुद्ध के प्रभावशाली उपदेशो की ओर आकृष्ट हो रहा है दूसरी ओर प्रियतमा के प्रति उसका सहज अनुराग उसे बरबस आकृष्ट कर रहा है। इस अनिश्चय की स्थिति मे वह न तो जा ही सकता है और न ठहर ही सकता है—ठीक उसी तरह जैसे नदी की धारा के विपरीत तैरता हुआ राजहंस न तो आगे ही बढ़ पाता है और न रुक ही पाता है। उपमा की शोभा से युक्त उदाहरण देखिये—

'त गौरव बुद्धगत चकर्ष भार्यानुराग. पुनराचकर्ष।
सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ तरस्तरङ्गेष्विव राजहस ॥'
(सौन्दर० ४४२)

विप्रलम्भ शृङ्गार एव करुणरस का अनूठा समावेश सौन्दरनन्द म मिलता है। पति क प्रव्रज्या ले लेने के उदन्त का श्रवण करके सुन्दरी काँप उठी और सहसा भूमि पर गिर पडी। वह बाहें फैलाकर बडी जोर से रोयी जैसे किसी हथिनी के हृदय म विष-बुझा तीर लग गया हो—

'श्रुत्वा ततो भर्तरि तां प्रवृत्ति सवेपथुः सा सहसोत्पपात।
प्रगृह्य बाहू विरराव चोच्चैर्हृदीव दिग्धाभिहता करेणु ॥'
(सौन्दर०-६।२४)

भाषा का सौन्दर्य, लिट का प्रयोग, क्रियापदो का बाहुल्य, विरहभावों की तीव्रता अश्वघोष के एक ही पद मे देखिए। नन्द के प्रव्रजित हो जाने पर सुन्दरी की दशा पर कौन नहीं तरस खायेगा। बेचारी सुन्दरी—

'रुरोद मम्लौ विरुराव जग्लौ, बभ्राम तस्थौ विललाप दध्यौ।
चकार रोषं विचकार माल्यं, चकर्त वक्त्रं विचकर्ष वस्त्रम् ॥'
(सौन्दर०—६।३४)

सौन्दरनन्द के १३—१८ सर्गों में बौद्धदर्शन के सिद्धान्त ललित भाषा के माध्यम से समझाये गये हैं। बहुत से पद्यों में 'श्रीमद्भगवद्गीता' की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। 'सौन्दरनन्द' में अनेक दृष्टान्त आयुर्वेद पर आधृत हैं जिससे उनके प्रौढ़ आयुर्वेद-शास्त्र के ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है। सौन्दरनन्द शिक्षा, सदाचार, आत्मकल्याण तथा परोपकार के तत्त्वों का आगार है। सूक्तियाँ कम मार्मिक नहीं हैं। यथा—'श्रद्धाधनं श्रेष्ठधनं धनेभ्यः' (५।२४), 'हितस्य वक्ता प्रवरो सुहृद्भ्यः'(५।२५) 'जरासमो नास्ति शरीरिणा रिपुः' (९।३३), 'स्वयप्रभा पुण्यकृतो रमन्ते' (१०।३२), 'दुःखाय सर्वं न सुखाय जन्म (१६।९) इत्यादि।

(४) **बुद्धचरित**—अश्वघोष का द्वितीय महाकाव्य 'बुद्धचरित' है। इसमें २८ सर्ग थे किन्तु केवल १७ सर्ग ही प्राप्त होते हैं जिसमे १४ वें सर्ग के ३१ वें श्लोक तक का भाग अश्वघोषकृत माना जाता है। इस ग्रन्थ के १-१४ सर्गों में बुद्ध के जन्म से लेकर बुद्धत्वप्राप्ति तक का वर्णन है। इसके बाद के सर्गों में बौद्धधर्म की प्रशंसा, बुद्ध का अपने शिष्यों एवं पिता से समागम आदि का वर्णन है। संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

राजा शुद्धोदन की रानी 'माया' लुम्बिनी नामक वन में विहार करने गई थी। वहीं पुत्र का जन्म हुआ। ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि यह बालक युवावस्था में विरक्त हो जायेगा। इस बालक का नाम सर्वार्थसिद्ध रख दिया गया। सर्वार्थसिद्ध का विवाह अतीव रूपवती युवती यशोधरा से किया गया जिससे 'राहुल' नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। यद्यपि राजाज्ञा से ऐसे सतत प्रयत्न होते रहे कि राजकुमार को भोगविलास के वातावरण में रखा जाये किन्तु अपनी प्रथम तीन विहारयात्राओं में राजकुमार ने क्रमशः वृद्ध पुरुष, रोगी एवं शव को देखा। सारथी से यह ज्ञान होने पर कि 'सभी वृद्ध हो जाते हैं', 'सभी रोगाक्रान्त हैं' 'सभी मरणधर्मा हैं' राजकुमार अपने विषय में भी यही सोचकर अर्थात् निर्णय करके विरक्त होने लगे। चतुर्थ विहारयात्रा में संन्यासी को देखकर उसके समान स्वयं जन्म-मरण के चक्र

से भयभीत होकर पूर्ण विरक्त हो गये तथा पिता के द्वारा संन्यास की अनुमति न मिलने पर एक रात को छन्दक नामक सारथी को लेकर कन्थक नामक घोड़े पर चढ़कर गृहत्याग कर दिया। सारथी और घोड़े को वापस कर दिया। अनेक तपस्वियों के सहवास, उपदेश एवं प्रक्रिया से सिद्धार्थ सन्तुष्ट न हुए। अनेक प्रलोभनों को ठुकराया। तपश्चर्या में प्रवृत्त हुए किन्तु सफलता न मिली। उन्होंने निश्चय किया कि शरीर, इन्द्रिय को कष्ट देने से मोक्ष नहीं मिलता। अन्त में ध्यान द्वारा उन्हें सफलता प्राप्त हुई; उन्होंने मार पर विजय प्राप्त कर ली; वे सर्वज्ञ हो गये; उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हो गया।

'बुद्धचरित' के अनेक स्थल बड़े ही मार्मिक हैं, यथा—अन्तःपुरविहार, वृद्ध, रुग्ण एवं शव के दर्शन से समुपजात वैराग्य; श्रमणोपदेश, गृहत्याग, तपस्वियों से वार्ता, अन्तःपुर विलास, मार-पराजय आदि। शृङ्गार, करुण एवं शान्तरस का उपयुक्त समावेश बुद्धचरित में किया गया है। राजकुमार-सिद्धार्थ विहार के लिए बाहर निकलते हैं। आबालवृद्धवनिता उनके दर्शन के लिए वेगपूर्वक चल पड़ते हैं। एक लजीली युवती राजकुमार के दर्शन करने और उनकी रूपराशि का नेत्रों द्वारा पान करने के लिए कितनी अधिर उतावली है। वह शीघ्र दौड़कर राजकुमार के पास पहुँच सकती है किन्तु लज्जा उसके चरणों के वेग को कम कर देती है और जिन आभूषणों को उसने एकान्त में पहने थे शर्म के मारे उन्हें छिपा रही है। उत्सुकता, लज्जा, संकोच आदि प्रमदोचित भावनाओं का कैसा सरल एवं आकर्षक वर्णन है—

'शीघ्रं समर्थापि तु गन्तुमन्या गतिं निजग्राह ययौ न तूर्णम्।
ह्रिया प्रगल्भा विनिगूहमाना रहःप्रयुक्तानि विभूषणानि'॥

(बुद्धचरित–३।१७)

राजकुमार ने अभी तक वृद्ध व्यक्ति को देखा ही न था। सारथी से इस प्रकार पूछने पर कि 'अरे, सफेद केशों वाला डण्डे पर झुका दुर्बलगात्र, भौंहों से ढकी आँखों वाला यह कौन है? ऐसी स्थिति किस कारणवश हुई है या स्वतः?' सारथी जरा (वृद्धावस्था) का परिचय जिस भाषा-शैली में देता है उसकी रमणीय शब्द योजना एवं उत्तरोत्तर उत्कर्षशील भाव-सौष्ठव दर्शनीय है—

'रूपस्य हन्त्री व्यसनं बलस्य शोकस्य योनिर्निधनं रतीनाम् ।
नाश. स्मृतीनां रिपुरिन्द्रियाणामेषा जरा नाम ययैष भग्न:' ॥
(बुद्धचरित-३।३०)

(रूप का विनाश करनेवाली, बल के लिए विपत्तिरूप, शोक की जन्मदात्री, सौख्यो की कालरूपिणी, स्मृति की नाश करनेवाली तथा इन्द्रियों की शत्रु यह जरा है जिसके द्वारा यह पुरुष तोड-मरोड डाला गया है ।)

राजकुमार सिद्धार्थ ने सारथी छन्दक से घोड़े को लेकर घर लौट जाने का आग्रह किया । वन से लौटते हुए छन्दक के चित्त का वैरूप्य देखिये—

'विलोक्य भूयश्च रुरोद सस्वरं हयं भुजाभ्यामुपगुह्य कन्थकम् ।
ततो निराशो विलपन्मुहुर्मुहुर्ययौ शरीरेण पुरं न चेतसा' ॥
(बुद्धचरित-६।६७)

[बारम्बार (पीछे) देखकर दोनो बाहो से 'कन्थक' (नामक) घोड़े से लिपट कर (वह छन्दक) उच्चस्वर से रोने लगता था । बारम्बार विलाप करता हुआ निराश होकर गया (लौटा) किन्तु चित्त से नही (चित्त वहीं लगा रहा)]

सिद्धार्थ कहते हैं कि जब सुख एवं दुःख से राजा और दास दोनो प्रभावित होते हैं तो दोनो मे अन्तर ही क्या ? न तो राजा ही नित्य हँसता रहता है और न दास ही सदा रोता है । मेरी दृष्टि मे तो इसीलिए राजा और दास दोनो एक जैसे हैं—

दृष्ट्वा विमिश्रां सुखदुःखतां मे राज्यं च दास्यं च मतं समानम् ।
नित्यं हसत्येव हि नैव राजा न चापि सन्तप्यत एव दासः ॥'
(बुद्धचरित-११।४४)

बुद्धचरित अलङ्कारयोजना, सूक्तियो, चरित-चित्रण एवं वर्णन वैविध्य की दृष्टि से भी एक उत्कृष्ट महाकाव्य है ।

भारवि

महाकवि भारवि की एकमात्र रचना 'किरातार्जुनीय' नामक महाकाव्य है । भारवि की कृति कालिदास की कृतियो से प्रभावित है अतः वे कालिदास से परवर्ती हैं । बाण ने 'हर्षचरित' मे भारवि का उल्लेख नही किया है ।

इससे यह प्रतीत होता है कि बाण के समय भारवि की कृति काव्यजगत में ख्याति नहीं प्राप्त कर सकी थी। माघ की कृति शिशुपालवध' 'किराता-र्जुनीय' से स्पष्ट प्रभावित है। अतः भारवि अवश्य माघ (७०० ईसवी) से पूर्ववर्ती हैं। ६३४ ईसवी के एक शिलालेख में भारवि का उल्लेख है। इस शिलालेख में चालुक्यवंशीय राजा पुलकेशी द्वितीय की प्रशंसा है—

'येनायोजि नवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्ति कविताश्रितकालिदासभारविकीर्ति ॥'

उक्तप्रकारेण भारवि का उल्लेख प्राप्त होने से ऐसा प्रतीत होता है कि ६३४ ईसवी तक भारवि का यश दक्षिणभारत में फैल चुका था किन्तु बाण द्वारा भारवि का उल्लेख न प्राप्त होने से यह निश्चित होता है कि ६५० ईसवी तक भारवि की प्रसिद्धि उत्तरभारत में नहीं हो पाई थी। भारवि दक्षिण-भारत के निवासी थे अतः सर्वप्रथम दक्षिणभारत में उनके काव्ययश का प्रसार होना स्वाभाविक ही था। भारवि को विष्णुवर्धन (६१५ ई० के लगभग) का सभापण्डित तथा दक्षिणभारत का निवासी माना जाता है। इस मान्यता का आधार 'अवन्तिसुन्दरीकथा' का विवेचन है। निष्कर्ष यह है कि भारवि दक्षिणभारत के निवासी थे और इनका स्थितिकाल ६०० ईसवी के आसपास रहा होगा।

(५) किरातार्जुनीयम्—'किरातार्जुनीय' का कथानक महाभारत से लिया गया है। महाभारत का छोटा-सा कथानक भारवि की प्रतिभा एवं वर्णनविस्तार के कारण १८ सर्गों के महाकाव्य का रूप ग्रहण कर लेता है। 'किरातार्जुनीयम्' का कथानक इस प्रकार है—

प्राप्त करना आवश्यक है। व्यास अन्तर्धान हो जाते हैं। एक यक्ष प्रकट होकर अर्जुन को मार्ग बतलाता है। सर्ग ४—मार्गदर्शक यक्ष और अर्जुन हिमालय की ओर चलते हैं। मार्ग मे शरद् की सुषमा का वर्णन किया जाता है। अर्जुन यक्ष के साथ तपोभूमि हिमालय पर पहुँचते हैं।

सर्ग ५—यक्ष हिमालय के 'इन्द्रकील' नामक पर्वत पर अर्जुन को तपस्या करने की मन्त्रणा देकर चला जाता है। ६—अर्जुन की तपस्या से भयभीत इन्द्र तपस्या मे विघ्न डालने के लिये स्वर्ग से अप्सरायें भेजता है। सर्ग ७—तपस्या में विघ्न डालने के निमित्त अप्सरायें और गन्धर्व इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचते हैं। सर्ग (८–९)—गन्धर्वो एव अप्सराओ की विविध क्रीडाओ का वर्णन। सर्ग १०—अप्सराओ द्वारा अर्जुन की तपस्या भङ्ग करने का प्रयास विफल हो जाता है। सर्ग ११—इन्द्र अर्जुन के पास जाते हैं। अपने प्रति अर्जुन की दृढ भक्ति देखकर इन्द्र अपना रूप प्रकट करते हैं और शङ्कर को प्रसन्न करने के लिए तप करने की आज्ञा देकर चले जाते हैं। सर्ग १२—'मूक' नामक राक्षस वराह का रूप धारण करके अर्जुन को मारने चल देता है। शङ्कर गणो सहित अर्जुन की रक्षाहेतु चल देते हैं। सर्ग १३—अर्जुन एव किरातवेशधारी शिव एक साथ वराह पर बाण चलाते हैं। शिव का बाण वराह को वेधकर भूमि मे घुस जाता है। अब अर्जुन के बाण को लेकर विवाद होने लगता है। अर्जुन कहते थे कि यह बाण मेरा है और शिव का गण कहता था कि शिव का।

सर्ग १४—शिवसेना तथा अर्जुन मे घोर युद्ध होता है। शिवसेना भागने लगती है। सर्ग १५—अर्जुन एव किरातवेशधारी शिव का भयङ्कर बाण-युद्ध होता है। सर्ग १६—अर्जुन एव किरात (शिव) मल्लयुद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। सर्ग १७—कोई अन्य उपाय न देखकर अर्जुन चट्टानो एव वृक्षों से शिव पर प्रहार करने लगते हैं जिसे शिव निष्फल कर देते हैं। सर्ग १८—मल्लयुद्ध मे प्रवृत्त अर्जुन जब शिव के चरण पकड कर उन्हें गिराने के लिए उद्यत हुए तभी शिव ने अपने यथार्थ रूप को प्रकट कर दिया। अर्जुन शिव की स्तुति करने लगे। शिव ने उन्हे शत्रु पर विजय एव पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। इन्द्र आदि देवताओं से दिव्य अस्त्र प्राप्त करके अर्जुन पुन. द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास आ गये।

भारवि का काव्य

(१) महाकाव्यत्व—'किरातार्जुनीय' काव्य मे प्राप्त वे सभी विशेषताएँ हैं जो एक महाकाव्य मे होनी चाहिये । क्षत्रीयवंशोद्भव अर्जुन नायक है और अङ्गीरस 'वीर' है । इसमे संन्ध्या, चन्द्रोदय, प्रातःकाल, सूर्यास्त, रात्रि, यात्रा, सम्भोग, संग्राम, शरद् आदि ऋतुयें, आखेट, मुनि (व्यास) इत्यादि विषय वर्णित हैं ।

(२) वीररस—'किरातार्जुनीय' मे जैसा ओजस्वी एवं उग्र वर्णन प्राप्त होता है वैसा किसी भी इतर महाकाव्य मे नही प्राप्त होता है । अङ्गी रस 'वीर' है । शृङ्गार आदि अङ्ग रस है—'शृंगारादिरसोऽङ्गमत्र विजयी वीरः प्रधानो रसः' (मल्लिनाथ) । द्रौपदी एव भीम की उक्तियो से वीर-रस छलकता है । *भीम युद्ध चाहते हैं जिसमें शत्रुओ का वध किया जावे* और उनकी विधवा पत्नियो की आँखों से बहती हुई अश्रुधारा से युधिष्ठिर के हृदय मे निरन्तर प्रज्वलित शत्रुकृत तिरस्कार की अग्नि बुझाई जावे । भीम युधिष्ठिर से कहते है—

'ज्वलतस्तव जातवेदस. सततं वैरिकृतस्य चेतसि ।
विदधातु शमं शिवेतरा रिपुनारीनयनाम्बुसन्ततिः ॥' (२।२४)

१३-१८ सर्गों में युद्धो के वर्णनों मे महाकवि ने वीररस के समावेश की अपनी इच्छा पूरी ही करके छोडी है । वराह को मारने के लिये अर्जुन ने जब गाण्डीव धनुष पर बाण चढाकर प्रत्यञ्चा खीची तो उसके शब्द से गुफायें गूंज उठीं, पर्वत झुक गया और पर्वत के समस्त जीव अपने प्राणो के बचने पर सन्देह करने लगे—

'प्रविकर्पनिनादभिन्नरन्ध्रः पदविष्टम्भनिपीडितस्तदानीम् ।
अधिरोहति गाण्डिव महेषौ सकलः सशयमारुरोह शैलः ॥'(१३।१६)

(३) शृङ्गार—वीर के पश्चात् शृङ्गाररस का स्थान है । कालिदास के समान भारवि का शृंगार सर्वत्र शिष्ट एव संयत नहीं है अपितु इन्द्रियपरक एवं वासनावासित है । ८ वें, ९ वें एवं १० वें इन तीन सर्गों में महाकवि

ने जी भरकर अप्सराओं के शृङ्गार का वर्णन किया है। कहीं प्रियतम प्रियतमा की नीवी खोल देता है और वस्त्र सिसकने लगता है। बस वह नग्न हो ही रही थी कि करधनी में वस्त्र अटक गया[1]। कहीं सुन्दरियाँ अपने प्रियतमों के वक्षःस्थल पर लेटती हैं तो उन्हें रोमाञ्च हो जाता है[2] और कहीं प्राणेश नीवी को खोलकर प्रियतमा के करधनी में फँसे हुए वस्त्र को हटाने लगते हैं कि इसी बीच उत्तेजित प्रियतमा अपने प्रियतम का आलिङ्गन अपने स्तनों से खूब दबाकर कर लेती है[3]। सुरतकाल में सुरसुन्दरियों द्वारा करसञ्चालन, 'सी'-'सी' करना, नेत्रार्धनिमीलन और उनके अस्पष्ट मधुर स्वर इन सबसे कामदेव धीरे-धीरे अपना सिक्का जमाने लगता है—

'पाणिपल्लवविधूननमन्तः सीत्कृतानि नयनार्धनिमेषाः
योषितां रहसि गद्गदवाचामस्त्रतामुपययुर्मदनस्य ॥'(९।५०)

(४) प्रकृतिवर्णन—प्रकृत ग्रन्थ में प्रकृति के विभिन्न रूपों एवं अङ्गों का वर्णन प्राप्त होता है। सन्ध्या, चन्द्रोदय, प्रभात, सूर्यास्त, रात्रि, शरद् आदि ऋतुओं तथा पर्वतों का हृदयग्राही वर्णन मिलता है। भारवि का प्रकृति-चित्रण सूक्ष्म, सरस, मनोमोहक एवं सजीव है। शरदृऋतु में धान की बालियों को चोंच में लेकर उड़नेवाली शुक-पंक्ति इन्द्र के धनुष का अनुकरण कर रही है क्योंकि शुकों का वर्ण हरा, उनकी चोंच का रंग (मूँगे के समान) लाल और धान की बालियों का रंग पीला है—

'मुखैरसौ विद्रुमभङ्गलोहितैःशिखाः पिशङ्गीः कलमस्य बिभ्रती।
शुकावलिर्व्यक्तशिरीषकोमला धनुःश्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति ॥'(४।३६)

रात हो गई। यह है अन्धकार का राज्य। छोटे-बड़े का कोई विवेक ही नहीं है। भगवान् सूर्य विवेक को अपने साथ ही लिये चले गये। इसी कारण वस्तुओं में भेद नहीं प्रतीत होता है—

'एकतामिव गतस्य विवेकः कस्यचिन्न महतोऽप्युपलेभे।
भास्वता निदधिरे भुवनानामात्मनीव पतितेन विशेषाः ॥'(९।१२)

---

१. किरातार्जुनीय-५।५१, २. किरातार्जुनीय-९।४१,
३. किरातार्जुनीय-९।४८,

(५) संवादसौष्ठव—भारवि के पात्रों के कथनोपकथन (प्रश्नोत्तर) का अपना विशेष स्थान है। प्रत्येक पात्र अपने विवक्षित विषय का प्रतिपादन स्पष्ट एवं तर्क का आश्रय लेकर करता है। हम जिस पात्र के कथन को जब सुनते हैं तब उसे ही उचित समझते हैं। चाहे वनेचर हो अथवा युधिष्ठिर हों, द्रौपदी हो अथवा भीम, अर्जुन हो अथवा अन्य कोई पात्र सभी स्पष्ट एवं सजीव भाषा के पक्षपाती हैं। नारी कही जानेवाली द्रौपदी को देखिये। शत्रु से बदला लेकर शान्तिमार्ग का अवलम्बन लेनेवाले युधिष्ठिर से वह कहती है—

'अथ क्षमामेव निरस्तविक्रमश्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम्।
विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं जटाधरः सञ्जुहुधीह पावकम्॥'

(६) अलङ्कार—कवि शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार दोनों के ही प्रयोग में निपुण हैं। यदि किसी को शब्दालङ्कार विशेषतः चित्रालङ्कार का चमत्कार देखना हो तो किरातार्जुनीय का १५ वाँ सर्ग पढ़े। इसी एक सर्ग में उसे अनेक प्रकार के यमक तथा अनेक जटिल अलङ्कार सुलभ होंगे, यथा—एकाक्षरपाद[1](जिसके एक चरण में केवल एक ही अक्षर होता है), निरोष्ठ्य[2] (जिसमें एक भी ओष्ठ्य वर्ण न हो), पादादियमक, पादान्तादियमक, गोमूत्रिकाबन्ध, द्वयक्षर[3], एकाक्षर[4], समुद्गक, प्रतिलोमानुलोमपाद, सर्वतोभद्र, अर्धभ्रमक, द्विचतुर्थयमक, आद्यन्तयमक, शृङ्खलायमक, गूढचतुर्थपाद इत्यादि।

अर्थालङ्कारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, समासोक्ति एवं काव्यलिङ्ग का प्राचुर्येण प्रयोग हुआ है। श्लेषानुप्राणित उपमा का सुन्दर उदाहरण देखिये—

---

१. 'स सासिः सासुसूः सासो येयायेयाययायय.।
लली लीलां ललोऽलोल. शशीशशिशुशीः शशन्॥' (किरात० १५।५)

२. अयाप्य हसता सावित्रिस्मितेन स्थिरकीर्तिना।
सेनान्या ते जगदिरे किञ्चिदायस्तचेतसा॥' (किरात० १५।५)

३ चारचुञ्चुश्चिरारेची चञ्चच्चीररुचा रुच।
चचार रुचिरश्चारु चारैराचारचञ्चुर॥' (१५।३८)

४ 'न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्॥' (१५।१४)

'कथाप्रसङ्गेन जनैरुदाहृताद्नुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः।
तवाभिधानाद् व्यथते नताननः स दुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः॥'(१।२४)

निदर्शना का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है जिसके आधार पर भारवि को 'आतपत्रभारवि' कहा जाता है। स्थल-कमलिनी का वन खिला हुआ है। उससे कमल का पराग गिर रहा है। वायु के झोके पराग को आकाश मे बिखेर देते हैं। पराग आकाश मे मण्डलाकार होकर फैल जाता है। आकाश मे कमल का यह मण्डलाकार पीला पराग वैसे ही शोभा देता है जैसे वह कोई स्वर्णनिर्मित आतपत्र (छाता) हो—

'उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मादुद्धूतःसरसिजसम्भवः परागः।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्तादाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम्॥'
(५।३९)

अर्थान्तरन्यास का उदाहरण निम्नलिखित श्लोक मे देखिये—

'कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः॥'

समासोक्ति अलङ्कार के सौन्दर्य का निरीक्षण निम्नलिखित श्लोक में किया जा सकता है—

'उदारकीर्तेरुदयं दयावतः प्रशान्तबाधं दिशतोऽभिरक्षया।
स्वयं प्रदुग्धेऽस्य गुणैरुपस्नुता वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी॥' (१।१८)

सहोक्ति का भी एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है। द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि पहले आप ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् स्वयं भोजन करते थे। तब आपका शरीर बहुत ही पुष्ट एवं सुन्दर था और अब, अब तो जैसे-तैसे पेट भरने के लिए जङ्गली फल मिल पाते हैं। सम्प्रति आपका शरीर यश के साथ अत्यन्त कृश होता जा रहा है—

'पुरोपनीतं नृप! रामणीयकं द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा।
तदद्य ते वन्यफलाशिनः परं परैति कार्श्यं यशसा समं वपुः॥'(१।३९)

अन्त मे एक अतीव सुन्दर उपमालङ्कार पर दृष्टिपात कीजिये। जैसे व्याकरण-शास्त्र के नियम के अनुसार प्रकृति एवं प्रत्यय के बीच मे आनेवाले अनुबन्ध का विनाश (लोप) हो जाता है। उसी प्रकार शिव एवं अर्जुन के बाण के मध्य के बीच में वह शूकर विनाश-हेतु आ गया है—

'स भवस्य भवक्षयैकहेतोः सितसप्तेश्च विधास्यतोःसहार्यम् ।
रिपुराप पराभवाय मध्यं प्रकृतिप्रत्ययोरिवानुबन्ध. ।।'
(१३।१६)

(७) छन्द—भारवि के काव्य मे छन्दों की विविधता द्रष्टव्य है। वंशस्थ, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, द्रुतविलम्बित, पुष्पिताग्रा आदि छन्दो का बाहुल्येन प्रयोग है। बहुत से अप्रचलित छन्दो का भी प्रयोग किया गया है, जैसे—चन्द्रिका, मत्तमयूर, कुटिला आदि। वैसे 'वंशस्थ' छन्द का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। 'किरातार्जुनीय' काव्य मे राजनीति के विषयो का विवेचन है अतः वंशस्थ ही सर्वाधिक उपयोगी छन्द सिद्ध होता है, जैसा कि क्षेमेन्द्र ने कहा है—

'षाड्गुण्यप्रगुणनीतिर्वंशस्थेन विराजते'।

(८) सूक्तियाँ—किसी भी काव्य अथवा महाकाव्य मे कुछ सूक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं। सूक्तियो द्वारा कवि प्राय. सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक सत्य का उद्घाटन करता है। काव्य को काल एवं देश के बन्धन से मुक्त करने मे इन सूक्तियो का प्रमुख स्थान होता है। भारवि के अर्थान्तरन्यास की प्रियता ने सूक्तियो की संख्या मे वृद्धि कर दी है। सूक्तियाँ मार्मिक हैं। उनका आधार अनुभव, राजनीति का परिपक्व ज्ञान एवं कवि की प्रतिभा है। दूसरे की उन्नति को देखकर ईर्ष्या करनेवाले भला किस सीमा का उल्लङ्घन नही कर सकते। उन्नतिशील व्यक्ति को गिराने के लिए वे सभी प्रकार के जघन्य कुकृत्य करने मे संकोच नहीं कर सकते—

'परवृद्धिषु बद्धमत्सराणां किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम्' (१३।७)

भारवि के मर्मस्पर्शी सुभाषितो के कुछ उदाहरण प्रथम सर्ग मे ही मिल जाते हैं—

'न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः' (२)
'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' (४)
'अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता' (२३)
'विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः' (३७)
'परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्'
(४१) इत्यादि।

(९) भाषा-शैली—भारवि को भाषा पर पूर्ण अधिकार है। सरल से सरल तथा क्लिष्ट से क्लिष्ट काव्य लिखने में भारवि किसी से पीछे नहीं हैं तथापि सामान्य रूप से उन्होंने दीर्घसमासो का उपयोग नहीं किया है। इसीलिये इनके काव्य मे प्रसाद गुण माना जाता है। हाँ, जहाँ कहीं ये पाण्डित्यप्रदर्शन के लोभ मे पड गये हैं उन स्थलो में अवश्य क्लिष्टता आ गई है। फिर भी इनका काव्य यदि कालिदास के समान सरस एव ललित नही है तो माघ के समान क्लिष्ट भी नहीं है। रीति वैदर्भी है।

(१०) राजनीति—'किरातार्जुनीय' में राजनीति के गूढ तत्त्वों का सन्निवेश है। राजनीति के दुर्बोध सिद्धान्तो का उपन्यास जिस कौशल से भारवि करते हैं वैसा कदाचित् दूसरा कवि नही कर सका है। भारवि के व्यावहारिक एव नीतिसम्बन्धी प्रौढ ज्ञान के काव्य को उत्कर्ष प्रदान किया है। राजनीति के दाँव-पेचो का यथास्थान सम्यक् विवेचन किया गया है। यह निश्चय है कि भारवि का सम्पर्क राजदरबार से था और व्यावहारिक राजनीति की प्रबल जिज्ञासा भारवि में रही होगी।

(११) अर्थगौरव—अर्थगौरव का विवेचन अगले पृष्ठों मे 'भारवि का अर्थगौरव' सज्ञक मुख्य शीर्षक के अन्तर्गत देखें।

(१२) दोष—भारवि के गुणगणमण्डित काव्यो मे कतिपय दोष भी अनायास मिल जाते हैं, अत उन पर विचार करना अपरिहार्य हो जाता है। भारवि ने अपनी महाकाव्य जैसी विपुलकाय कृति के लिए जो कथानक चुना वह छोटा है अतएव कथा का प्रवाह रुक-रुक जाता है। कथानक छोटा होने के कारण ही भारवि ने अनेक वर्ण्यविषयो का अनावश्यक विस्तार कर दिया है। स्थान स्थान पर पुनरुक्ति दोष मिलता है। गन्धर्वों एवं अप्सराओ की कामक्रीडाओ के वर्णन में महाकवि सर्ग पर सर्ग खपाते चले गये हैं। भारवि का शृङ्गार भी वैसा मर्यादित एव शिष्ट नही है जैसा कालिदास का। प्रथम तीन सर्ग अधिक क्लिष्ट हैं जिन्हें विद्वानो ने 'पाषाणत्रय' तक कह डाला है और भारवि के शुष्क एव क्लिष्ट काव्य को 'नारिकेलफल'।

पाण्डित्यप्रदर्शन के कारण अर्थसौष्ठव का अभाव भी यत्र-तत्र भारवि के काव्य मे मिलता है। व्याकरण के वैदग्ध्य के प्रदर्शनहेतु पाणिनि के सूत्रो तक को उद्धृत किया गया है और चित्रकाव्य के नैपुण्य को दिखलाने के

लिए पूरा एक सर्ग (१५ वाँ) ही लिख डाला है। बहुत से श्लोक बिना व्याख्या का सहारा लिये समझे ही नहीं जा सकते। एक-एक श्लोक के तीन-तीन, चार-चार अर्थ भी मिलते हैं। पदों में माधुर्य का अभाव है। *व्याकरण की भी कुछ अशुद्धियाँ हुई हैं।*

उक्त दोषों के रहते भी भारवि के काव्य में इतने गुण हैं कि उनके काव्य को उत्तम काव्य कहा जाता है।

भारवि का अर्थगौरव

एक परम्परागत सुविख्यात सूक्ति में भारवि के काव्य का गुण अर्थगौरव बतलाया गया है। सूक्ति निम्नलिखित है—

'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः'॥

अल्प शब्दों के द्वारा अधिक अर्थ के प्रतिपादन को 'अर्थगौरव' कहा जाता है। *'किरातार्जुनीय' में युधिष्ठिर ने भीम के कथन की प्रशंसा करते हुए* कथन के गुणों का वर्णन किया है। उन गुणों में 'अर्थगौरव' भी एक गुण है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे भारवि ने भीम के कथन के गुणवर्णन के *ब्याज से अपने ही काव्य का लक्षण पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।* वह इस प्रकार है—

'स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्॥'(२।२७)

[युधिष्ठिर कहते हैं कि हे भीम ! तुम्हारे द्वारा प्रयुक्त पदों में स्पष्टता का अभाव नहीं है, न यही बात है कि उनमें अर्थगौरव का समावेश न हो। तुम्हारी वाणी (वाक्यपदों) में भिन्न-भिन्न अर्थ हैं अर्थात् पुनरुक्ति दोष नहीं है और परस्पर साकांक्ष पदों के उपस्थान का भी अभाव नहीं है अर्थात् साकांक्ष पदों का प्रयोग हुआ है।]

यद्यपि अर्थगौरव का समावेश अन्य महाकवियों के काव्यों में भी हुआ है तथापि भारवि के काव्य में इसका बाहुल्य है जिसके कारण 'भारवेरर्थगौरवम्' सूक्ति भी प्रसिद्ध हुई। कतिपय उदाहरणों के द्वारा भारवि के

अर्थगौरव के स्वरूप का स्पष्टीकरण हो जायेगा। निम्नलिखित एक ही श्लोक मे कवि ने अनेक अर्थों का सन्निवेश कर दिया है—

'निरत्ययं साम न दानवर्जितं न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियाम्।
प्रवर्तते तस्य विशेषशालिनी गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया॥'
(१।१२)

इस एक ही श्लोक मे इतने प्रमुख अर्थों का सन्निवेश है—(१) दुर्योधन जिस 'साम' नीति का प्रयोग करता है वह निरत्यय अर्थात् निर्विघ्न (छल-रहित)होती है।(२) वह जिसके साथ 'साम' नीति का प्रयोग करता है उसे दान, (धन आदि) भी देता है (क्योकि जिसके साथ 'साम' नीति का प्रयोग किया जा रहा हो वह यदि लोभी हुआ अथवा स्वार्थवश धन आदि का इच्छुक हुआ तो वह केवल वाचिक 'साम' से कैसे सन्तुष्ट होगा? इस प्रकार 'साम' के साथ वह धन आदि का भी दान करता था)। (३) वह नाम-मात्र के लिए दान नही देता था अपितु जब दान देता था तो अधिक मात्रा मे ही। जिससे व्यक्ति अवश्य अनुगृहीत एवं वशवर्ती हो सके। (४) दुर्योधन जिसे दान देता था उसका सत्कार भी करता था (क्योकि रूक्षतापूर्वक किये गये दान का प्रभाव कम ही होता है। उससे पानेवाले की हीनता की गन्ध आती है)। (५) उसके द्वारा किया गया सत्कार भी सामान्य नही होता था अपितु विशेष होता था। जब सत्कार ही करना है तो अधिक सत्कार क्यो न किया जाये। (वचनों का दरिद्रता)—'विशेषशालिनी सत्क्रिया'। (६) दुर्योधन किसी का उक्त प्रकार से सत्कार तभी करता था जब सादर किये जानेवाले व्यक्ति में विशेष गुण होते थे। अर्थात् जिस व्यक्ति में शक्ति, धन, प्रतिभा, कृतज्ञता, शूरता आदि गुण होते थे उसी का वह समादर करता था क्योंकि गुणवान् व्यक्ति से ही लाभ हो सकता है—गुणशून्य व्यक्ति से क्या लाभ होगा?

अर्थगौरव का एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत है। धनुर्धारी योद्धा प्राणों की बाजी लगाकर भी दुर्योधन का अभीष्टसम्पादन करना चाहते हैं। वनेचर युधिष्ठिर से कहता है—

'महौजसो मानधना धनार्चिता धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।
न संहतास्तस्य न भिन्नवृत्तयः प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम्॥'
(१।१९)

इस श्लोक मे निम्नलिखित अर्थों का सन्निवेश है—

(१) धनुर्धारी योद्धा प्राण देकर भी दुर्योधन के चिकीर्षित का सम्पादन करना चाहते हैं।

(२) धनुर्धारी अत्यधिक ओजस्वी हैं अर्थात् बलशाली हैं अत. शत्रु का सामना करने मे समर्थ हैं, अशक्त नही। महौजसः (३) ये धनुर्धारी केवल बलशाली ही नहीं है अपितु सम्मान को ही धन समझते हैं। अर्थात् ये आन पर मिटने वाले हैं, मरण के भय से युद्ध मे पलायन कर जाने वाले नही हैं। मानधनाः।

(४) दुर्योधन ने धन देकर उन धनुर्धारियों का सम्मान किया है अत धनुर्धारी यह समझते हैं कि उन्हे राजा से स्नेह एव सम्मान प्राप्त है। इसलिये उनमें प्रबल राजभक्ति है। धनार्चिताः।

(५) ये धनुर्धारी नौसिखिये नहीं हैं अपितु उन्होने सग्रामो मे भाग लेकर उनमे विजय प्राप्त की है और तदनुसार यशस्वी रूप मे विख्यात हैं। सयति लब्धकीर्तय.।

(६) उनका कोई गुट, गिरोह या सघ नही है जिससे अपने स्वार्थ या इच्छा की पूर्ति के लिए मिलकर कुछ करें। उनका एकमात्र लक्ष्य दुर्योधन की इच्छा का सम्पादन करना है। न सहता.।

(७) इन धनुर्धारियों में परस्पर मतवैभिन्य भी नही है जिससे परस्पर कभी झगड़ें और दुर्योधन की इच्छा की पूर्ति मे शिथिलता हो। दुर्योधन की कार्यपूर्ति के निमित्त वे एकमत रहते हैं। न भिन्नवृत्तयः।

वाक्य मे प्रयुक्त गर्वश्रेष्ठ वाक्यो को 'सूक्ति' या सुभाषित कहा जाता है यह इसलिए कि इन वाक्यो मे विशेष अर्थ का—देशकाल की सीमा को पार करके सार्वभौम एव सार्वकालिक (व्यापक) अर्थ का अर्थात् गुरु अर्थ का—सन्निवेश हुआ रहता है। कोई कथन तभी सूक्ति (सु=अच्छा+उक्ति कथन) हो सकती है जब उससे अच्छे अर्थ का—विशेष अर्थ का—महान् (गुरु) अर्थ का बोध हो, अन्यथा 'सूक्ति' (अच्छा कथन) शब्द के प्रयोग का अभिप्राय ही क्या हो सकता है? महाकवियों के यश का बहुत कुछ कारण उनकी रचनाओं में सार्वकालिक एव सार्वभौम सत्य का प्रतिपादन करने वाले वाक्य (सूक्तियाँ) होते हैं। महाकवि भारवि इस क्षेत्र में अपनी

हैं। इनके काव्य मे पदे-पदे ऐसी ही सूक्तियो का प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण महाकाव्य एतादृश सूक्तियो से भरा पड़ा है। इन सूक्तियो में उनकी मौलिकता, अनुभव, स्पष्टवादिता एव पाण्डित्य स्पष्टतः झलकता है। एतादृश सूक्तिनिहित अर्थगौरव के कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं—

१—'न हि प्रिय प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः' (१।२)। हितैषी लोग अपने प्रियजनो से असत्य प्रिय कहने की इच्छा नही करते क्योकि सुनने मे असत्य प्रिय वह वचन क्षण भर के लिये प्रिय होता है किन्तु असत्य होने के करण उसका परिणाम सदा के लिए दुस्तर भयावह होता है। अतः हितैषी व्यक्ति सदैव सत्यवचनो का ही प्रयोग करते हैं, भले ही वे कड़वे हो। हितकारी वचन प्रायः कड़वे होते ही हैं—'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' (१।४)

२—'अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता' (१।३)—बलवान् व्यक्ति से विरोध करने का परिणाम अच्छा नही होता। दुर्बल व्यक्ति बलवान् से शत्रुता करके सदैव पराजित ही होता है और उससे धन, जन, शान्ति एव शक्ति का क्षय होता है अर्थात् बलवान् व्यक्ति से विरोध करने पर सदैव हानि ही होती है, लाभ कभी नही होता।

३—'अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदा भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः' (१।३३)—जिसका क्रोध व्यर्थ नही जाता और जो आपत्ति या विनाश करने मे समर्थ है ऐसे व्यक्ति के वश मे लोग स्वय हो जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी से प्रेम करता है या किसी के प्रति श्रद्धा रखता है, किसी का सम्मान करता है अथवा किसी की सहायता करता है, किसी का विरोध करने मे सङ्कोच करता है अथवा किसी के वश में होकर रहता है तो उसमें दो ही कारण हो सकते हैं—एक तो भय और दूसरा लोभ। जिस व्यक्ति का क्रोध विफल नही जाता उससे सभी व्यक्ति भयभीत रहते हैं कि यह व्यक्ति असन्तुष्ट होकर क्रुद्ध हो जायेगा और अवश्य दण्ड देगा, अनिष्ट करेगा। जो व्यक्ति अन्य लोगों के कष्ट निवारण करने में समर्थ होता है लोग उसके भी वश में हो जाते हैं, यह सोचकर कि प्रसन्न होकर यह हमारे कष्टों को दूर करेगा।

४–'परंरपयासितवीयसम्पदा पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्' (१।४१)—शत्रु के द्वारा जिनके पराक्रम एव सम्पत्ति का विनाश नहा किया जाता है उन मनस्वी व्यक्तियो का तिरस्कार उनके लिये उत्सव (क समान) ही होता है। ससार का प्रत्येक व्यक्ति पर्यायश सुख एव दुख का अनुभव करता है। कोई व्यक्ति कितनी ही महान् क्यों न हो उसे भी आपत्तिया का सामना करना पडता है और वह आपत्तियो को प्रसन्नतापूवक झेलता है। अथवा यदि यह कहा जाये कि आपत्तियो म उसके उत्साह उसकी सहनशक्ति का यथार्थरूप जनसामान्य को देखने को मिलता है ता अयुक्ति न हागी। आपत्ति तो उसके लिये उत्सव के समान हाती है। किन्तु स्वाभिमानी व्यक्ति की ऐसी आपत्तिग्रस्त स्थिति शत्रु के कारण नहीं होनी चाहिये। यदि शत्रु के कारण वह आपत्तिग्रस्त हाता है अथवा तिरस्कृत हाना है ता स्वाभिमानी व्यक्ति उसे सहन नही कर सकता। वह त्वरित शत्रु से बदला लेना है। यदि कोई व्यक्ति मार्ग पर चलते समय ठोकर लगने से स्वत गिर जाता है तो उसे दुख नहीं होना किन्तु यदि शत्रु के ठोकर मारने से कोई व्यक्ति मार्ग पर गिर जाये तो स्वाभिमानी व्यक्ति का खून खौल उठता है। वह *तत्कृत अपमान को सहन नहीं कर सकता।*

(७) 'गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः'—प्रेम का कारण गुण है, परिचय नहीं। कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी को इसलिए प्रिय होता है कि उस पदार्थ या व्यक्ति मे इष्ट गुण होते हैं। ऐसा नही कि जिस वस्तु या व्यक्ति से अधिक समय से परिचय रहा हो वह प्रिय हो। धूप से व्यक्ति का सदा से परिचय हुआ रहता है किन्तु ग्रीष्मऋतु मे वह प्रिय नही लगती है क्योकि उस काल मे अभिलषित गुण शैत्य नही होता।

(८) 'पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते'—(११।६१)—पुरुष तभी तक पुरुष रहता है जब तक वह स्वाभिमान से च्युत नही रहता अर्थात् स्वाभिमान से रहित पुरुष पुरुष नही होता।

(९) 'न तितिक्षासममस्ति साधनम्' (२।४३)—
शान्ति के समान (शत्रु विजय का) अन्य साधन नही होता।

(१०) 'भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः' (३।१२)—
गुणवान् व्यक्ति के प्रति (तटस्थ व्यक्ति का भी) पक्षपात होता है।

(११) 'मात्सर्यरागोपहतात्मना हि स्खलन्ति साधुष्वपि मानसानि' (३।१३)—मात्सर्य एवं राग से आकृष्ट व्यक्ति के चित्त सज्जनों के विषय मे भी विकृति हो जाते हैं।

(१२) 'किमिवावसादकरमात्मवताम्' (६।१९)—मनस्वी व्यक्ति के लिए कौन वस्तु उद्वेगजनक होती है ? कोई नहीं (घोर तपस्या का अनुष्ठान करते हुए अर्जुन उद्विग्न नही हुए)

साराश यह है कि 'भारवेरर्थ गौरवम्' यह सूक्ति सर्वथा समीचीन है।

भट्टि

भट्टि की केवल एक ही कृति प्राप्त होती है जिसका नाम 'रावणवध' है। 'रावणवध' को 'भट्टिकाव्य' भी कहा जाता है। ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक मे भट्टि ने विज्ञापित किया है कि उन्होंने इस काव्य की रचना महाराज श्रीधर के शासनकाल मे वलभी नामक नगरी मे किया है—

'काव्यमिदं विहितं मया वलभ्यां श्रीधरसेननरेन्द्रपालितायाम्।
कीर्तिरतो भवतान्नृपस्य क्षेमकरः क्षितिपो यतः प्रजानाम्॥'
(भट्टिकाव्य-२२।३५)

वलभी मे 'श्रीधरसेन' नामक चार राजाओं का अस्तित्व रहा है। १५० वर्ष (५००–६५० ईसवी सन्) तक एक के बाद दूसरे श्रीधरसेन शासन करते रहे। प्रश्न यह है कि भट्टि कवि किस श्रीधरसेन के राज्यकाल मे थे? ६१० ई० के एक शिलालेख मे भट्टि नामक विद्वान् को भूमि देने का उल्लेख हुआ है और यह शिलालेख श्रीधरसेन द्वितीय का है। अत यह सिद्ध होता है कि भट्टि का समय लगभग ७ वी शताब्दी का प्रारम्भ रहा होगा।

(६) भट्टिकाव्य (रावणवध)—'भट्टिकाव्य' नामक महाकाव्य मे २२ सर्ग हैं। इसमे रामायण-रामायण की कथा का वर्णन किया गया है। सर्गों के प्रमुख प्रतिपाद्य विषय क्रमश यह हैं—रामजन्म, सीतापरिणय, रामवनवास, शूर्पणखानिग्रह, सीताहरण, बालिवध, सीतान्वेषण, अशोकवनविनाश, हनुमत्ग्राम, प्रभातवर्णन, रामविभीषणमिलन, सेतुबन्ध, कुम्भकर्णवध, रावणविलाप, रावणवध, विभीषणप्रलाप, विभीषण का राज्याभिषेक, सीता-प्रत्याख्यान, सीता की अग्नि परीक्षा और अयोध्या वापस होना।

'भट्टिकाव्य' की रचना का उद्देश्य रामायण की कथा को लेकर व्याकरण के प्रयोगों का समावेश करना था। उन्होंने व्याकरण के जटिल नियमो के उदाहरणो का प्रयाग ग्रन्थ मे किया है क्योंकि नियमो के उदाहरण यदि वाक्य में सन्निहित न हो उन नियमो का प्रयोजन नहीं दीख पडता। भट्टि ने स्वय कहा है कि यह काव्य वैयाकरणो के लिये दीपक के समान होगा किन्तु जिसे व्याकरण का ज्ञान नही है यदि वह व्यक्ति इसका स्पर्श करता है तो उसका स्पर्श वैसा ही होगा जैसे कोई अन्धा व्यक्ति किसी पदार्थ का छू रहा हो किन्तु उसके स्वरूप का ज्ञान न प्राप्त कर रहा हो—

> 'दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
> हस्तामर्ष इवान्धानां भवेद् व्याकरणादृते॥ (२२।३३)

ग्रन्थ मे विभिन्न लकारों के रूपों, विभिन्न प्रत्ययों के प्रयोगों तथा समासों के उदाहरणो को प्रदर्शित किया गया है। गुण अलकारों के प्रयोगात्मक रूप की प्राप्ति भी सम्यकतया हुई है। लकारों के रूपों के प्रयोग का विस्तार तो आश्चर्यजनक ही है। अन्तिम ९ सर्गों मे से एक-एक को लेकर उनका प्रयोग दिखलाया गया है। व्याकरण के नियमों के उदाहरण प्रस्तुत

करना ही ग्रन्थनिर्माण का मुख्य प्रयोजन होने पर भी महाकवि ने अपनी कृति में महाकाव्य के धर्मों का निर्वाह किया है। इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं कि यदि भट्टि का प्रमुख लक्ष्य व्याकरण के प्रयोगों का प्रदर्शन न होकर उत्तमकाव्य की रचना होता तो निःसन्देह भट्टि कालिदास जैसे महाकवियों के समान स्तर के काव्य की रचना करते। इनके काव्य से कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं। सर्वप्रथम चक्रवालयमक का उदाहरण—

'अवसितं हसितं प्रसितं मुदा।
　　विलसितं ह्रसितं स्मरभासितम्॥
न समदाः प्रमदा हतसंमदाः।
　　पुरहितं विहितं न समीहितम्'॥　　(१०।६)

(लङ्का में प्रवृत्त हास्य समाप्त हो गया। प्रसन्नता से होने वाले कामोद्दीपित शृङ्गारविलास का ह्रास हो गया। स्त्रियाँ दर्पयुक्त नहीं हैं अपितु हर्षरहित हैं। अभीष्ट नगर-हित भी नहीं किया गया।)

एकावली का मनोज्ञ उदाहरण—

'न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं न पङ्कजं तद्यदलीनषट्पदम्।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः॥
(२।१९)

• (उस शरद ऋतु में कोई ऐसा सरोवर नहीं है जिसमें सुन्दर कमल न हो। ऐसा कोई कमल नहीं है जिस पर भौंरे न बैठे हुए हों। ऐसा कोई भौंरा नहीं है जो अव्यक्त मधुर ध्वनि से न गूँज रहा हो। और ऐसी कोई गुन्जार नहीं है जो मन न मोहती हो।)

भट्टि के काव्य में माधुर्य, सारल्य, मनोज्ञता, अन्तर्जगत् एवं बाह्यजगत्-प्रकृति-के चित्रण का अभाव नहीं है। रात बीत गई। चन्द्रमा अस्त हो गया। प्रभात आ पहुँचा। बेचारी कुमुदिनी का अपने प्रियतम चन्द्रमा से वियोग हो गया। कुमुदिनी के असह्य दुःख को देखकर वृक्षों से नहीं रह गया। रात की गिरी ओस ही वृक्षों के आँसू हैं जिन्हें वे बन्धुरूप पत्तों की नोक से टपका रहे हैं और उन वृक्षों पर बैठे हुए पक्षियों का प्रामानिक स्वर ही उन वृक्षों का करुण-क्रन्दन है। यह वियोगिनी कुमुदिनी के प्रति वृक्षों की समवेदना—

'निशातुषारैर्नयनाम्बुकल्पैः पत्रान्तपर्यागलदच्छबिन्दुः ।
उपारुरोदेव नदत्पतङ्गः कुमुद्वती तीरतरुर्दिनादौ' ॥

भ्रमर के गीत मे ध्यान लगाये निश्चेष्ट हरिण को मारने की इच्छा वाला बहेलिया उत्सुक हंसो के शब्द को सुनता हुआ अपने लक्ष्य मे एकाग्र नही हो पा रहा है—

'दत्तावधानं मधुलेहिगीतौ प्रशान्तचेष्टं हरिणं जिघांसुः ।
आकर्णयन्नुत्सुकहंसनादान् लक्ष्ये समाधिं न दधे मृगावित्' ॥ (२।७)

कुमारदास

कुमारदास की केवल एक ही कृति—'जानकीहरण' नामक महाकाव्य-प्राप्त होती है। 'जानकीहरण' कालिदास के काव्यो से विशेषत. 'रघुवंश' से प्रभावित है। जानकीहरण के कुछ शब्दो से ज्ञात होता है कि कुमारदास पाणिनिसूत्रो की वृत्ति 'काशिका' से परिचित थे। काशिका का समय ६३०-६५० ईसवी सन् है। इस प्रकार ये ६५० ईसवी से पश्चाद्भावी हैं। वामन (८०० ई०) ने जानकीहरण से उद्धरण लिए हैं अतः इनका समय ८०० ई० सन् से पूर्व है इस प्रकार कुमारदास का स्थितकाल ६५० ईसवी सन् के मध्य होना चाहिए।

जनश्रुति के अनुसार कुमारदास लङ्का के निवासी तथा राजा थे। यह भी कहा जाता है कि कुमारदास ने कालिदास को लङ्का बुलाया था क्योंकि कालिदास ने कुमारदास के 'जानकीहरण' की प्रशंसा की थी। अतएव कुमारदास कालिदास से अत्यन्त प्रसन्न थे। कुमारदास एवं कालिदास दोनो मे ऐसी मैत्री हो गई जैसे वे दोनों दो शरीर एक प्राण हों। एक वेश्या के षड्यन्त्र से कालिदास के वध कर दिये जाने पर कुमारदास कालिदास की ही चिता मे जलकर मर गये। इस जनश्रुति मे कितना सार है कुछ नही कहा जा सकता।

जाकर धनुष तोड़ना, सीतारामपरिणय एवं उनकी प्रेमक्रीडा, युद्ध, रामवनवास, सीताहरण, रावण-जटायुयुद्ध सुग्रीवमिलन, सीता के वियोग मे राम के दु ख का वर्णन, सेतु बाँधकर लङ्का मे रामसेना का प्रवेश, अङ्गद का दौत्यकर्म, राक्षसो की रतिक्रीडायें, रावणवध।

राजशेखर ने कहा है कि रघुवंश (१. 'रघुवंश' महाकाव्य, २. रघु के वंश मे उत्पन्न राम) के रहते जानकीहरण (१. 'जानकीहरण' नामक काव्य २. सीताहरण) या तो कवि कुमारदास कर सकता है अथवा रावण। अभिप्राय यह है कि 'रघुवंश' जैसा उत्कृष्टग्रन्थ होने पर भी उसी कथावस्तु को लेकर लिखा गया ग्रन्थ 'जानकीहरण' व्यर्थ नहीं हो जाता अपितु अपने गुणो के कारण महत्वशील ही है। 'जानकीहरण' में श्लेष, उपमा, रूपक अर्थान्तरन्यास आदि अलकारो का समुचित उपयोग हुआ है। कवि का अधिक पक्षपात यमक अलकार के प्रति है। प्रकृति-निरीक्षण सूक्ष्म है। वसन्तऋतु मे रात्रि अपने प्रियतम शिशिर के वियोग मे विधुर होने के कारण कृश होती चली जा रही है और वसन्त की प्रचण्ड धूप से थका दिन भी क्रमश. मन्द-मन्द चलने लगा—

'प्रालेयकालप्रियविप्रयोगग्लानेव रात्रिः क्षयमाससाद।
जगाम मन्द दिवसो वसन्तक्रूरातपश्रान्त इव क्रमेण॥'

विद्वान् व्यक्ति भी इस विषय मे ऊहापोह करने लगता है कि ब्रह्मा ने दशरथ की पत्नी की सुन्दर सुडौल जघनो का निर्माण कैसे किया होगा क्योकि यदि वे जघनो को देखकर बनाते थे तो कामदेव के बाणो से आहत हो जाते और आँख बन्द करके जघनों की रचना ही कैसे हो सकती थी—

'दृष्टौ हत मन्मथबाणपातै. शक्य विधातु न निमील्य चक्षु.।
ऊरू विधात्रा नु कृतौ कथ तावित्यास तस्या सुमतेर्वितर्क॥'
(जानकीहरण-१।२६)

माघ

जीवनपरिचय—माघ की केवल एक रचना प्राप्त होती है, वह है—'शिशुपालवध' महाकाव्य। माघ के व्यक्तित्व का परिचय 'भोजप्रबन्ध', 'प्रबन्धचिन्तामणि' एव 'प्रभावकचरित' नामक ग्रन्थों से प्राप्त होता है। 'शिशुपालवध' के अन्तिम ५ श्लोकों मे माघ के वंश का वर्णन दिया हुआ है। स्थान

देने योग्य बात यह है कि सम्पूर्ण महाकाव्य पर 'सर्वङ्कषा' नामक व्याख्या के प्रणेता मल्लिनाथ ने इन श्लोको का स्पर्श नही किया है। सम्भव है कि मल्लिनाथ के समय मे इन श्लोको का अस्तित्व ही न रहा हो अथवा उन्होंने इन श्लोको को प्रक्षिप्त समझा हो। इन श्लोको के विवेचन के अनुसार माघ के पितामह का नाम सुप्रभदेव था। ये सुप्रभदेव श्रीवर्मल संज्ञक राजा के प्रधान अधिकारी थे। श्रीवर्मल सुप्रभदेव पर इतना अधिक विश्वास करते थे कि उनकी बात को आँख मूँदकर मान लेते थे। इन सुप्रभदेव के पुत्र हुए दत्तक। दत्तक का हृदय विशाल था। वे क्षमाशील-मृदुस्वभाव एव धार्मिक थे। इनके गुणो को प्रत्यक्षत: देखकर लोगो को विश्वास होने लगता था कि महाभारत में जो युधिष्ठिर के गुणों का वर्णन किया गया है सच होगा क्योंकि मानव (दत्तक) मे इतने गुण दिखलाई पड गये। (यही दत्तक माघ के पिता थे)। दत्तक के गुणो के कारण ही उन्हें 'सर्वाश्रय' की उपाधि से विभूषित किया गया था। दत्तक के पुत्र (माघ) ने 'शिशुपाल-वध' नामक काव्य की रचना की।

माघ के पिता का नाम दत्तक था। अधिक दानशील एव उदार होने के *कारण दत्तक को सर्वाश्रय नाम से भी अभिहित किया जाता था।* माघ के पितामह का नाम सुप्रभदेव था। ये गुर्जर के राजा श्रीवर्मल के प्रधान मंत्री एव धर्मसचिव थे। इससे यह सिद्ध होता है कि माघ का जन्म एक सुशिक्षित एव ब्राह्मण कुल मे हुआ था। माघ का जन्म 'भीनमाल' नामक नगर मे हुआ था जो उस समय विद्या का केन्द्र एव राज्य की राजधानी थी। माघ की दानशीलता के विषय मे 'भोजप्रबंध' में लिखा है कि राजा भोज के समीप माघ की पत्नी माघ के एक श्लोक को ले गई। श्लोक यह था—

'कुमुदवनमपश्री श्रीमदम्भोजपण्ड

त्यजति मुदमुलूक: प्रीतिवाञ्चक्रवाक:।

उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं

हतविधिलसिताना ही विचित्रो विपाक:॥'

(शिशुपालवध—११।६४)

इस श्लोक को सुनकर भोज ने माघपत्नी को विपुल धनराशि दी। किन्तु दानशीला माघपत्नी ने उस समग्र धनराशि को मार्ग ही में दान कर दिया। घर खाली हाथ पहुँची। याचकों की इच्छा न पूरी कर पाने के कारण माघ

ने अपने प्राण त्याग दिये। भोज ने माघ का अग्नि संस्कार किया। पति के वियोग मे माघ की पत्नी भी सती हो गई। माघ के विषय म उक्त कथा मनगढ़न्त होने की भी अधिक सम्भावना है।

समय—(बहिरङ्ग प्रमाण) माघ के समय के विषय मे ऐकमत्य नही है। कुछ विद्वान् इनका समय ७ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध मानते हैं तो दूसरे ८ वी शताब्दी का मध्यभाग। कुछ विद्वान् तो माघ को धाराधीश भोज से जोडकर उनका समय ११ वी शताब्दी भी मानने का साहस करते हैं क्योंकि सोमदेव ने 'यशस्तिलकचम्पू (९५९ ई०) मे माघ का स्पष्ट उल्लेख किया है। इसके भी पूर्व आनन्दवर्धन (८५० ई०) ने अपनी विख्यात कृति 'ध्वन्यालोक' में 'शिशुपालवध' के दो श्लोकों को उद्धृत किया है। उद्धृत श्लोक ये हैं—"रम्या इति प्राप्तवती पताका" (शिशुपालवध—३।५३) तथा "त्रासाकुल परिपतनपरितो निकेतान् ..." (शिशुपालवध—५।२६)। यही क्यो, दक्षिण के राजा अमोघवर्ष (८१४ ईसवी) के काल मे नृपतुङ्ग नामक कवि ने 'कन्नडभाषा' मे लिखे गये अपने 'कविराज मार्ग' नामक ग्रन्थ मे माघ का उल्लेख किया है। माघ के पितामह सुप्रभदेव का समय एक शिलालेख से निर्धारित होता है। यह शिलालेख है सुप्रभदेव के आश्रयदाता राजा वर्मलात का। इस शिलालेख का समय ६२५ ई० है। इससे प्रमाणित होता है कि प्रपितामह का समय ६२५ ई० है तो पौत्र माघ का समय ६५० ७०० ईसवी के आस पास रहा होगा।

अन्तरङ्ग प्रमाण—'शिशुपालवध' के निम्नलिखित श्लोक मे व्याकरण के दो ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है—

'अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना ।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥'
(शिशुपालवध—२।११२)

यहाँ 'न्यास' एव 'काशिकावृत्ति' इन दो व्याकरण ग्रन्थों की ओर स्पष्ट सकेत है[1]। ध्यान रहे यहाँ 'न्यास' पद से जिस व्याकरणग्रन्थ का उल्लेख

---

१ मल्लिनाथ भी इस विचार से सहमत हैं। वे लिखते हैं—'न्यासो वृत्तिव्याख्यानग्रन्थविशेषा '—तथा—वृत्ति काशिकाख्यसूत्रव्याख्यान-ग्रन्थविशेषो '

किया गया है वह जिनेन्द्रबुद्धिरचित 'न्यास' नामक टीका नहीं है। अपितु जिनेन्द्रबुद्धि (७०० ई०) से भी पूर्वरचित कोई व्याकरणग्रन्थ है। बाण (६२० ई०) ने भी एक 'न्यास' ग्रन्थ का उल्लेख अपनी कृति 'हर्षचरित' में किया है—'कृतगुरुपदन्यासा लोक इव व्याकरणेऽपि'। अतः जो लोग माघ द्वारा संकेतित 'न्यास' को जिनेन्द्र के कर्तृत्व से जोड़कर उन्हें (माघ को) ७५० ईसवी के लगभग या उसके पश्चात् भी खींच लाने का प्रयास करते हैं वे भ्रम में हैं। जयादित्य एवं वामन की सम्मिलित रचना काशिका का समय ६५० ईसवी है। अतः माघ का समय निश्चित रूप से ६५० ईसवी के बाद का है। प्रकृत विवेचन से सिद्ध होता है कि माघ का सातवीं शताब्दी का उत्तरार्ध होना चाहिए।

(८) शिशुपालवध—महाकवि माघ की एकमात्र कृति—'शिशुपालवध' नामक महाकाव्य में २० सर्ग हैं। इसमें शिशुपाल के वध की कथा वर्णित है। माघ के महाकाव्य से पूर्व शिशुपाल की कथा दो ग्रन्थों में प्राप्त होती है—(१) श्रीमद्भागवत के ७ वें स्कन्ध के ४७ वें अध्याय में तथा (२) महाभारत सभापर्व के ३३ वें अध्याय से लेकर ४५ वें अध्याय तक में। माघ ने महाभारतीय कथा का प्राधान्येन आश्रय लेकर अपेक्षित परिवर्तन करते हुए अपने ललित एवं प्रौढ़ काव्य की सृष्टि की। शिशुपालवध की कथा इस प्रकार है—नारद स्वर्ग से द्वारका आकर कृष्ण को अत्याचारी शिशुपाल को मार डालने के लिए प्रेरित करते हैं। बलराम कहते हैं कि तुरन्त शिशुपाल पर चढ़ाई कर दी जाये किन्तु उद्धव परामर्श देते हैं कि युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में शिशुपाल को समाप्त कर देने का सुअवसर प्राप्त होगा। कृष्ण उद्धव से सहमत हो जाते हैं। द्वारका से इन्द्रप्रस्थ के मार्ग में कृष्ण का सारथी, जिसका नाम दारुक है रैवतक पर्वत का हृदयग्राही वर्णन करता है। मार्ग में रात्रिविराम, सपत्नीक यादवों का जलक्रीडा एवं वनविहार का वर्णन प्राप्त होता है। प्रातः कृष्ण के इन्द्रप्रस्थ पहुँचते ही युधिष्ठिर उनका सम्मान करते हैं। शिशुपाल कृष्ण के सम्मान को देखकर तिलमिला जाता है। कृष्ण के सम्मान का असहिष्णु शिशुपाल युधिष्ठिर के प्रति उपालम्भात्मकता का प्रयोग करते हुए कहता है कि कृष्ण सम्मान के योग्य नहीं हैं। वह समागत

राजाओं को कृष्ण का वध करने के लिए प्रेरित ही नही करता है अपितु स्वय कृष्ण को मारने के लिए सेना को तैयार कर देता है। शिशुपाल कृष्ण के समीप दूत भेजता है जिसका उत्तर कृष्ण का दूत 'सात्यकि' देता है। युद्ध ठन ही जाता है। दोनों पक्ष की सेनाओं मे तुमुल युद्ध होता है। कृष्ण और शिशुपाल का द्वन्द्व युद्ध होता है। अकिञ्चित्कर शिशुपाल कृष्ण पर गालियों की बौछार प्रारम्भ कर देता है। शिशुपाल के वाग्बाणों से व्यथित कृष्ण सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट देते हैं। शिशुपाल के शरीर से विनिर्गत एक तेज कृष्ण के शरीर मे लीन हो जाता है।

माघ–काव्य की विशेषताएँ

भाषा एव भाव, रस एव अलङ्कार, प्रकृति-चित्रण एवं चरित्रचित्रण आदि अनेक दृष्टियों से माघ का काव्य उत्कृष्ट है। यहाँ संक्षेप मे माघ के काव्य की विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा है--

(१) माघे सन्ति त्रयो गुणाः—एक प्राचीन उक्ति के अनुसार जहाँ कालिदास के काव्य मे 'उपमा' अलङ्कार के सौन्दर्य का अतिशय है, भारवि की कृति मे 'अर्थगौरव' का'वैशिष्ट्य'है और दण्डी की रचना मे पद-लालित्य का चमत्कार है वहाँ अकेले माघ के काव्य मे तीनो गुणों–उपमा, अर्थगौरव तथा पदलालित्य—का उत्कर्ष है। उक्त अर्थ का प्रतिपादन करनेवाली उक्ति यह है—

'उपमा कालिदासस्य भारवरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

(क) उपमा—माघ की उपमा सुन्दर होती है। जिस प्रकार एक उपमा के सौन्दर्य के कारण कालिदास को 'दीपशिखा' कालिदास कहा जाता है उसी प्रकार माघ की एक उपमा के कारण उन्हें 'घण्टामाघ' कहा जाता है। कवि ने वहाँ प्रात काल मे होनेवाली रैवतक पर्वत की शोभा का वर्णन किया है। रैवतक पर्वत के एक ओर तो ऊपर फैली हुई रज्जुरूपी किरणों वाला सूर्य उदित हो रहा है और दूसरी ओर हिमकिरण चन्द्रमा अस्त हो रहा है। इस रैवतक की वैसी ही शोभा है जैसी उस गजराज की जिसके दोनों ओर दो घण्टे लटक रहे हो

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्॥'
(शिशुपालवध-४।२०)

नारद आकाशमार्ग से पृथ्वी की ओर आ रहे हैं। नारद गौरवर्ण हैं। उनका हिमशुभ्र यज्ञोपवीत गरुड के रोम के समान लम्बा है तथा सुनहरी भूमि पर उत्पन्न लता के सूत्रों से सुन्दर है। एतादृश चमकते हुए यज्ञोपवीत को धारण किए हुए गौरवर्ण नारद की शोभा उस मेघ के समान है जिसम विद्युत्समूह स्फुरित हो रहा हो—

'विहङ्गराजाङ्गरुहैरिवायतैर्हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः।
कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकैर्घनं घनान्ते तडिताङ्गुणैरिव॥'
(शिशुपालवध-१।७)

परिपतति दिवाङ्के हेलया मालसूर्य।॥'

नारद जटायें कमल के केसर के समान-केसरिया रङ्ग की हैं। लगता है के नारद उस पर्वतराज हिमालय के समान हैं जिसकी वर्फीली भूमि पर लतायें उगी हुयी हो जो पकने के कारण पीली पड गई हो और जिनका वर्ण शरत्कालीन चन्द्रमा की किरणों के समान हो—

'दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव॥'
(शिशुपालवध-१।५)

(ख) अर्थगौरव—माघ के काव्य म 'अर्थगौरव' गुण का भी समावेश समुचितरूप म हुआ है। भगवान् कृष्ण की प्रशंसा करते हुए नारद कहते हैं—

'उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥'

'बहिर्विकार', 'प्रकृतेः पृथक्', 'पुरुषं' आदि आदि पदो मे 'सांख्य' तथा 'योग' दर्शन के प्रमुख तत्त्वो का अर्थ समाहित है। सांख्यदर्शन में दो तत्त्व माने जाते हैं—(१) प्रकृति (२) पुरुष। पुरुष सर्वथा गुणशून्य होता है अर्थात् सत्त्व, रज एव तम, इन तीनों गुणों से रहित होता है और प्रकृति त्रिगुणात्मिका होती है। प्रकृति के २३ विकार होते हैं। विस्तारभिया उन सबका विवेचन यहाँ सम्भव नही है। पुरुष उन २३ विकारो से भी बाहर है। वह क्रियाशून्य है। न उसमे कर्तृत्व है और न भोक्तृत्व। इस प्रकार पुरुष उदासीन या तटस्थ रहता है।

अर्थगौरव का एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है–सूर्य उदित हो रहा है। वह एक अल्पवयस्क बालक के समान है जो घुटनो के बल सरकता है। उदयाचल पर्वत की चोटी ही वह आँगन है जिसमे यह बालसूर्य रेंग रहा है। जैसे किसी छोटे बालक को घुटनो के बल सरकते देख स्त्रियाँ उत्सुकतापूर्वक हँसकर देखने लगती हैं उसी प्रकार इस बालसूर्य को वे कमलिनियाँ देख रही हैं जिनके कमलरूपी मुखो मे हास्य (हँसी, विकास) आ गया है। जिस प्रकार बालक अपनी कोमल उँगलियाँ (मृदुकराग्र) को फैलाता है उसी प्रकार यह बालसूर्य भी अपनी अप्रखर (मृदु–हल्की) किरणो (कर) को फैला रहा है। बालक को उसकी माँ बुलाती है। यहाँ पक्षियो का कलरव ही माता द्वारा बालक को बुलाने का शब्द है। जिस प्रकार कोई माँ की गोद मे आने के लिए अधीर कोई बालक क्रीडापूर्वक टूट पडता है यह बालसूर्य भी उसी तरह आकाशरूपी माता की गोद मे उछल रहा है—

> 'उदयशिखरशृङ्गप्राङ्गणेष्वेव रिङ्गन्,
> सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभि।
> विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः
> परिपतति दिवाङ्के हेलया बालसूर्यः॥'
>
> (शिशुपालवध-११।४७)

(ग) पदलालित्य—माघ के काव्य मे 'पदलालित्य' का भी अनूठा चमत्कार है। भाषा का सौष्ठव, नये नये शब्दो का प्रयोग, यमक का सन्निवेश एव परिपुष्ट पदयोजना सभी पदलालित्य की सृष्टि करते हैं। उदाहरण देखिए—

'तिरस्कृतस्तस्य जनाभिमाविना मुहुर्महिम्ना महसा महीयसाम् ।
बभार वाष्पैर्द्विगुणीकृत तनुस्तनूनपादघूमवितानमाधिजं ॥'
(शिशुपालवध–१।६२)

दूसरा उदाहरण—
'यनोज्झिताभिर्मंहुरम्बुवाहे समुन्नमदभिर्न समुन्नमद्भि ।
वन ववाघे विषपावकोत्था विपन्नगानामविपन्नगानाम् ॥'
(शिशुपालवध–४।१५)

(२) रस—शिशुपालवध में शृङ्गार, वीर, शान्त एव हास्य आदि प्राय सभी रसो का समुचित समावेश हुआ है। कहीं द्वारका की लुभावनी सुन्दरियो का हृदयग्राही चित्रण है तो कही समुद्र के द्वारा भूमि के आलिङ्गन का अङ्कन है। कही युवक-युवतियो की रति क्रीडा में साहाय्य की अपेक्षा से मेघ द्वारा सूर्य को ढक दिया जाता है ताकि दिन रात्रि मे परिणत हो जाये तो अन्यत्र रमणियो को घाडे से उतारते समय सेवकजन उनका स्पर्श कर लेते हैं। देखिए इस रमणी का उतावलापन। इसने यह भी न विचार किया कि सामने खडी हुई सखियाँ मन म क्या सोचेंगी। बस अपने प्रिय से वह वैसे ही लिपट गई जैसे वृक्ष पर लता लिपट गई हो—

'विलसितमनुकुर्वती पुरस्ताद्घरणिरुहाधिरुहो वधूर्लताया ।
रमणमृजुतया पुर सखीनामकलितचापलदोषमालिलिङ्ग ॥'
(शिशुपालवध–७।४६)

वीर रस का दर्शन दूतवार्ता एव युद्ध आदि के प्रसङ्ग म होता है। कही दूत के वाक्य को सुनकर सभा महाप्रलय के समय समुद्र की भाँति बतलाई गई है। कोई वीर क्रोध में वीरभद्र के समान हो जाते हैं उ ह पसीना आ जाता है, ताल ठोकने लगते हैं। और ओठ चबाने लगते हैं—

'सरागया स्रुतघनघर्मतोयया कराहतिध्वनितपृथूरुपीठया ।
मुहुर्मुहुर्दशनविखण्डितोष्ठया रुषा नृपा प्रियतमेव भेजिरे ॥'
(शिशुपाल०–१७।२)

(३) अलङ्कार—माघ का काव्य अलङ्कृत भाषा मे उपनिबद्ध है। अलङ्कार के बिना माघ लिखना ही नहीं जानते। उपमा, उत्प्रेक्षा अर्थान्तरन्यास, स्वभावोक्ति आदि बहुविध अलङ्कारों का यथोचित उपन्यास हुआ है। उपमा का विवेचन 'माघ गति त्रयो गुणा' शीर्षक म किया जा चुका है। अर्थान्तरन्यास का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'वलावलेपादधुनापि पूर्ववत् प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा ।
सतीव योषित्प्रकृतिश्च निश्चला पुमासमभ्येति भवान्तरेष्वपि ॥'
(शिशुपाल०-१।७२)

(विजयोत्सुक वह शिशुपाल बल के कारण दर्प के पहले की भांति इस समय भी ससार को दुःखी कर रहा है । क्योकि पतिव्रता पत्नी और निश्चल स्वभाव जन्मान्तर मे भी स्वकीय पुरुष को प्राप्त होते हैं ।)

शब्दालङ्कारो की भी कमी माघ के काव्य मे नही है । यमक का सुन्दर उदाहरण देखिये—

'राजीवराजीवशलोलभृङ्गं मुष्णन्तमुष्णं ततिभिस्तरूणाम् ।
कान्तालकान्ता ललना सुराणां रक्षोभिरक्षोभितमुद्वहन्तम् ॥'
(शिशुपाल०-४।९)

इसके अतिरिक्त शिशुपालवध म सर्वतोभद्र, गोमूत्रिका आदि चित्रबन्ध तथा एक अक्षर एव दो अक्षरवाले श्लोक भी प्राप्त होते हैं ।

(४) छन्द—अनुष्टुप, वसन्ततिलका, उपजाति, वशस्थ, मालिनी, द्रुतविलम्बित, पुष्पिताग्रा आदि बहुविध छन्दो का प्रयोग महाकवि ने किया है ।

(५) प्रकृतिवर्णन—शिशुपालवध मे महाकवि ने पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय, जलक्रीडा, वनविहार, समुद्र, नदी, वृक्ष, गज, हरिण, चमरी गाय, अश्व, सारस, मयूर, कमल, भ्रमर, शुक, ग्राम, गोप, मेघ आदि वर्ण्यविषयो का सफल चित्रण किया है । सम्पूर्ण ४ थं सर्ग रैवतक पर्वत के वर्णन से भरा हुआ है । सूर्योदय का कैसा अनूठा वर्णन है—

'कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्ड
त्यजति मदमुलूकः प्रीतिमाञ्चक्रवाकः ।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः ॥'
(शिशुपाल-११।६४)

'कुमुदवन कान्तिहीन हो रहा है, कमलवन सुशोभित होने लगा, उल्लू प्रसन्नता का परित्याग कर रहा है, चकवा प्रसन्न हो रहा है, सूर्य उदित हो रहा है, चन्द्रमा अस्त हो रहा है । आश्चर्य है कि दुर्दैव की चेष्टाओं का परिणाम विचित्र होता है ।'

(६) ओज—माघ की भाषा में सर्वत्र ओज के दर्शन होते हैं। चाहे सवाद की भाषा हो अथवा किसी वर्ण्यविषय के वर्णन की, चाहे युद्ध का प्रसङ्ग हो अथवा शृङ्गार का, माघ की भाषा सर्वत्र पुष्ट एव स्पष्ट है।

(७) शब्दबाहुल्य—भारवि को नये-नये शब्दों के प्रयोग में अत्यधिक रुचि है। इनका शब्दभाण्डार बहुत ही विशाल एव उत्कृष्ट है। आलोचकों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि माघ के ९ सर्ग पढ डालो बस सम्पूर्ण शब्दभाण्डार का अन्त हो जायेगा—फिर कोई नया शब्द अवशिष्ट न रहेगा—'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।'

(८) सवाद—शिशुपालवध में सवादों की रोचकता, सौष्ठव, तर्कनिष्ठता तथा स्पष्टता द्रष्टव्य है।

(९) सूक्तियाँ—'शिशुपालवध' सूक्तियों का कोष है। सैकडो सूक्तियो का समुचित उपन्यास माघकाव्य की अन्यतम विशेषता है। प्रथमसर्ग की कतिपय सूक्तियाँ निम्नलिखित हैं—'श्रेयसि केन तृप्यते' (कल्याण से किसका मन भरता है? सदाभिमानैकधना हि मानिन.' (स्वाभिमानी जनों का धन सदा आत्मसम्मान ही होता है।)

'ऋते रवेः क्षालयितु क्षमेत क क्षपातमस्काण्डमलीमस नभ.' (रात्रि के अन्धकार से मलिन आकाश को धोने मे सूर्य के अतिरिक्त कौन समर्थ है?)।

(१०) दोष—शृङ्गारवर्णन कहीं कहीं मर्यादित सीमा का अतिक्रमण कर गया है। वर्णनों मे क्रम का अभाव, कहीं-कहीं भाषा का काठिन्य तथा चित्रबन्धों का प्रदर्शन खटकता है।

ससार की समग्र वस्तुओं में गुण-दोष दोनों रहते ही हैं। कतिपय दोषों के विद्यमान रहते भी सत्काव्यत्व की हानि नहीं होती।

किरातार्जुनीय एवं शिशुपालवध की तुलना

[१] 'किरातार्जुनीय' एव शिशुपालवध' दोनों ही महाकाव्यों का एक ही स्रोत—'महाभारत' है। [२] दोनो का प्रारम्भ 'श्रियः' पद से होता है। [३] 'किरात' के द्वितीय सर्ग मे युधिष्ठिर, द्रौपदी एव भीम युद्धविषयक समस्या पर विचार करते हैं और 'शिशुपालवध' के द्वितीय सर्ग में बलराम,

कृष्ण तथा उद्धव के बीच राजनीति-विषयक विचार-विमर्श होता है। [४] 'किरात' में पाण्डवों के मार्गदर्शक व्यास हैं और 'शिशुपालवध' में नारद मार्गदर्शन का कार्य करते हैं। [५] 'किरात' के १३-१४ सर्गों में दूतों में विवाद होता है और 'शिशुपालवध' के १६ वें सर्ग में ऐसा ही होता है। [६] 'किरात' के ५ वें सर्ग में हिमालय का यमक द्वारा वर्णन और 'शिशुपालवध' के ४र्थ सर्ग में 'रैवतक' पर्वत का भी यमक द्वारा ही वर्णन है। [७] दोनों महाकाव्यों में अप्सराओं, ऋतुओं, सन्ध्या, चन्द्रोदय, रात्रि आदि विषयों का वर्णन है। [८] दोनों में चित्रकाव्य का समावेश है। [९] दोनों में द्वन्द्वयुद्ध का वर्णन है। [१०] 'किरात' के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग है जबकि 'शिशुपालवध' के सर्गों के अन्तिम श्लोकों में 'श्री' शब्द का प्रयोग है।

रत्नाकर

काश्मीरी कवि रत्नाकर ने 'हरविजय' नामक महाकाव्य की रचना की है। रत्नाकर के पिता का नाम अमृतभानु था। काश्मीर के राजा चिप्पट जयापीड (७७९-८१३ ईसवी सन्) इनके आश्रयदाता थे। रत्नाकर की २ और रचनायें हैं—'वक्रोक्तिपञ्चाशिका तथा 'ध्वनिगाथापञ्जिका।'

(६) *हरविजय*—'*हरविजय*' *महाकाव्य में ५० सर्ग हैं। यह संस्कृत का* सर्वाधिक विपुलकाय महाकाव्य है। इसमें शङ्कर के द्वारा अन्धकासुर का वध कराया गया है। कथानक स्वल्प है तथा वर्ण्य-विषयों के लम्बे-चौड़े वर्णन से ग्रन्थ के कलेवर में पर्याप्त वृद्धि कर दी गई है। ललितपदों की योजना, सुष्ठु भाषा, चमत्कारी अर्थों की कल्पना, अभिनव वर्णन रत्नाकर के काव्य की विशेषतायें हैं। एक ही विषय के वर्णन में ये महाकवि दस-दस सर्गतक अपनी लेखनी को अविरत चलाते देखे जाते हैं। अन्धकवध के लिये शिवसचिवों का परामर्श ११ सर्गों में वर्णित है, शिवगणों के विहार के लिये १३ सर्ग दिये जाते हैं। शिवदूत एवं अन्धक के बीच चलने वाला संवाद ७ सर्गों में चलता है। विद्वानों की दृष्टि में माघ रत्नाकर के सामने फीके पड़ते हैं। रत्नाकर में अद्भुत पाण्डित्य है। एक अनूठी कल्पना से परिश्रम प्राप्त

कीजिये। प्रियतमों के घर जानेवाली अभिसारिकाओं का अन्धकार ने उपकार किया है। अतः कृतज्ञता को सूचित करने के लिए उन अभिसारिकाओं ने केशपाश के रूप में अन्धकार को सिर पर रख लिया है—

> 'व्यक्तोपकारमधुना स्थगितासु दिक्षु
> प्रेयोगृहं सुखमलक्षितमेव यामः।
> धम्मिल्लबन्धरुचिरैरभिसारिकाभिः
> प्रेम्णा तमश्चिरमितीव शिरोभिरूहे ॥'
> (हरविजय–१९।४३)

उक्त श्लोक 'वसन्ततिलका' वृत्त में है। रत्नाकर को 'वसन्ततिलका' छन्द अधिक प्रिय था। उनके वसन्ततिलका की प्रशंसा क्षेमेन्द्र ने इन शब्दों में की है—

> 'वसन्ततिलकारूढा वाग्वल्ली गाढसङ्गिनी।
> रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्याननकानने ॥'

हरिश्चन्द्र

'धर्मशर्माभ्युदय' नामक जैन-महाकाव्य के रचयिता हरिश्चन्द्र जाति के कायस्थ थे। इनका जन्म 'नोमक' नामक वंश में हुआ था। हरिश्चन्द्र के पिता का नाम आर्द्रदेव तथा माता का नाम रथ्यादेवी था। इनका समय ११ वी शताब्दी माना जाता है।

(१०) धर्मशर्माभ्युदय—२१ सर्गों के इस महाकाव्य में जैनों के १५ वें तीर्थङ्कर धर्मनाथ जी के चरित का विवेचन प्राप्त होता है। भाषा एवं भावा दोनों की दृष्टि से काव्य में उत्कृष्टता है। वैदर्भी रीति में लिखे गये इस काव्य में नवीन कल्पनाओं की अनुपम छटा द्रष्टव्य है। हरिश्चन्द्र का कथन है कि उत्कृष्ट काव्य का भी रस प्रत्येक व्यक्ति नहीं ले सकता। विरले सहृदय ही काव्यरस का आस्वादन करने में सक्षम होते हैं। सुन्दरी के कटाक्षों से सभी वृक्ष नहीं खिलते। वह तो तिलक वृक्ष ही है जो खिलता है—

> 'श्रव्येऽपि काव्ये रचिते विपश्चिद् कश्चित् सचेताः परितोषमेति।
> उत्कोरकः स्यात् तिलकश्चलाक्ष्याः कटाक्षभावैरपरे न वृक्षाः ॥'
> [धर्मशर्माभ्युदय–१।१७]

पद्मगुप्त

संस्कृत के सर्वप्रथम ऐतिहासिक महाकाव्य 'नवसाहसाङ्कचरित' के रचयिता पद्मगुप्त पहले वाक्पतिराज मुञ्ज के सभा-कवि थे और तत्पश्चात् मुञ्ज के पुत्र सिन्धुराज (नवसाहसाङ्क) के आश्रय में रहे। नवसाहसाङ्कचरित में राजकुमारी शशिप्रभा के विवाह का वर्णन किया गया है। इनका समय १० वीं तथा ११ वीं शताब्दी का सन्धिकाल है।

(११) नवसाहसाङ्कचरित—इस महाकाव्य का रचनाकाल लगभग १००५ ईसवी सन् है १८ सर्गों के इस महाकाव्य में सिन्धुराज एवं राजकुमारी शशिप्रभा के विवाह का वर्णन है। कथानक छोटा होने पर भी विविध विषयों के वर्णनों का विस्तार करके ग्रन्थ को महाकाव्य का रूप प्रदान किया गया है। वैदर्भी रीति, प्रसाद एवं माधुर्य गुण, अलङ्कृत शैली, वर्णनानैपुण्य पद्मगुप्त के काव्य की विशेषताएँ हैं। मम्मट जैसे आचार्य काव्य प्रकाश में विषमालङ्कार के उदाहरण के रूप में पद्मगुप्त का एक श्लोक उद्धृत करते हैं इसी से पद्मगुप्त के काव्यसौष्ठव, लोकप्रियता एवं प्रसिद्धि की सिद्धि होती है। राजा की काली तलवार से शुभ्र यश के उद्भूत होने का चमत्कारी वर्णन पद्मगुप्त इस प्रकार करते हैं—

'सद्यः करस्पर्शमवाप्य चित्रं रणे रणे यस्य कृपाणलेखा।
तमालनीला शरदिन्दुपाण्डु यशस्त्रिलोक्याभरणं प्रसूते॥'

(अभिप्राय—तमाल के सदृश श्यामवर्ण तलवार राजा के हाथ के स्पर्श से शरत्कालीन चन्द्रमा के समान तीनों लोकों में सुन्दर लगनेवाले शुभ्र यश को उत्पन्न कर रही है।)

बिल्हण

बिल्हण ने 'विक्रमाङ्कदेवचरित' नामक ऐतिहासिक काव्य लिखा है। इसके १८ वें सर्ग में कवि ने अपना परिचय विस्तार से प्रस्तुत किया है। इनके प्रपितामह का नाम मुक्तिकलश, पितामह का नाम राजकलश, पिता का नाम ज्येष्ठकलश तथा माता का नाम नागादेवी था।' आश्रयदाता की खोज में

काश्मीर से निकले हुए विल्हण मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, काशी आदि स्थानों से होकर दक्षिण भारत के 'कल्याण' नामक नगर में पहुँचे। वहाँ चालुक्य-वंशीय प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य षष्ठ (१०७६–११२७ ई०) से मिले। राजा ने इनका यथेच्छ सत्कार किया। विल्हण इन्हीं के आश्रय में रहने लगे।

(१२) विक्रमाङ्कदेवचरित—इस महाकाव्य में १८ सर्ग हैं जिनमें बिल्हण के आश्रयदाता विक्रमादित्य एवं उनके वंश का विस्तृत वर्णन किया गया है। ऐतिहासिक घटनाओं का सविवरण निर्देश करने के कारण यह ग्रन्थ चालुक्यवंशीय राजाओं के इतिहास जानने का साधन बन गया है। वैदर्भी रीति में लिखे गये इस ग्रन्थ में प्रसाद एवं माधुर्यगुणों का सन्निवेश हुआ है। वीररस प्रधान है। शृङ्गार एवं करुण नितान्त रोचक हैं। विल्हण कवियों के समादर के पक्षपाती थे। ये तो कविलोग ही हैं जो किसी के व्यक्तित्व को चिरस्थायी रखते हैं। राम के प्रमरणशील यश एवं रावण के अपयश के विस्तार के कारण तो एक कवि-वाल्मीकि ही हैं—

'लङ्कापतेः सङ्कुचितं यशो यत् यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः।
स सर्व एवादिकवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः॥'

जिन लोगों ने साहित्यविद्या के अर्जन में श्रम नहीं किया है भला वे कवियों के गुणों को क्या समझेंगे? अङ्गनाओं के केश भीगे न होने पर भी क्या अगरु की धूप से सुगन्धित हो सकते हैं?

'कुण्ठत्वमायाति गुणः कवीनां साहित्यविद्याश्रमवर्जितेषु।
कुर्यादनार्द्रेषु किमङ्गनानां केशेषु कृष्णागुरुधूपवासः॥'

कुछ लोग तो काव्य के प्रशस्त गुणों पर ध्यान ही नहीं देते। उन्हें तो काव्य के दोषमात्र ही दिखलाई पड़ते हैं। केलिवन में जाकर भी ऊँट काँटों की ही खोज में रहता है—

'कर्णामृतं सूक्तिरसं विमुच्य दोषे प्रयत्नः सुमहान् खलानाम्।
निरीक्षते केलिवनं प्रविष्टः क्रमेलकः कण्टकजालमेव॥'

कल्हण

कल्हण ने 'राजतरङ्गिणी' नामक काव्य की रचना की है। ये काश्मीरी ब्राह्मण थे। इनके गुरु का नाम अलकदत्त था। इनके पिता का

नाम चपणक था जो महाराज हर्ष [१०८६-११०६] के राजनैतिक सचिव थे।

(13) राजतरङ्गिणी—ऐतिहासिक काव्यो मे 'राजतरङ्गिणी' सर्वश्रेष्ठ है। इसमे ऐतिहासिक घटनाओ का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसमे काश्मीर के उन सभी राजाओ के शासनकाल की घटनाओ का क्रमिक विवरण प्राप्त होता है जिनका समय 1151 ईसवी सन् तक है। पूरे ग्रन्थ का विभाजन ८ खण्डो मे किया गया है। इस ग्रन्थ की रचना काश्मीर के राजा जयसिंह (११२७ ११४९) के राज्यकाल मे की गई।

'राजतरङ्गिणी' ऐतिहासिक ग्रन्थ होने पर भी काव्यगुणो से ओत-प्रोत है। घटनाओ के वर्णन से सहृदय पाठक उद्विग्न नही होता अपितु मनोरञ्जक उपन्यास के सदृश रस का आस्वादन करता है। जहाँ कल्हण घटनाओ के सूक्ष्म निरूपण और आश्रयदाता हर्ष के घोर अत्याचार का उल्लेख करके सच्चे इतिहासनिर्माता के धर्म का निर्वाह करते हैं वही कल्पना, रस, अलकार एव भावो के मनोज्ञ सन्निवेश द्वारा पाठको को आनन्दित भी करते हैं। कल्हण की दृष्टि मे प्रशसनीय कवि वही है जो रागद्वेष से परे होकर अपने काव्य की रचना करे—

'श्लाघ्य. स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती॥'

वैसे सम्पूर्ण ग्रन्थ 'अनुष्टुप्' छन्द मे लिखा है किन्तु यत्र-तत्र अन्य छन्दो का भी प्रयोग हुआ है। राजतरङ्गिणी से प्रभावित होकर बाद मे बहुत से ऐतिहासिक ग्रन्थो की रचना की गई, जिनमें मुख्य हैं—जैन मुनि हेमचन्द्र का 'कुमारपालचरित' (द्वयाश्रय काव्य), जयानक द्वारा लिखा हुआ 'पृथ्वीराजविजय', सोमेश्वरप्रणीत 'कीर्तिकौमुदी' तथा 'सुरथोत्सव' एव सन्ध्याकरनन्दिन् का 'रामपालचरित'।

कल्हण का काव्य अतीव मर्मस्पर्शी है। जिसने भूख से तड़पते अपने पुत्र को, दूसरे के घर जाकर सेवा करती हुई पत्नी को, आपत्तिग्रस्त मित्र को, दूध देने वाली उस गाय को जो चारा न मिलने से चिल्ला रही हो, पथ्य न मिलने के कारण मरणासन्न माता पिता को तथा पराजित स्वामी को देख लिया हो भला उसे नरक मे इससे अधिक अप्रिय क्या देखने को मिल सकता है?—

क्षुत्क्षामस्तनयो वधूः परगृहप्रेष्यावसन्नः सुहृद्
दुग्धा गौरशनाद्यभावविवशा हम्बारवोद्गारिणी।
निष्पथ्यौ पितरावदूरमरणौ स्वामी द्विषन्निर्जितो
दृष्टो येन परं न तस्य निरये प्राप्तव्यमस्त्यप्रियम्॥'

श्रीहर्ष

प्रसिद्ध महाकाव्य 'नैषधीयचरित' या नैषध के रचयिता श्रीहर्ष कन्नौज के राजा जयचन्द्र राठौर के सुसम्मानित कवि थे। श्रीहर्ष का समय १२ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है क्योंकि जयचन्द्र राठौर का शासनकाल ईसवी सन् ११६६ से ११९५ तक रहा है। ये श्री हर्ष उन राजा हर्ष या हर्षवर्धन से भिन्न हैं जिनकी रचनायें 'रत्नावली', नागानन्द' एवं 'प्रियदर्शिका' नामक नाटिकायें हैं। नैषधीयचरित के अतिरिक्त हर्ष की अन्य रचनायें हैं—स्थैर्यविचारणप्रकरण, विजयप्रशस्ति, खण्डनखण्डखाद्य, अर्णववर्णन, गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति, छिन्दप्रशस्ति, नवसाहसाङ्कचरितचम्पू तथा शिवशक्तिसिद्धि। 'नैषधीयचरित' से पता चलता है कि इनके पिता का नाम श्री हीर एवं माता का नाम मामल्लदेवी था।

(१४) नैषधीयचरित—२२सर्गों के इस महाकाव्य में नल एवं दमयन्ती के प्रेम एवं विवाह की कथा का सरस शैली में वर्णन किया गया है। महाकाव्य के सौष्ठव को देखकर विद्वज्जनों ने यह सत्य ही कहा है कि नैषधीयचरित के आगे भारवि एवं माघ फीके पड़ गये—'उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः'।

नैषध का कथानक संक्षेप में इस प्रकार है—प्रारम्भ में राजा नल के मृगयाविहार तथा हंस के पकड़ने एवं छोड़ देने का वर्णन है। हंस दमयन्ती से नल के गुणों की प्रशंसा करती है। दमयन्ती नल के गुणों से आकृष्ट होकर उसका वरण करने का निश्चय कर लेती है। स्वयंवर रचा जाता है। दमयन्ती के गुणों से लुब्ध इन्द्र, वरुण, यम एवं अग्नि ये देवता भी नल का रूप धारण करके स्वयंवर में उपस्थित हो जाते हैं। नल की आकृति वाले पाँच व्यक्तियों को देखकर दमयन्ती वास्तविक नल को न समझने के कारण शोकविह्वल हो जाती है, किन्तु अपने दृढ़निश्चय को नहीं छोड़ती। दमयन्ती

के निश्चय को देखकर देवता प्रसन्न हो जाते हैं और अपने रूप को प्रकटकर देते हैं। दमयन्ती नल का वरण करती है। स्वर्ग वापस जाते समय देवता कलि से वाग्युद्ध करके नास्तिकवाद की धज्जी उड़ाते हैं। दमयन्ती एवं नल के प्रथम रात्रिमिलन के साथ ग्रन्थ का मधुर समापन हो जाता है।

श्रीहर्ष के काव्य की विशेषताएँ

नैषध भाषा एवं भाव दोनों दृष्टियों से एक अतीव उत्कृष्ट महाकाव्य है। कुछ अर्थों में यह संस्कृत साहित्य का बेजोड़ महाकाव्य है।

इस महाकाव्य मे वीर, करुण, हास्य, अद्भुत, रौद्र, वीभत्स, भयानक सभी रसो का आस्वादन करने को मिलता है। नूतन कल्पना देखिये। जब राहु ने चन्द्रमा की सुधा को जबरदस्ती पी जाने के भय से दु खी कर दिया तो सुधा ने चन्द्रमा को छोड़ तुम्हारे (दमयन्ती के) ताम्बूल के समान लाल रङ्ग वाले अधर मे आ बसी ताकि वह अपनी सफेदी अधर की लालिमा में छिपा सके—

> 'स्वर्भानुना प्रसभपानविभीपिकाभि-
> दु खाकृतैनमवधूय सुधा सुधांशुम्।
> स्व निम्ह ते शितिमचिन्हममुष्य रागै—
> स्ताम्बूलताम्रमवलम्ब्य तवाधरोष्ठम्॥'
> (नैषधीय० २२।१३८)

नैषध मे रस एवं अलङ्कारो का अनूठा सन्निवेश है। भाव एवं कल्पना म अलङ्कारों के कारण मन्दता नही आ सकी है। शब्द एवं अर्थ की विचित्र मैत्री चमत्कार उत्पन्न करती है। अनुप्रास की शोभा, श्लेष की अपूर्व छटा, पञ्चनलीउपाख्यान, अभूतपूर्व कल्पनायें, पदों का लालित्य, अर्थ का गाम्भीर्य, पाण्डित्य का चमत्कार, सम्वाद का सौष्ठव, वर्णन की विशदता—सब मिल-कर हर्ष को महाकवियों के बीच मे भी उच्च आसन प्रदान करते हैं। खण्डन-खण्डखाद्य जैसे वेदान्त के प्रौढ ग्रन्थ के रचयिता की अद्भुत कल्पना को संस्कृत का कोई दूसरा कवि नहीं पा सका है इस बात को बिना सकोच कहा जा सकता है। कल्पना के धनी श्री हर्ष कहते हैं कि नल की दानशीलता को भला कल्पवृक्ष क्यों कर पा सकता है? कल्पवृक्ष तो बिना मांगे नही देता

और नल बिना माँगे ही दे देते हैं। किसी याचक के मस्तक पर ब्रह्मा ने स्पष्ट लिख दिया था कि 'यह (व्यक्ति) दरिद्र होगा' किन्तु नल ने न तो ब्रह्मा के वचन को ही मिथ्या किया और न आगत दरिद्र को धनहीन ही रहने दिया। बस, उन्होंने 'दरिद्रता का' इतना मात्र बढ़ा दिया। अब वह व्यक्ति दरिद्र तो है। किन्तु दरिद्रता का ही, धन का नहीं—

'अयं दरिद्रो भवितेति वैधसीं लिपिं ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।
मृषा न चक्रेऽल्पितकल्पपादपः प्रणीय दारिद्र्यदरिद्रतां नृपः॥'
(नैषधीय०—१।१५)

यमक अलंकार द्वारा कामदेव की स्तुति महाकवि ने इस प्रकार की है—

'लोकेशकेशवशिवानपि यश्चकार
शृंगारसान्तरमृशान्तरशान्तभावान्।
पञ्चेन्द्रियाणि जगतामिषुपञ्चकेन
संक्षोभयन् वितनुतां वितनुर्मदं वः॥'
(नैषधीयचरित—११।२५)

नल के द्वारा निगृहीत हंस अपने प्राण संशय में देख इस प्रकार विलाप करने लगा—अपनी वृद्धा माता का मैं अकेला पुत्र हूँ। बेचारी पत्नी नवप्रसूता ही है। बच्चे अभी बहुत ही छोटे हैं। यदि मेरे वियोग में मेरी पत्नी ने भी प्राण त्याग दिये तो क्या होगा? पत्नी को सम्बोधित करके कहता है—

'तवापि हाहा विरहात् क्षुधाकुलाः कुलायकूलेषु विलुठ्य तेषु ते।
चिरेण लब्धा बहुभिर्मनोरथैर्गताः क्षणेनास्फुटितेक्षणा मम॥'
(नैषधीय०—१।१४१)

'हा प्रिये! बहुत मनोरथों से चिरकाल में प्राप्त मेरे पुत्र, जिनकी आँखें भी अभी नहीं खुली हैं, तुम्हारे विरह में भूख से तड़प-तड़प कर क्षण भर में ही घोंसले के किनारे लोटकर मर जायेंगे।

नैषध में दोष—कहीं-कहीं अनावश्यक विस्तार, पुनरुक्ति, कृत्रिमता, सम्पूर्ण कथानक का अभाव, चरित्र-चित्रण का शैथिल्य, दुरूह कल्पना, श्लेष का काठिन्य, अनेकार्थ श्लोकों की रचना आदि दोष नैषध में प्राप्त होते हैं तथापि गुणसमवाय को देखते हुए दोषों को नगण्य समझकर 'नैषधीयचरित' को 'बृहत्त्रयी' में स्थान दिया गया है।

क्षेमेन्द्र

क्षेमेन्द्र ने साहित्य की अनेक विधाओं में बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं। इनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था। काश्मीर इनका जन्मस्थान है। इनके पितामह का नाम सिन्धु एवं पिता का नाम प्रकाशेन्दु था। इनके पिता अतीव दानी उदार एवं धार्मिक प्रवृत्ति के थे। क्षेमेन्द्र के साहित्यगुरु आचार्य अभिनवगुप्त थे। अभिनवगुप्त अलौकिक प्रतिभासम्पन्न आचार्य थे जिनके तन्त्र शैवदर्शन एवं साहित्यशास्त्र के ग्रन्थ संस्कृत साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। ऐसे योग्य गुरु से साहित्य विद्या का अध्ययन करनेवाले विद्वान् क्षेमेन्द्र में यदि प्रकृष्ट पाण्डित्य हो तो आश्चर्य की बात नहीं। क्षेमेन्द्र के काल में अनन्त एवं कलश नामक काश्मीर नरेश वर्तमान थे।

क्षेमेन्द्र-द्वारा लिखित प्रमुख ग्रन्थ ये हैं—रामायणमञ्जरी, भारतमञ्जरी, बृहत्कथामञ्जरी, बोधिसत्त्वावदानकल्पलता, दशावतारचरित, चारुचर्या, कलाविलास, चतुर्वर्गसंग्रह, नीतिकल्पतरु, समयमातृका, सेव्यसेवकोपदेश।

क्षेमेन्द्र केवल विद्वान् ही न थे उन्हें संसार की गति-विधियों का सम्यक् ज्ञान था। सांसारिक प्रलोभनों से व्यक्तियों की रक्षा करने के निमित्त इन्होंने नीतिमय ग्रन्थों की रचना की है। ये अपना पाण्डित्य नहीं दिखलाते। सरल एवं सरल भाषा में अपने वक्तव्य विषय का प्रकाशन करते हैं। भाषा में माधुर्य एवं सहज प्रवाह है। एक उदाहरण देखिये—

'क्रौर्येण कीर्तिर्व्यसनेन लक्ष्मी द्वेषेण विद्या विनतिर्मदेन।
क्षमातिकोपेन धृतिर्भयेन प्रयाति लोभेन च सर्वमेव॥'

(दशावतारचरित परशुरामावतार–१८)

'क्रूरता से यश, व्यसन से धन, द्वेष से विद्या, घमण्ड से नम्रता, अत्यधिक क्रोध से क्षमा, भय से धैर्य और लोभ से सब (गुण) नष्ट हो जाते हैं।'

———

अध्याय ४

नाटक

नाटक 'रूपक' का एक प्रभेद है।[1] प्रस्तुत अध्याय में 'नाटक' शब्द अपने सङ्कुचित अर्थ में प्रयुक्त होने के साथ ही साथ यथास्थान अन्य रूपक-विधाओं एवं उपरूपकविधाओं के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। नाटक का साहित्य में प्रमुख स्थान है—'काव्येषु नाटकं रम्यम्'। यहाँ प्रेक्षक पात्रों द्वारा क्रियमाण अभिनय का दर्शन करता है। नाटक में नृत्य, वाद्य, सङ्गीत, अभिनय, सबका समावेश रहता है। यही कारण है कि पृथक्-पृथक् रुचिवाले व्यक्ति नाटक के रस का आस्वादन करते या कर सकते हैं—'नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्'। नाटक ऐसा काव्य है कि इसमें प्रत्येक ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग एवं कर्म का सन्निवेश हुआ रहता है—

'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥'(नाट्यशास्त्र)

संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति—(१) दैवी उत्पत्ति—भरत ने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि एक बार देवगण ब्रह्मा के समीप गये और प्रार्थना की कि वे ऐसे वेद का निर्माण करें जिसके द्वारा वेदश्रवण के अनधिकारी शूद्र एवं स्त्रीजन भी अपना मनोरञ्जन कर सकें। ब्रह्मा राजी हो गये। उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लिया और 'नाट्यवेद' नामक पञ्चमवेद की रचना कर दी—

'जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥' (नाट्यशास्त्र-१।१७)

---

१. रूपकों की संख्या १० है—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क, वीथी तथा प्रहसन। १० रूपकों के अतिरिक्त १८ उपरूपक भी होते हैं—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश, तथा भाणिका। थोड़े थोड़े अन्तर के साथ ये सब नाटक के समान ही होते हैं।

(२) वीरपूजासिद्धान्त—पाश्चात्य विद्वान् डॉ० रिजवे ने अपनी पुस्तक '*Drama and Dramatic Dances of non-European Races*' में लिखा है कि नाटकों की उत्पत्ति दिवंगत पुरुषों के प्रति आदरभाव दिखलाने के लिए हुई है। रामलीला एवं कृष्णलीला से इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है। डॉ० रिजवे के इस सिद्धान्त को प्रश्रय नही मिला।

(३) प्रकृतिपरिवर्तन सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के जनक हैं डॉ० कीथ। इनके अनुसार प्राकृतिक परिवर्तन को मूर्तरूप देने की इच्छा से नाटकों का जन्म हुआ। हेमन्तऋतु के पश्चात् वसन्तऋतु का आना एक प्राकृतिक परिवर्तन है। इसी विषय का मूर्तरूप 'कंसवध' नाटक मे पाया जाता है। कंस-पक्ष के लोग काले मुख और कृष्णपक्ष के लोग लाल-मुख रखते थे 'कंसवध' नाटक हेमन्त पर वसन्त की विजय का प्रतीक है। कीथ महाशय का यह मत विश्वसनीय नही है।

(४) पुत्तलिकानृत्य-सिद्धान्त—डॉ० पिशल नाटकों की उत्पत्ति पुत्तलिका-नृत्य *(पुतलियों के नृत्य)* से मानते हैं। पुतलियों मे बंधे सूत्र (डोरा) को पकड (धारण) कर दर्शक पुतली के नृत्य को दिखलाता है। नाटक मे भी 'सूत्रधार' होता है जो नाटक का सञ्चालन करता है। पुत्तलिकानृत्य की उद्भवभूमि भारत है जहाँ से वह संसार मे फैला। डॉ० पिशल का यह मत भी समीचीन नही माना जाता है। यह तो सत्य है कि पुत्तलिकानृत्य की जन्मभूमि भारत है और यही से यह कला अन्य देशो मे संक्रान्त हुई किन्तु इसका अर्थ यह नही कि पुत्तलिकानृत्य से नाटको की उत्पत्ति हुई है।

(५) छायानाटक सिद्धान्त—इस मत के जन्मदाता हैं—डॉ० पिशल और समर्थक हैं डॉ० लूडर्स एवं डॉ० कोनो। संस्कृत में प्राप्त छायानाटक—'दूता-ङ्गद' अधिक प्राचीन नही है कि उसके आधार पर नाटक की उत्पत्ति मान ली जाये, अतः यह सिद्धान्त सर्वथा निराधार है।

(६) मे-पोल—*नृत्य-सिद्धान्त*—जिस प्रकार पाश्चात्य देशों में मई के महीने में एक खम्भे को गाडकर उसके नीचे स्त्री-पुरुषगण आनन्दपूर्वक नृत्य करते हैं उसी प्रकार भारत का 'इन्द्रध्वज' नामक उत्सव था। परन्तु 'इन्द्र-ध्वज' उत्सव का रूप 'मे-पोल नृत्य' से सर्वथा भिन्न रहा है अतएव उससे नाटक की उत्पत्ति मानना भ्रम है।

(७) सवादसूक्त-सिद्धान्त—ऋग्वेद में बहुत से ऐसे सूक्त हैं जिनमें सवाद (एकाधिक वक्ताओ की बातचीत) प्राप्त होता है। इन्ही से नाटको की उत्पत्ति हुई होगी। ऋग्वेद के पुरुरवा उर्वशी के सवाद से कालिदास को 'विक्रमोर्वशीय नाटक लिखने की प्रेरणा मिली होगी। डॉ० श्रोदर का मत है कि इन सवादसूक्तो का अभिनय नृत्य, गीत एव वाद्य के साथ किया जाता होगा।

संस्कृत नाटक

सस्कृत मे प्राप्त प्राचीनतम नाटक भासरचित हैं। भास कालिदास के पूर्ववर्ती हैं। सस्कृत का सर्वश्रेष्ठ नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तल' कालिदास की रचना है। इसके अनन्तर बहुत से नाटकों की रचना हुई जिनका संक्षिप्त विवरण इस अध्याय मे किया जायेगा। भास के पूर्व भी अनेक नाटक लिखे गये थे जिनका सकेत हमे पूर्ववर्ती ग्रन्थों मे मिलता है। महाभारत मे रङ्गशाला का उल्लेख तथा 'नट' शब्द का प्रयोग हुआ है। हरिवश मे एक नाटक के अभिनीत होने का उल्लेख है। रामायण मे 'नाटक' 'नट' आदि शब्दो का उल्लेख है। पाणिनि (ई०पू० ४थी शताब्दी) ने 'नटसूत्र' शब्द का प्रयोग करके नाट्यशास्त्र का परिचय दिया है। पातञ्जल महाभाष्य मे तो *'कसवध' एव 'वलिबन्ध' सज्ञक दो नाटकों का उल्लेख हुआ है।* परन्तु जैसा पूर्व निर्देश किया जा चुका है प्राप्त रचनाओं के आधार पर भास सस्कृत के प्रथम नाटककार हैं।

१. भास

सन् १९०९ से पूर्व भास की कोई भी कृति प्राप्त न थी। अन्य कवियों की रचनाओं मे भास, उनकी कृतियों के नाम तथा उनके एक आध उद्धरणों का उल्लेखमात्र था किन्तु सन् १९०९ ईसवी में महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने त्रावणकोर में भास के १३ नाटकों की खोज निकाला। अधिकाश विद्वान् इन नाटको को भास की रचना मानते हैं तथापि कतिपय ऐसे विद्वान् भी हैं जिन्हें इन नाटकों को भासकृत मानने में आपत्ति है। अतएव यह एक समस्या या विवाद है कि ये नाटक भासकृत हैं अथवा नहीं। इसी को 'भासविषयक समस्या'—(Bhasa problem) या 'भासविषयक विवाद' कहा जाता है।

भासविषयक समस्या

(क)—जो विद्वान्[1] भास के नाम से प्रसिद्ध सभी १३ नाटकों को एक ही व्यक्ति—भास की रचनायें मानते हैं वे निम्नलिखित युक्तियाँ उपस्थित करते हैं— (१) सभी नाटकों ('चारुदत्त' को छोड़कर) का प्रारम्भ 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' इस नाटकीय निर्देश से होता है। (२) सभी नाटकों (कर्णभार को छोड़कर) प्रस्तावना के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग हुआ है। (३) प्रायः सभी नाटकों का भरत वाक्य एक जैसा है (४) सभी नाटकों का आकार लघु है। (५) सभी की भाषा एवं शैली एक जैसी है। (६) इन नाटकों में भरत के नाट्यशास्त्र के नियमों का उल्लङ्घन हुआ है। रङ्गमञ्च पर युद्ध मृत्यु आदि दिखलाना सर्वथा वर्जित है तथापि 'प्रतिमानाटक' में दशरथ की, 'ऊरुभङ्ग' में दुर्योधन की तथा 'अभिषेक' में बालि की मृत्यु रङ्गमञ्च पर ही दिखलाई गई है। इसी प्रकार कंस, चाणूर और मुष्टिक का वध रङ्गमञ्च पर ही प्रदर्शित है। (७) 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' तथा 'दूतवाक्य' दोनों नाटकों के कञ्चुकी का एक ही नाम—बादरायण है। इसी प्रकार 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्न वासवदत्त, अभिषेक एवं प्रतिमानाटक इन चारों में प्रतिहारी का नाम विजया है। (८) नाटक के नाम का उल्लेख ग्रन्थ के अन्त में किया गया है (९) किसी भी नाटक में ग्रन्थ के रचयिता का नाम नहीं मिलता। (१०) छन्दों की विविधता होने पर भी प्रायः सभी नाटकों के छन्दों में साम्य है। (११) अनेक नाटकों में समान वाक्य पाये जाते हैं। (१२) अनेक विचारों एवं भावों को पुनः दूसरे शब्दों में निबद्ध करके पुनरुक्ति की गई है। (१३) अनेक अपाणिनीय प्रयोग प्राप्त होते हैं। (१४) १३ में से ५ नाटकों के प्रारम्भिक पद्यों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग किया गया है जिसमें देवस्तुति के साथ ही साथ प्रमुख पात्रों का उल्लेख हुआ है। (१५) सभी नाटकों में चित्रित समाज प्रायः एक जैसा है।

१—कीथ तथा डॉ० ए० डी० पुसालकर आदि विद्वान् इन नाटकों को भासकृत मानते हैं।

(ख) जो विद्वान् इन नाटकों को भासकृत नहीं मानते उनकी युक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) १२ वीं शताब्दी मे रामचन्द्र एवं गुणचन्द्र के द्वारा लिखित 'नाट्यदर्पण' सज्ञक ग्रन्थ मे 'स्वप्नवासवदत्ता' को भासरचित बतलाकर जिस श्लोक को उद्धृत किया गया है वह 'स्वप्नवासवदत्त' नाटक में नहीं प्राप्त होता है। (२) ध्वन्यालोक की 'लोचन' सज्ञक अपनी टीका मे अभिनवगुप्त ने एक आर्या को उद्धृत किया है। उसे 'स्वप्नवासवदत्त' की आर्या बतलाया गया है। किन्तु प्राप्त 'स्वप्नवासवदत्त' नाटक में उस आर्या के दर्शन नहीं होते। अतएव प्राप्त 'स्वप्नवासवदत्त' भास की रचना नहीं हो सकती और इसलिए अन्य १२ नाटक भी भास की रचना नही हो सकते। (३) 'मत्तविलास' नामक प्रहसन मे प्राप्त एक पद्य को सोमदेव (९५९ ईसवी सन्) ने भासकृत माना है किन्तु वह भास की कृतियों मे प्राप्त नही होता। मत्तविलास तथा इन तेरहों नाटकों मे मङ्गलश्लोक के पूर्व ही 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधार' वाक्य का प्रयोग मिलता है अतएव जिस प्रकार 'मत्तविलास' भास की रचना नहीं है उसी प्रकार से सभी नाटक भी भास की रचनायें न होकर अन्य किसी केरल कवि की होगी। (४) इन नाटकों की उपलब्धि केरल मे हुई है। केरल के नटो ने, जिन्हें चाक्यार कहा जाता रहा है इन ग्रन्थो की रचना की होगी। (५) केरल के चाक्यार नामक नट अभिनय की उपयुक्तता के लिए बडे नाटकों को लघुरूप भी देते थे अर्थात् सक्षिप्त कर लेते थे। अधिक सभव है कि भास के नाटकों को इन चाक्यारो ने सक्षिप्त कर लिया हो। प्राप्त १३ नाटक चाक्यारो द्वारा सक्षिप्त नाटक ही होगे। भास के नाम का उल्लेख करके विभिन्न ग्रन्थो में प्राप्त उद्धरणो के इन १३ नाटकों में न मिलने का यही कारण है कि चाक्यारो द्वारा सक्षिप्त किए जाने मे वे अंश छाड दिए गए होंगे।

अधिकांश विद्वान् इन १३ नाटकों को भासकृत ही मानने के पक्ष में हैं।

भास का समय—भास निश्चितरूप से कालिदास के पूर्ववर्ती हैं क्योंकि कालिदास ने अपने नाटक 'मालविकाग्निमित्र' म भास का नामोल्लेख उल्लेख किया है—

'प्रथितयशसा भाससौमिल्लकविपुत्रादीना प्रबन्धानतिक्रम्य ..',[1]

जहाँ कुछ विद्वान् भास का समय ईसापूर्व ४थे शताब्दी मानते हैं वहीं दूसरे ईसा की १० वीं शताब्दी। जिन विद्वानो ने कालिदास को गुप्तकालीन माना है उनके मत मे भास का समय ईसा की तीसरी अथवा चौथी शताब्दी है। कुछ विद्वानो का यह मत है कि विवादास्पद १३ नाटक उन भास कवि की रचना नही है जिनका उल्लेख कालिदास, बाण आदि कवियो ने किया है। इन १३ नाटको का कर्ता यदि 'भास' है तो अवश्य ही यह कोई दूसरा भास होगा।

'मृच्छकटिक' नाटक की रचना भासकृत 'चारुदत्त' नाटक के अनुकरण पर की गई है। मृच्छकटिक के कर्तृत्व से सम्बद्ध शूद्रक का राज्य २२०–१९७ ईसवी पूर्व निश्चित हो चुका है अत 'चारुदत्त' नाटक के प्रणेता भास का समय २२० ईसापूर्व से भी पूर्व है भास ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का उल्लेख न करके 'प्रतिमा' नाटक मे बृहस्पति के अर्थशास्त्र का उल्लेख किया है और कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे भासकृत 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' का एक श्लोक प्राप्त होता है अतएव भास कौटिल्य (ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी) से पूर्ववर्ती हैं। अपाणिनीय प्रयोग भी भास को प्राचीन सिद्ध करते हैं। भास के नाटको मे जिस समाज को चित्रित किया गया है वह कम से कम ईसा की चतुर्थ शताब्दी से पूर्व का है। अधिक सभव है भास का समय ईसापूर्व पञ्चम शताब्दी हो।

भास के नाटक : संक्षिप्त परिचय

भासकृत १३ नाटक ये हैं-उदयन की कथा पर आश्रित–(१)प्रतिज्ञायौगन्धरायण (२) स्वप्नवासदत्त। काल्पनिक—(१) चारुदत्त (२) अविमारक। भागवत पर आधृत–बालचरित। रामकथा पर आश्रित—(१) प्रतिमा (२) अभिषेक। महाभारत पर आधृत—(१) पञ्चरात्र (२) मध्यमव्यायोग (३) दूतघटोत्कच (४) कर्णभार (५) दूतवाक्य (६) उरुभङ्ग।

१-'भाससौमिल्लकादीनाम्' पाठ शुद्ध नहीं प्राप्त होता है।

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इस नाटक का कथानक 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक के कथानक का पूर्वार्ध भाग जैसा है। इसमे चार अङ्क हैं। वत्सराज उदयन एक नीलवर्ण हाथी के आखेट के लिए 'नाग' बन जाता है। यह हाथी कृत्रिम है। इसमें प्रद्योत नामक उज्जयिनी के राजा के सैनिक प्रच्छन्न रूप मे बैठे थे। वे उदयन को बन्दी बनाकर प्रद्योत (जिसका दूसरा नाम महासेन भी है) के समीप ले जाते हैं। उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण का उदयन के बन्दी बना लिए जाने की सूचना प्राप्त होती है। यौगन्धरायण उदयन को शत्रु के चंगुल से शीघ्र ही मुक्त करने की प्रतिज्ञा करता है। इसलिये इस नाटक का नाम 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' पड़ा।

यौगन्धरायण उन्मत्त के वेश मे और उदयन का एक दूसरा मन्त्री—रुमण्वान् श्रमणक (सन्यासी) के वेश मे उज्जयिनी मे दिखलाई पडते हैं। उदयन का विदूषक—वसन्तक भी इनकी सहायता करने के लिए उपस्थित है। उदयन प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता के प्रति आसक्त है और बिना वासवदत्ता को लिए वह उज्जयिनी से नहीं जाना चाहता। उदयन अवसर पाते ही वासवदत्ता को लेकर भाग निकलता है। यौगन्धरायण प्रद्योत द्वारा बन्दी बना लिया जाता है। प्रद्योत एव प्रद्योत की पत्नी वासवदत्ता एव उदयन के पति-पत्नी सम्बन्ध को अनुमोदित करते हुए चित्रफलकों द्वारा दोनो का विवाह कर देते हैं।

(२) स्वप्नवासवदत्ता—इसे भास का सर्वश्रेष्ठ नाटक कहा जा सकता है। इसम ६ अङ्क हैं। तात्कालिक राजनीति के अनुसार मगध के राजा दर्शक की सहायता से यौगन्धरायण उदयन के विरोधियों को परास्त करना चाहता है। यौगन्धरायण यह झूठी खबर फैला देता है कि वासवदत्ता अग्नि मे जल गई किन्तु छल से वासवदत्ता को दर्शक की कुमारी भगिनी पद्मावती के पास निक्षेपरूप मे छोड़ देता है। उदयन पत्नीवियोग में दु:खी रहता है। मन्त्री उसका विवाह पद्मावती से करवा देता है। वासवदत्ता सब कुछ जानती हुई भी पति एव राज्य के कल्याण के लिये इस सपत्नीभाव को भी सहन कर लेती है। बाद मे वासवदत्ता पद्मावती आदि सब का मिलन होता है और सभी आनन्दित होते हैं।

(३) चारुदत्त—इसे 'दरिद्रचारुदत्त' भी कहते हैं। इसमें ४ अङ्क प्राप्त होते हैं। विद्वानों का मत है कि यह नाटक अपूर्ण है तथा इसी को आधार बनाकर शूद्रक ने अपना 'मृच्छकटिक' नामक नाटक (प्रकरण) लिखा। निर्धन किन्तु गुणवान् ब्राह्मण चारुदत्त के प्रति लोभशून्या वेश्या वसन्तसेना आकृष्ट हो जाती है। इनके प्रणय का चित्रण इस नाटक मे है। कथानक की दृष्टि से यह नाटक अतीव उत्कृष्ट है। इसमे तात्कालिक समाज का चित्रण बखूबी किया गया है। इस नाटक मे सर्वाधिक प्राकृतो का प्रयोग किया गया है। भाषा सरल है।

(४) अविमारक—इसमे ६ अङ्क है। नायक है राजकुमार अविमारक और नायिका है राजकुमारी कुरङ्गी। इन दोनों के प्रेम एव विवाह का चित्रण इस नाटक मे किया गया है।

(५) बालचरित—५ अङ्कों के इस नाटक का विषय कृष्ण की लीलायें हैं, यथा—कृष्ण के जन्म से सम्बन्धित अलौकिक घटनायें, कस की क्रूरता, बाल्यावस्था मे कृष्ण के द्वारा पूतना, शकट, धेनुक आदि का वध, कालियह्रद मे प्रवेश, कालिय को परास्त करना एव कस का वध।

(६) प्रतिमानाटक—७ अङ्कों के इस नाटक मे राम का वनगमन, मृत नृपों की प्रतिमाओं मे राजा 'दशरथ' की प्रतिमा देखकर भरत का मूर्च्छित होना, राम-भरत मिलन, सीताहरण, जटायु द्वारा रावण पर आक्रमण, सुग्रीव-परिचय, रावणवध, विभीषण का राज्याभिषेक तथा अयोध्याप्रत्यागमन वर्णित है।

(७) अभिषेकनाटक—६ अङ्कों के इस नाटक मे बालकाण्ड के अतिरिक्त रामायण के प्रायः सभी काण्डों की कथाओं का समावेश हुआ है।

(८) पञ्चरात्र—दुर्योधन द्रोण के प्रयास से पाण्डवों को आधा राज्य देने को तैयार हो जाता है वह भी इस शर्त पर कि यदि पाण्डव पाँच रातों के भीतर ही मिल जायें तो। ऐसा ही होता है और पाण्डवों को आधा राज्य दिया जाता है।

(९) मध्यमव्यायोग—इस एकाङ्की मे वर्णित कथा इस प्रकार है—तीन पुत्रों एव पत्नीसहित जाते हुये एक ब्राह्मण को घटोत्कच अरण्य मे रोक लेता है। माता की पारणाहेतु एक पुरुष की आवश्यकता थी। घटोत्कच

मझले (मध्यम) ब्राह्मणपुत्र को माता के आहारहेतु ले जाता है। मार्ग में भीम उस मध्यम ब्राह्मणपुत्र को मुक्त करा देते हैं और स्वय उनके स्थान पर जाते हैं। घटोत्कच की माता भीम को देखकर प्रसन्न हो जाती है कि यह मेरे पति हैं। घटोत्कच को यह जानकर लज्जा होती है कि उसने अपने पिता के प्रति अकृत्य व्यवहार किया। वह क्षमा याचना करता है।

(१०) दूतघटोत्कच—एकांकी नाटक। छल-कपट का आश्रय लेकर कौरव अभिमन्यु का वध कर देते हैं। जयत्रात धृतराष्ट्र को अभिमन्यु के वध कर दिये जाने की सूचना देते हैं। जयत्रात बतलाता है कि अभिमन्यु के वध मे मुख्य हाथ जयद्रथ का है। धृतराष्ट्र कहते हैं कि मारने वाले का वध निश्चित है। इस पर समीप स्थित दुश्शला रोने लगती है। धृतराष्ट्र कौरवों की अत्यधिक भर्त्सना करते हैं। दुर्योधन इस समाचार को सुनकर कि पुत्र-शोकसतप्त अर्जुन कल प्रज्वलित चिता मे प्रवेश करके आत्मघात कर लेंगे, प्रसन्नता से फूलकर कुप्पा हो जाता है। घटोत्कच कृष्ण का दूत बनकर कौरवों के सभाभवन मे प्रवेश करता है। दुर्योधन द्वारा वाद-विवाद बढ़ना है जिसे धृतराष्ट्र शान्त करते हैं।

(११) कर्णभार—एकाङ्की। कर्ण का सारथी 'शल्य कर्ण के रथ को सङ्ग्रामस्थल मे अर्जुन के सम्मुख ले जाता है। कर्ण सारथि से बतलाते हैं कि किस प्रकार वे अपने को ब्राह्मण बतलाकर परशुराम से अस्त्रविद्या सीखी एव रहस्यभेद होने पर शापग्रस्त हुए। ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र कर्ण से भिक्षा मांगने आते हैं। कर्ण उन्हें हजार गायें, अश्व, हस्ती, राजलक्ष्मी, यज्ञफल और अपना सिर तक देने को तैयार हो जाते हैं किन्तु ब्राह्मण कर्ण के केवल कुण्डल और कवच लेता है। यह समझते हुये कि इन्द्र ने छल लिया है कर्ण को पश्चात्ताप नही, अपितु सन्तोष है। छलप्रयोग के कारण पश्चात्ताप युक्त इन्द्र 'विमला' सज्ञक अमोघ शक्ति कर्ण के पास भेजते हैं। कर्ण लेने म अनिच्छा प्रकट करते हैं किन्तु ब्राह्मणाज्ञा समझ कर स्वीकार कर लेते हैं।

(१२) दूतवाक्य—एकाङ्की। अभिमन्यु एव उत्तरा के विवाह के पश्चात् युधिष्ठिर युद्ध रोकने एव समझौता करने के लिए कृष्ण का दूत बनाकर दुर्योधन की सभा मे पहुँचते हैं किन्तु विफलप्रयत्न होकर वापस आ जाते हैं।

(१३) उरुभङ्ग—एकाङ्की। सकृत का एकमात्र दुःखान्त नाटक। दुर्योधन एव भीम के बीच घोर गदायुद्ध होता है। भीम के गदाप्रहार से दुर्योधन की जाँघें टूट जाती हैं। बलराम का रोष पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। दुःखी धृतराष्ट्र एव गान्धारी भी मृतप्राय दुर्योधन को देखने आते हैं तथा अश्वत्थामा कृष्ण एव अर्जुन को मार डालने की प्रतिज्ञा करने लगता है किन्तु दुर्योधन सबको समझाते हैं। अन्त मे दुर्योधन प्राणो का परित्याग कर देता है।

भास की काव्यगत विशेषताएँ

(१) नाटकों का विषयवैविध्य एव संख्याबाहुल्य—भास ने अनेक प्रकार के विषयों को कथानक के रूप मे चुना है। इतिहास, पुराण, महाभारत, आख्यायिकासाहित्य तथा लोककथाओ से कथानको को ग्रहण किया गया है। इन्होने केवल नाटक ही लिखे हैं और उनकी सख्या १३ है। इतनी सख्या मे किसी भी सस्कृत-नाटककार ने नाटको की रचना नहीं की।

(२) मौलिकता—भास के प्रत्येक नाटक में उनकी मौलिकता झलकती है। उनकी अनूठी कल्पना पुराने परिचित कथा को भी नया रोचक रूप प्रदान कर देती है। कल्पना का पर्याप्त पुट होने पर भी स्वाभाविकता का सफल चित्रण कवि ने किया है जिनका ज्वलन्त उदाहरण 'चारुदत्त' नाटक है। समाज के सभी अङ्गो का यथार्थचित्रण कवि ने किया है।

(३) चरित्रचित्रण—भास चरित्रचित्रण मे निपुण हैं। भास के नाटको मे परस्पर विरोधी स्वभाववाले पात्र हैं और उनकी सख्या भी बहुत ही अधिक है। सबके चरित्र का चित्रण भास ने सफलतापूर्वक किया है। आखेट एव सङ्गीत से प्रेम करने वाला नायक उदयन, त्यागमूर्ति नायिका वासवदत्ता, आदर्श स्वामिभक्त मन्त्री यौगन्धरायण उदारमना गुणवान् किन्तु दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त, गुणो पर रीझनेवाली पण्यस्त्री वसन्तसेना, धूर्त राजश्याल शकार, द्यूत-प्रिय सवाहक, चौरकर्मनिपुण सज्जक, नरमांसाभिलाषिणी हिडिम्बा, घोर पराक्रमी भीम, कुटिल कस, धूर्त दुर्योधन, वीर अर्जुन, आदर्श दानी कर्ण आदि विभिन्नरुचि पात्रों के चरित्र का अङ्कन कवि ने बड़ी ही दक्षता से किया है।

(४) अभिनेयता—अभिनय की दृष्टि से भास के नाटक उत्तम हैं। भास के नाटक कलेवर में विशाल नहीं हैं। बहुत से नाटक तो एकाङ्की ही हैं। जो एकाङ्की नही भी हैं वे भी बड़े नहीं हैं। इनकी योजना रङ्गमञ्च के सर्वथा अनुकूल हैं। सच तो यह है कि नाटक लिखते समय रङ्गमञ्च का बहुत ही अधिक ध्यान रखा गया है। कुछ विद्वानो का तो यही मत है कि अभिनय के सौकर्यहेतु नाटकों के ये संक्षिप्त संस्करण हैं।

(५) अलंकार—उपमा, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा, काव्यलिङ्ग आदि बहुत से अलंकारो का समावेश नाटकों म हुआ है।

(६) छन्द—आर्या, अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, पुष्पिताग्रा शिखरिणी आदि सभी छन्दो म पद्यो की रचना की गई है।

(७) मनोवैज्ञानिकता—भास के नाटकों का आधार मनोविज्ञान है। वासवदत्तागत चिन्ता म लीन उदयन का मन स्वप्न में भी वासवदत्ता को देखता है। देखता है—जैसे वासवदत्ता आई, उसके हाथ को दबाया। वस्तुत था भी ऐसा ही। उदयन जाग पड़ता है तो देखता है कि वासवदत्ता भागी जा रही है। वस्तुस्थिति भी यही थी। उदयन निश्चित नही कर पाता है कि स्वप्न के संस्कार के कारण यह काल्पनिक वासवदत्ता भाग रही है अथवा सचमुच वासवदत्ता ही थी। उदयन कहता है कि यदि यह स्वप्न था तो क्या ही अच्छा होता कि मैं स्वप्न ही देखता रहता, मैं धन्य हो जाता यदि जागता नही और यदि यह भ्रम है कि वासवदत्ता थी या नही तो यह भ्रम ही बना रहे। भ्रम का निराकरण—वासवदत्ता अग्नि म जलकर मर चुकी है—कभी न हो—

'यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम्।
अथायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मेचिरम्।। (स्वप्न० ५-९)

इसी प्रकार हम अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व, संकल्प विकल्प, रुचि, भाव तथा निष्ठा आदि की अभिव्यक्ति भास के नाटकों में पाते हैं।

(८) संवादसौष्ठव—भास के नाटकों में रोचक संवाद पाया जाता है। पात्रों की भाषा प्रभावशालिनी एवं उदार व्युत्पन्नमति पर आधृत होता है। पद्यो को चरणों तथा चरणो को भी भागों में विभक्त करके पात्रो द्वारा संवाद करना भास को अधिक प्रिय है।

(९) भाषा सारल्य एवं माधुर्य— भास के नाटकों की भाषा सरल है। समासों का आधिक्य नहीं है अतः अर्थावबोध में कठिनाई नहीं होती। भाषा मधुर है अतएव पाठकों में नाटक के प्रति रुचि उत्पन्न होती है।

(१०) रस—भास के नाटकों में सभी रसों का सन्निवेश है। अङ्गी रसों में प्रायः शृङ्गार, वीर एवं करुण हैं। सम्भोग एवं विप्रलम्भ द्विविध शृङ्गार का चित्रण प्राप्त होता है। विदूषक हास्यरस की सृष्टि करता है। युद्धवीर एवं दानवीर नायकों के चरित में वीररस है। स्वप्नवासदत्त, प्रतिज्ञायौगन्धरायण एवं चारुदत्त में शृङ्गार, कर्णभार, दूतघटोत्कच, अभिषेक, प्रतिमा एवं चारुदत्त में करुण, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच उरुभङ्ग, मध्यमव्यायोग, अभिषेक आदि नाटकों में वीर, पञ्चरात्र, बालचरित तथा अविमारक में हास्य, मध्यमव्यायोग में भयानक और रौद्र, प्रतिज्ञायौगन्धरायण में वीभत्सरस पाया जाता है।

(११) प्रकृतिवर्णन—भास ने तपोवन, सन्ध्या, रात्रि, मध्याह्न, चन्द्रोदय, समुद्र, बक एवं गृध्र आदि पक्षियों का वर्णन किया है। तपोवन में हो रही सन्ध्या का मनोरम चित्र देखिये—

'खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्॥'
(स्वप्नवासवदत्त)

(पक्षी घोसलों में चले गये। मुनिजन जल में प्रविष्ट हो गये। तपोवन में सर्वत्र धुआं फैल रहा है और सूर्य दूर से आकर किरणों को समेट कर अस्ताचल की ओर प्रवेश कर रहा है।

(१२) सूक्तियां—भास के नाटकों में चुभती हुई सूक्तियों का प्रयोग हुआ है। यथा—'कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः' 'मिथ्याप्रशंसा खलु नाम कष्टा', 'हस्तिहस्त चञ्चलानि पुरुषभाग्यानि भवन्ति' इत्यादि।

८ शूद्रक

'मृच्छकटिक' नामक प्रकरण (रूपक का एक प्रभेद) के रचयिता शूद्रक माने जाते हैं। कथानक कल्पित होने के कारण इसे प्रकरण कहते हैं। वैसे अधिकाश विद्वान् मानते हैं कि 'मृच्छकटिक' नाटक के रचयिता शूद्रक हैं तथापि बहुत से विद्वान् इस मत के विरोध में हैं। मृच्छकटिक मे लिखा है कि 'मृच्छकटिक' प्रकरण का रचयिता शूद्रक अग्नि मे प्रवेश कर गया। कोई भी कवि अपनी मृत्यु का विवरण अपनी कृति मे कैसे दे सकता है ? हो सकता है कि नाटक शूद्रकरचित हो और नाटककार की मृत्यु के उपरान्त किसी अन्य कवि ने उसका परिचय दिया हो। कुछ लोगों की धारणा है कि शूद्रक कल्पित व्यक्ति है जब कि दूसरे विद्वान् उन्हे उन राजा शूद्रक से अभिन्न मानते हैं। जिनका उल्लेख कथासरित्सागर, स्कन्दपुराण, कादम्बरी, हर्षचरित एव राजतरङ्गिणी आदि ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

कीथ का मत है कि रामिल अथवा सौमिल्ल या दोनों ने मिलकर भासकृत 'चारुदत्त' नाटक को आधार बनाकर 'मृच्छकटिक' की रचना की। यह स्पष्ट है कि भास के 'चारुदत्त' नाटक के आधार पर 'मृच्छकटिक' की रचना हुई है तथा कालिदास के नाटकों पर मृच्छकटिक का प्रभाव पडा है अतएव यह निश्चितप्राय है कि 'मृच्छकटिक' की रचना भास के पश्चात् तथा कालिदास के पूर्व हुई है। भाषा-शैली, प्राकृत, एव तात्कालिक सामाजिक चित्रण के आधार पर भी उक्त कथन की पुष्टि होती है। अतः अधिकाश विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँते हैं कि शूद्रक का समय लगभग तृतीय शताब्दी ईसापूर्व रहा होगा।

मृच्छकटिक का कथानक—इस प्रकरण में १० अङ्क हैं। भास के 'चारुदत्त' नामक अपूर्ण नाटक में ४ अङ्क हैं जिसके कथानक का आधार लेकर 'मृच्छकटिक' की रचना की गई है। यह कहना समीचीन होगा कि 'मृच्छकटिक' में 'चारुदत्त' की अपूर्ण कथा को पूर्णरूप प्रदान किया गया।

'मृच्छकटिक' का कथासार इस प्रकार है--दरिद्र किन्तु गुणवान् ब्राह्मण चारुदत्त के प्रति उज्जयिनी की प्रसिद्ध वारवनिता वसन्तसेना हृदय से आकृष्ट है। उधर राजा पालक का साला जिसका नाम शकार है वसन्त-

सेना के द्वारा अपनी प्रज्वलित वासना को तृप्त करना चाहता है। एक अन्धकारपूर्ण रात्रि मे शकार विट एव चेट के साथ वसन्तसेना का पीछा करता है। सयोगवश चारुदत्त का घर समीप होता है और वसन्तसेना अपने चातुर्य से चारुदत्त के घर मे प्रवेश कर जाती है। अपने आभूषणों को वह चारुदत्त के घर मे न्यासरूप मे रख देती है जिन्हे शर्विलक नामक व्यक्ति सेंध लगाकर चुरा लाता है। शर्विलक वसन्तसेना की सेविका—मदनिका का प्रेमी है। मदनिका को सेवामुक्त करने के लिये शर्विलक ने आभूषणों की चोरी की। वसन्तसेना को सब ज्ञात हो जाता है। वह आभूषणों को लेकर मदनिका को सेवामुक्त कर देती है।

चारुदत्त की पत्नी की बहुमूल्य रत्नावली आभूषणों के बदले वसन्तसेना को दे दी जाती है यह कहकर कि न्यस्त आभूषणों को चारुदत्त जुए मे हार चुका है। चारुदत्त के पुत्र रोहसेन की मिट्टी की गाडी को वसन्तसेना आभूषणों से भर देती है ताकि रोहसेन की सोने की गाडी बनवाने की इच्छा पूरी हो सके।

चारुदत्त से मिलने के लिये जाती हुई वसन्तसेना धोखे से शकार की गाडी मे बैठ जाती है और चारुदत्त की गाडी मे भविष्य में राजा होने वाला किन्तु तात्कालिक कैदी आर्यक आ घुसता है। चारुदत्त उसे अभयप्रदान करता है। राजभय से भीत आर्यक वहाँ से चला जाता है।

इधर शकार के समीप पहुँची हुई वसन्तसेना उसके प्रणयप्रस्ताव को ठुकरा देती है। शकार उसका गला घोट देता है और चारुदत्त के ऊपर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग न्यायालय मे लगाता है। चारुदत्त के लिये मृत्युदण्ड की घोषणा की जाती है। चाण्डाल चारुदत्त के ऊपर खड्ग चला देता है किन्तु सयोगवश खड्ग अलग गिर जाता है। तब चाण्डाल चारुदत्त को शूली पर चढाना ही चाहते हैं कि वसन्तसेना तथा वसन्तसेना की मूच्छितावस्था मे सहायता करने वाला भिक्षुक प्रकट हो जाते हैं। इसी बीच पालक का वध करके आर्यक राजा बन जाता है और झूठा मुकदमा चलाने वाला एव वसन्तसेना पर प्राणघातक आक्रमण करने वाला अर्थात् वास्तविक अपराधी शकार पकड़ा जाता है। चारुदत्त शकार को अभयदान देता है इधर पतिमरण की सभावना से चारुदत्त की

पत्नी धूता प्रज्वलित चिता पर चढ़ने ही वाली है कि चारुदत्त के मना करने के शब्द को पहचान करके धूता आनन्द मग्न हो जाती है। राजा सबको समुचित पदों पर प्रतिष्ठित कर देता है।

काव्यसौष्ठव—भास के चारुदत्त के आधार पर लिखित 'मृच्छकटिक' नाटक संस्कृत-नाटकों में अनुपम है। इसका कथानक अतीव रोचक है। नाटक में उच्च से उच्च तथा निम्न से भी निम्न वर्ग के पात्रों के चरित्र का चित्रण सफलतापूर्वक किया गया है। राजा का साला शकार, तदनुयायी विट एवं चेट, दरिद्र किन्तु उदार ब्राह्मण युवा चारुदत्त, गुणानुरागिणी गणिका वसन्तसेना, जुए का दीवाना हार कर भागा हुआ संवाहक, चौरकर्मनिपुण शर्विलक आदि सभी पात्रों का यथार्थ चित्रण कवि ने किया है। कवि ने समाज के सभी वर्गों के दोषों का भण्डाफोड़ किया है। भाषा का सारल्य नाटक का अन्यतम वैशिष्ट्य है। गद्य एवं पद्य दोनों में प्रवाह है।

संस्कृत के अन्य किसी नाटक में इतनी प्राकृतों का प्रयोग नहीं हुआ है। रसों में संयोग एवं विप्रलम्भ शृङ्गार, करुण, हास्य आदि का चारु सन्निवेश है। इसमें अङ्गीरस है संभोग शृङ्गार। भावों नवीनता एवं स्पष्टता का पुट सर्वथा दृष्टिगोचर होता है। प्रायः लघुकलेवर छन्दों का ही प्रयोग हुआ है। अलंकारों का मनोरम विन्यास देखने को मिलता है। एक दो उदाहरणों द्वारा शूद्रक के काव्यसौष्ठव का कुछ आभास मिल सकेगा—

'आलाने गृह्यते हस्ती वाजी वल्गासु गृह्यते।
हृदये गृह्यते नारी यदिदं नास्ति गम्यताम्॥' (१।५०)

हाथी बन्धनस्तम्भ में बाँधकर रोका जाता है और घोड़ा लगाम से। (इसी प्रकार) स्त्री हृदय से अनुरक्त होने पर वशीभूत होती है। यदि ऐसा नहीं है तो चले जाइये (आशा न रखिये)।'

चारुदत्त दरिद्रता को सम्बोधित करते हुए कहता है—

'दारिद्र्य ! शोचामि भवन्तमेवमस्मच्छरीरे सुहृदित्युषित्वा।
विपन्नदेहे मयि मन्दभाग्ये ममेति चिन्ता क्व गमिष्यसि त्वम्॥'(१।३८)

(अरी मित्र मानकर मेरे शरीर में निवास करनेवाली दरिद्रते ! मैं तुम्हारे विषय में अतीव चिन्तित हूँ कि मुझ अभागे के शरीरपात हो जाने पर तुम कहाँ शरण लोगी।)

३ कालिदास

संस्कृत-नाटककारों में कालिदास मूर्धन्य हैं। उन्होंने ३ नाटकों की रचना की है—(१) 'मालविकाग्निमित्र' (२) 'विक्रमोर्वशीय' एवं (३) 'अभिज्ञानशाकुन्तल'।

(१) मालविकाग्निमित्र—कालिदास-द्वारा प्रणीत नाटकों में 'मालविकाग्निमित्र' सर्वप्रथम रचना है। इसमें ५ अङ्क हैं। मालविकाग्निमित्र का नायक अग्निमित्र एवं नायिका मालविका है। नाटक में इन्हीं दोनों के प्रणय एवं परिणय का अङ्कन है।

अग्निमित्र की सहधर्मचारिणी महारानी धारिणी मालविका नाम की परिचारिका को अग्निमित्र की दृष्टि से यत्नतः छिपाती है कि कहीं मालविका के अनिन्द्य सौन्दर्य को देखकर अग्निमित्र उस पर आसक्त न हो जाये गणदास एवं हरदत्त नामक दो सङ्गीताचार्य अपने-अपने शिष्यों के सङ्गीत नैपुण्य का प्रदर्शन करना चाहते हैं। गणदास की सङ्गीतशिष्या—मालविका-भी सङ्गीत की परीक्षा देने आती है। ऐसी स्थिति में अग्निमित्र एवं मालविका में परस्पर अनुराग उत्पन्न हो जाता है। मालविका एवं अग्निमित्र के परस्पर मिलन के प्रयास को धारिणी विफल कर देती है। अन्तिम अङ्क में पता चलता है कि अभी तक जिसे परिचारिका समझा जाता था वह मालविका विदर्भ के राजा माधवसेन की पुत्री है। इस गुप्त विषय के उद्घाटित होने पर महारानी धारिणी मालविका का विवाह अग्निमित्र से करवा देती है।

यद्यपि यह कालिदास का सर्वप्रथम नाटक है तथापि कथानक एवं घटनाओं के विन्यास में पर्याप्त उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। नाटक का कथानक द दिनों में ही समाप्त हो जाता है अतः पात्रों के चरित्र-चित्रण एवं उनके मनोविकारों की चारु अभिव्यक्ति का अवकाश नहीं मिलता। प्रारम्भ से अन्त तक सभी पात्र रहते हैं। अग्निमित्र धीरललित नायक है। उसके सभी प्रयास केवल नायिका—मालविका—को वश में करने के लिए होते हैं। चौरप्रणय के रहस्य का उद्भेद होने पर अग्निमित्र धर्मदारा के पैरों पर गिर जाता है किन्तु अनुराग नहीं छोड़ता।

नाटक के सवादो में चातुर्य का पुट कम नही है। प्रश्नोत्तरो में विनोद एव सरसता है। उक्तियों मे श्लेष का समाकर्षक प्रयोग हुआ है। तथापि इस नाटक मे कवि की दृष्टि व्यापक नहीं है। सभी घटनाओं, क्रियाओं, प्रयासों का एकमात्र फल अग्निमित्र एव मालविका का प्रणय है। हाँ इस नाटक का विदूषक कालिदास के अन्य विदूषकों से बुद्धिमान् है। भाषा क्लिष्टता एव अस्वाभाविकता से सर्वथा परे रोचक एव प्रसादगुणसमन्वित है। अलकारों का अनावश्यक प्रयोग नहीं है। कालिदास को पूर्ण विश्वास था कि उनका यह प्रथम नाटक सचमुच उत्तमकोटि का है। तभी तो उन्होंने लिखा है—

'पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्य नवमित्यवद्यम्।
सन्त' परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढ परप्रत्ययनेयबुद्धि ॥'
(मालविकाग्निमित्र)

'कोई काव्य केवल पुराना होने के ही कारण अच्छा नही होता और न नया होने के कारण कोई काव्य निन्दनीय होता है। विवेकीजन दोनो की परीक्षा करके अच्छे का ग्रहण करते हैं और मूढव्यक्ति की बुद्धि तो दूसरों के विश्वास की अनुगामिनी होती है। वे स्वय किसी वस्तु के गुण-दोष-परीक्षण में असमर्थ होते हैं।'

मालविका को आती देख आकृष्ट अग्निमित्र के कथन मे शृङ्गाररस का निदर्शन—

'विपुल नितम्बदेशे मध्ये क्षाम समुन्नत कुचयो.।
अत्यायत नयनयोर्मम जीवितमेतदायाति ॥'

'यह मेरी प्राणभूता मालविका—जिसके नितम्ब विशाल, कटि क्षीण, कुच उन्नत तथा अतिविशाल नेत्र हैं—मेरी ओर आ रही है।'

२ विक्रमोर्वशीय—५ अङ्कों के इस त्रोटक (उपरूपकभेद) में राजा पुरूरवा तथा अप्सरा उर्वशी के प्रणयकथा का वर्णन किया गया है। पुरूरवा केशी नामक दैत्य से उर्वशी की रक्षा करते हैं। उसी समय दोनों परस्पर आकृष्ट हो जाते हैं। भरतमुनि के शाप के कारण उर्वशी मर्त्युलोक मे आकर कुछ समय तक पुरूरवा के पास रहती है किन्तु कभी विद्याधर कुमारी की ओर पुरूरवा के निहारने के कारण क्रुद्ध उर्वशी कार्तिकेय के वन में चली जाती है और लता के रूप में परिणत हो जाती है क्योंकि कार्तिकेय की आज्ञा थी

कि जो भी स्त्री उनके वन में आयेगी, लता हो जायेगी। सङ्गमनीय मणि के प्रभाव से उर्वशी को पुनः उसका पहला वास्तविक रूप प्राप्त हो जाता है। उर्वशी पुत्र को जन्म देकर उसे च्यवन ऋषि के आश्रम में छिपा देती है ताकि पुरूरवा पुत्र को न देख सके क्योंकि उर्वशी मृत्युलोक में वास करने की अधिकारिणी तभी तक थी जबतक उसके द्वारा जनित पुत्र को पुरूरवा देख न लेता। किन्तु एक दिन अकस्मात् यह रहस्य खुल ही गया। पुरूरवा पुत्र को देखता है। उर्वशी एवं पुरूरवा दोनों दुःखी हो जाते हैं। अन्त में इन्द्र उर्वशी को जन्म भर के लिये पुरूरवा के पास रहने की आज्ञा दे देते हैं।

पुरूरवा एवं उर्वशी के प्रणयकथा के दर्शन ऋग्वेद, मत्स्यपुराण, भागवत कथासारित्सागर तथा विष्णुपुराण में होता है। कालिदास ने पर्याप्त परिवर्तन करके अपनी कल्पना का पुट देकर नाटक को अतीव मनोहारी-रूप प्रदान किया है। भरतमुनि का शाप, कार्तिकेय के वन का नियम, उर्वशी का लता रूप में परिणत होना, पुरूरवा का प्रेमोन्माद विलास एवं लगभग सम्पूर्ण पञ्चम अङ्क कालिदास की कल्पना से प्रसूत है। कृति में संभोग एवं विप्रलम्भ शृङ्गार का उत्कृष्ट समावेश हुआ है। देखिये तो उर्वशी के वियोग में विधुर पगलाया हुआ पुरूरवा हंस को देखकर क्या कहता है? कहता है कि—हे हंस! तुम मेरी उर्वशी को मुझे वापस कर दो। यह सुन्दर चाल तुमने उसी से ही तो चोरी कर ली है। और जिसके पास चोरी का थोड़ा भी हिस्सा बरामद होता है उसे सब का सब देना पड़ता है—

'हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिरस्यास्त्वया हृता।
विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते ॥' (४।३३)

यद्यपि कहीं-कहीं घटनायें कथानक के लिये व्यर्थ दिखलाई पड़ती हैं। कहीं वर्णनों का अनावश्यक विस्तार भी किया गया है तथापि पात्रों के चरित्र का चित्रण तथा मनोभावों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह कृति उत्तम ही कही जाएगी। भाषा में प्रसाद गुण, छोटे छोटे छन्दों का माधुर्य एवं वैविध्य ग्रन्थ को रोचक बना देता है।

जब उर्वशी पुरूरवा के पास अपनी सखी—चित्रलेखा के द्वारा सन्देश भेजती है कि जब से आपने दैत्यों से मेरी रक्षा की उसी दिन से आपको

लेकर मदन मुझे अत्यधिक पीडित करने लगा है, आप मुझ पर दया करें, तब पुरूरवा चित्रलेखा से कहता है—

'पर्युत्सुका कथयसि प्रियदर्शना तामार्तं न पश्यसि पुरूरवसं तदर्थे।
साधारणोऽयमुभयोःप्रणयःस्मरस्य तप्तेन तप्तमयसा घटनाय योग्यम् ॥'
(२।१६)

'उस सुन्दरी को तो तुम उत्कण्ठित कह रही हो किन्तु मैं जो उर्वशी के लिए इतना तड़प रहा हूँ उसे तुम नहीं समझती। कामदेव ने दोनों को समान रूप से प्रेम में तपा दिया है। गर्म लोहे से गर्म लोहा जोड़ा जाना चाहिए।'

(३) अभिज्ञानशाकुन्तल—'अभिज्ञानशाकुन्तल संस्कृत साहित्य का सर्वश्रेष्ठ नाटक है—'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्यं शकुन्तला'। इसमें ७ अंक हैं। महाभारत के आदिपर्व में शकुन्तलोपाख्यान से कथानक लेकर कालिदास ने अपनी उद्भूत कल्पना के योग से अप्रतिम नाटक की सृष्टि की है यद्यपि दुष्यन्त एवं शकुन्तला के प्रणय एवं परिणाम का मनोहारी उल्लेख पद्मपुराण में भी है किन्तु वहाँ का विवेचन 'अभिज्ञानशाकुन्तल' से प्रभावित है।

राजा दुष्यन्त मृगयाप्रसङ्ग में एक मृग का अनुसरण करते हुए कण्व के आश्रम में पहुँच जाते हैं। महर्षि कण्व आश्रम में उपस्थित नहीं है। वे शकुन्तला के प्रतिकूल ग्रहों की शान्ति के निमित्त सोमतीर्थ गए हैं। शकुन्तला के प्रथम दर्शन से ही दुष्यन्त के हृदय में मन्मथपीडा उद्भूत हो जाती है। इधर शकुन्तला भी दुष्यन्त को देखकर कामपरवश हो जाती है।

शकुन्तला की सहचरियों द्वारा दुष्यन्त को ज्ञात होता है कि शकुन्तला महर्षि विश्वामित्र एवं अप्सरा मेनका की पुत्री है और मेनका ने शकुन्तला को जन्म देकर उसका परित्याग कर दिया था जिसका पालन पोषण कण्व ने किया। इस सूचना से दुष्यन्त प्रसन्न हो जाता है क्योंकि शकुन्तला ब्राह्मण कन्या न होने से क्षत्रिय के लिए ग्राह्य है। दुष्यन्त एवं शकुन्तला गान्धर्व विधि द्वारा विवाह कर लेते हैं।

दुष्यन्त को आवश्यककार्यवश अपनी राजधानी—हस्तिनापुर जाना होता है। अपनी नामाङ्कित अँगूठी को शकुन्तला की उँगली में पहनाकर दुष्यन्त

कहते हैं कि मैं उतने ही दिनों मे तुम्हें अपने पास बुलवा लूँगा। जितने अक्षर मेरे नाम मे हैं, तुम गिनते रहना।

दुष्यन्त के चिन्तन मे लीन शकुन्तला कोप के अवतार महर्षि दुर्वासा के आगमन को नही समझ पाती। शकुन्तला को चिन्तन मे लीन देखकर दुर्वासा अपनी उपेक्षा समझते हैं। उन्हें क्रोध आ जाता है और वे शाप दे देते हैं कि तुम जिसके ध्यान में मग्न होकर मुझ उपस्थित को नही समझ पा रही हो वह स्मरण दिलाने पर भी तुम्हे स्मरण नही करेगा। शकुन्तला की सखी के द्वारा अनुनय विनय किए जाने पर दुर्वासा ने कहा कि पहचान का आभूषण देखने पर शाप की समाप्ति हो जावेगी। कण्व तीर्थयात्रा से वापस आते हैं। उन्हें सब कुछ विदित हो जाता है। वे शकुन्तला एव दुष्यन्त के विवाह का अनुमोदन कर देते हैं।

शकुन्तला गर्भवती है। शारङ्गरव एव शारद्वत नामक अपने दो शिष्यों के द्वारा कण्व शकुन्तला को दुष्यन्त के समीप भेजते हैं। दुष्यन्त दुर्वासा के शाप के कारण अपनी प्रिय पत्नी शकुन्तला को पहचान नही पाता। सखियों के निर्देश के अनुसार शकुन्तला दुष्यन्त की नामांकित अँगूठी को दिखलाना चाहती है, किन्तु खेद ! अँगूठी तो कही गिर गई। दुष्यन्त शकुन्तला को स्वीकार नही करता। शकुन्तला दु ख से रोने पीटने लगती है। एक ज्योति उसे आकाशमार्ग द्वारा ले जाती है। एक मछुआ राजा के नाम से अकित अँगूठी को बेचते हुए राजपुरुषों द्वारा पकडा जाता है। वह कहता है कि यह अँगूठी एक मछली के पेट से मिली है। राजपुरुष राजा के पास जाकर जैसे ही अँगूठी दिखलाता है वैसे ही दुर्वासा का शाप समाप्त हो जाता है। राजा को सब कुछ स्मरण हो आता है। इतने में इन्द्र का सदेश दुष्यन्त को मिलता है कि वह युद्ध मे असुरों के विरुद्ध इन्द्र की सहायता करे। इन्द्र की सहायता करके लौटते हुए दुष्यन्त मारीच के आश्रम मे अपने पुत्र सर्वदमन एव पत्नी शकुन्तला से मिलकर उन्हें स्वीकार करते हैं और फिर सपुत्र कलत्र अपनी राजधानी मे आ जाते हैं।

अभिज्ञान शाकुन्तल का वैशिष्ट्य—

(१) मौलिकता—महाभारत के सीधे सादे कथानक मे कालिदास ने जो परिवर्तन किये हैं। वह उनकी मौलिकता के प्रतीक हैं। पद्मपुराण की कथा शाकुन्तल से ही प्रभावित हुई हैं। महाभारत में शकुन्तला स्वय अपने जन्म

की कथा से दुष्यन्त को अवगत कराती है जब कि अभिज्ञानशाकुन्तल में प्रियंवदा एवं अनसूया शकुन्तला के जन्म की कथा को राजा से कहती है। इस परिवर्तन से नायिका के शील की रक्षा की गई है। महाभारत की शकुन्तला दुष्यन्त से कहती है कि यदि मुझसे उत्पन्न पुत्र को युवराज बनाने की प्रतिज्ञा की जाये तब तो मैं आपसे विवाह करूँगी किन्तु अभिज्ञानशाकुन्तल की शकुन्तला को दुष्यन्त से सच्चा प्रेम है, लोभजन्य प्रेम नहीं।

अभिज्ञानशाकुन्तल की शकुन्तला इतनी लज्जाशील है कि अपनी अन्तरङ्ग सखियों से भी मदनवेदना व्यक्त करने में सकोच करती है जब कि महाभारत की शकुन्तला स्पष्टवादिनी भय-लज्जाविहीन स्वतन्त्र युवती है। महाभारत में कण्व फल आदि लेने के निमित्त वन जाते हैं जब कि अभिज्ञानशाकुन्तल के कण्व सोमतीर्थ जाते हैं जिससे शकुन्तला के भावी प्रत्याख्यान का सङ्केत मिलता है और दुष्यन्त पर उतावलेपन का कलङ्क नहीं लगता। दुर्वासा का शाप कालिदास की मौलिक कल्पना है जिससे महाभारत के दुष्यन्त की भाँति कालिदास के दुष्यन्त पर यह लाञ्छन नहीं लग पाता कि वह अपनी पत्नी को पहचानते हुए भी परित्याग कर रहा है।

(२) शृंगाररस—नाटक शृङ्गाररस-प्रधान है। सम्भोग एवं विप्रलम्भ दोनों ही विधाओं का समीचीन परिपाक नाटक में हुआ है। करुण, हास्य, वीर, अद्भुत आदि रसों का भी सन्निवेश हुआ है। शकुन्तला के अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर दुष्यन्त कहता है—

'अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै—
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः॥'

'शकुन्तला क्या है? बिना सूँघा हुआ फूल, नाखूनों से बिना तोड़ा हुआ किसलय, बिना छेद किया हुआ रत्न, बिना चखा हुआ नया शहद, अखण्ड पुण्य का फल जैसी। पता नहीं कि ब्रह्मा किस व्यक्ति को ऐसे अलौकिक सौन्दर्य का भोक्ता बनायेंगे।'

शकुन्तला जब दुष्यन्तविषयक अपने अनङ्गभाव को यह कहकर आवेदित करती है कि काम मेरे शरीर को तपा रहा है तब दुष्यन्त अपनी तीव्रतर मन्मथवेदना को प्रकट करते हुए कहता है—

'तपति तनुगात्रि ! मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव ।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा कुमुद्वतीं दिवसः ॥'

अर्थात् 'हे कृशाङ्गि ! कन्दर्प तुझे तो निरन्तर (केवल) 'तपाता' ही है किन्तु मुझे तो वह 'जला' ही रहा है। (देख न) दिन जितना अधिक चन्द्रमा को गला देता है उतना कुमुदिनी को नहीं।'

वात्सल्य का चित्रण सप्तम अङ्क के दुष्यन्त-भरतमिलन मे, हास्यरस का पुट विदूषक एवं प्रियवदा की उक्तियों में तथा दुष्यन्त के वीरकार्यों के वर्णन मे वीररस की अभिव्यक्ति हुई है।

(३) ध्वनि—'अभिज्ञानशाकुन्तल' मे बहुत्र ध्वनि के दर्शन होते हैं। एक उदाहरण देखें—दुष्यन्त चित्रफलक मे शकुन्तला के अधबने चित्र को पूरा करना चाहता है। अब वह चित्ररूप मे क्या बनाना चाहता है ?—

'शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः,
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ।'

जिसकी शाखा मे वल्कलवस्त्र लटक रहे हैं ऐसे वृक्ष की छाया मे वर्तमान कृष्णमृग के सींग पर अपनी बाईं आँख को खुजलाती हुई मृगी का चित्रण दुष्यन्त करना चाहता है। ध्वनि है प्रगाढ दाम्पत्य विश्वास एवं प्रेम। नारी जाति—मृगी की कोमलता, नयन का मार्दव और वह भी वाम नयन का। ऐसे कोमल अङ्ग को वह विश्वासपरायणा मृगी प्रियतम के सींग पर खुजला रही है। विश्वास एवं प्रेम की पराकाष्ठा है।

(४) प्रकृति-चित्रण—कालिदास की प्रकृति मे वेदना है। वृक्षों पशुओं और पक्षियों को शकुन्तला से सहानुभूति है जिसका प्रकाशन शकुन्तला के पतिगृह जाते समय होता है। शकुन्तला का भी आश्रम के वृक्षों एवं जीवों के प्रति सोदर स्नेह है। प्रकृति शिक्षा का माध्यम भी है। सूर्य, वायु, शेष आदि अपने-अपने कर्तव्य का पालन सुचारुरीत्या करते हैं।

प्रकृतिचित्रण का एक उदाहरण देखिये—

'शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णस्वान्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात्पादपाः ।
सन्तानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते ॥'
(७।८)

'लगता है कि ऊपर उठते हुए पर्वत की चोटी से पृथ्वी नीचे उतर रही है। शाखाओं के प्रकट होने के कारण वृक्ष पत्तों मे छिपना छोड रहे हैं। सूक्ष्मता के कारण अदृश्य जलवाली नदियाँ विस्तार के कारण अभिव्यक्त होने लगीं। देखो! ऊपर फेंकने वाले किसी व्यक्ति के द्वारा जैसे यह लोक मेरे समीप लाया जा रहा है'।

(५) अलकार—उपमा, स्वभावोक्ति, रूपक, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा आदि प्राय सभी मुख्य अलकारो का प्रयोग नाटक मे हुआ है उपमाओ के दो उदाहरण दिये जा रहे हैं—तपस्वियों के बीच मे शकुन्तला पीले पत्तो के बीच किसलय के समान है—'मध्ये तपोधनाना किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्'। कण्व को प्राप्त मेनकापुत्री शकुन्तला अर्कवृक्ष पर गिरे नवमालिका के पुष्प के समान है—

'सुरयुवति सभव किलमुनेरपत्य तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरि शिथिल च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्॥'

(६) घटनाओं की सुसयोजना—नाटक की एक के पश्चात् दूसरी घटित होने वाली घटनायें स्वाभाविक एव सार्थक हैं। न वे बलानीत है और न उनमें जोड ही पता चलता है। प्रेक्षक को यह प्रतीत ही नहीं हो पाता है कि एक घटना से दूसरी घटना जोडी जा रही है। उदाहरण के लिये प्रस्तावना के पश्चात् दुष्यन्त द्वारा मृग के पीछा करने की घटना को महाकवि ने बडे कौशल से युक्त किया है। सूत्रधार नटी से कहता है कि मैं तुम्हारे गीतराग से वैसे ही हरण कर लिया गया जैसे इस हिरन के द्वारा यह राजा दुष्यन्त। मृगानुगमन का कथन गीतराग द्वारा हरण के वर्णन का पूरक है, विविक्त तत्त्व नहीं।

(८) विस्मरण—नाटक में विस्मरण की अनेक घटनायें घटित होती हैं। प्रस्तावना में ही सूत्रधार को विस्मरण हो जाता है कि किस नाटक का अभिनय करना है—'अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया'। इतना ही क्यों, विस्मरणवश वह नाटक को प्रकरण कह देता है—'कतमत्प्रकरणमाश्रित्यैनमाराधयाम:'। दुर्वासा के शाप के प्रभाव से दुष्यन्त शकुन्तला को स्मरण नहीं करता। चित्र में भ्रमर शकुन्तला के ऊपर मँडरा रहा है, दुष्यन्त भूल जाता है कि वह चित्र है। हँसपदिका से एक बार प्रेम करके राजा उसे भूल जाता है।

(९) गुण—नाटकों में प्रसाद, ओज एवं माधुर्य गुण हैं। न क्लिष्ट पदावली है और न अप्रचलित शब्दों का प्रयोग। शब्द-संयोजना से माधुर्य निष्पन्दित होता है।

(१०) पाण्डित्य—नाटक के देखने से प्रमाणित हो जाता है कि कालिदास को वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, नीतिशास्त्र धनुर्वेद, कामशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि पर पूर्ण अधिकार था।

(११) तात्कालिक समाज का चित्रण—प्रकृत कृति में प्राचीन भारत के समाज का चित्रण हुआ है, यथा—राजाओं और तपस्वियों के कर्तव्य, तपस्वियों का आदर, प्रतिलोम विवाह की निषिद्धता, अलौकिक घटनाओं एवं शकुन आदि में विश्वास, पुलिस के कर्मचारियों की अभ्रद्रता, निम्नवर्ग में मदिरापान आदि।

(१२) सूक्तियाँ—'अभिज्ञानशाकुन्तल' चुभती हुयी सूक्तियों से भरा हुआ है। यथा, 'अर्थो हि कन्या परकीय एव', 'उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना', अतिस्नेहः पापशङ्की', 'विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति' इत्यादि।

४ हर्ष

महाकवि बाण के आश्रयदाता प्रसिद्ध राजा हर्ष (६०६-६४८ ई० सन्) ने तीन नाटकों की रचना की है। वे हैं–(१) 'प्रियदर्शिका' (२) 'रत्नावली' और (३) 'नागानन्द'। तीनों ग्रन्थों की प्रस्तावना में हर्ष का उल्लेख हुआ है तथा भाषा का साम्य है अतएव तीनों ग्रन्थ एक ही लेखक की रचनायें प्रतीत होते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि ये ग्रन्थ हर्ष के किसी आश्रित

कवि द्वारा रचित हुए होंगे जिनका प्रचार हर्ष के नाम से कर गया होगा तथापि परिपुष्ट प्रमाणों के अभाव में कुछ भी कहना समीचीन नहीं।

(१) प्रियदर्शिका—कालक्रम से हर्ष की सर्वप्रथम कृति। ४ अङ्कों की इस नाटिका का कथानक 'वृहत्कथा' से लिया गया है। कवि ने अपनी अनूठी कल्पना से नाटिका को सरस एवं रुचिकर बना दिया है। प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है। कथानक इस प्रकार है—युद्ध में पराजित राजा दृढ़-वर्मा की कन्या प्रियदर्शिका दुर्घटनावश वत्सराज उदयन के अन्तःपुर में पहुँचती है। अन्तःपुर में वह आरण्यका नाम से रानी की परिचारिका बनती है। वत्सराज आरण्यका के प्रति आकृष्ट है। वासवदत्ता की इच्छा से अन्तःपुर में उदयन एवं वासवदत्ता के विवाह का अभिनय किया जाता है जिसमें 'मनोरमा' को उदयन बनाया जाता है और आरण्यका का वासवदत्ता। किन्तु मनोरमा के स्थान पर उदयन पहुँच जाता है। वासवदत्ता उदयन की चाल को पकड़ लेती है और आरण्यका को कारागृह में डलवा देती है। परन्तु इस तथ्य के उद्घाटित होने पर कि आरण्यका राजकुमारी प्रियदर्शिका है दोनों का विवाह हो जाता है। तीसरे अङ्क का 'गर्भाङ्क नाटक' की योजना इस नाटिका की प्रमुख विशेषता है।

(२) रत्नावली—४ अङ्कों की नाटिका। सिंहल के राजा की कन्या—रत्नावली से जिसका विवाह होगा वह चक्रवर्ती सम्राट् होगा ऐसी भविष्य-वाणी सुनकर मंत्री यौगन्धरायण अपने स्वामी उदयन का विवाह रत्नावली से कराना चाहता है। उदयन की पत्नी वासवदत्ता है ही अतएव कन्या-पक्ष से विवाह की अस्वीकृति होने पर यौगन्धरायण अफवाह फैला देता है कि वासवदत्ता अग्नि में जलकर मर गई। रत्नावली-उदयन परिणय स्वीकार कर लिया जाता है किन्तु पोतदुर्घटना में रत्नावली अपने साथ के व्यक्तियों से बिछुड़ जाती है और वासवदत्ता के पास परिचारिका रूप में काम करने लगती है। इसका नाम सागरिका रखा जाता है।

वसन्तोत्सव वासवदत्ता कामदेव की पूजा करती है। यहाँ मूर्ति बनाकर कामदेव की पूजा नहीं अपितु उदयन ही कामदेव का स्थानापन्न है। यद्यपि सागरिका को वासवदत्ता ने ऐसे कार्यों म नियुक्त किया था जिससे वह उदयन के दर्शन न कर सकनी तथापि सागरिका कामदेवपूजन को देखने के लिये आतुर थी। उसके उदयन को कामदेव समझा। कामदेव समझ कर

उसकी पूजा भी की किन्तु बाद मे उसे ज्ञात हुआ कि यह वही उदयन है जिसको उसके पिता ने उसे दे दिया था। तत्पश्चात् सागरिका की मदन-व्यथा, उदयन की प्रणयोत्सुकता, वासवदत्ता का कोप और वासवदत्ता के द्वारा सागरिका को कारागृह में डालना इत्यादि विषयो का वर्णन है। अन्तःपुर मे लगी आग को बुझाने मे उदयन सागरिका को वासवदत्ता की प्रार्थना पर मुक्त करता है। रत्नावली के पिता का मन्त्री वसुभूति पहचान लेता है कि जिसे सागरिका कहा जाता है वह वासवदत्ता के मामा की पुत्री रत्नावली है। उदयन रत्नावली का विवाह सम्पन्न होता है।

रत्नावली का स्रोत गुणाढ्य की बृहत्कथा है। प्रियदर्शिका से मिलता-जुलता इसका भी कथानक है। नाट्यशास्त्र के नियमो का पालन किया गया है। समास विरल हैं। गुण प्रसाद है। श्रृङ्गार रस की प्रधानता है। इस नाटक में अनेक पात्र दूसरे का वेश धारण करते हैं। श्रृङ्गार रस का चारु परिपाक इस नाटक में दिखाई देता है। उदयन सागरिका के चित्र को देख-कर अतीव मुग्ध है। जब ब्रह्मा ने सागरिका के मुख-रूपी अनुपम चन्द्र की रचना की तो ब्रह्मा का आसनकमल भी उसके सौन्दर्य पर लज्जित हो गया होगा अतः सकुचित हो गया होगा। उस समय ब्रह्मा बड़ी कठिनाई से उस आसनभूत कमल पर बैठ सके होंगे।

'विधायापूर्वपूर्णेन्दुमस्या मुखमभूद्ध्रुवम्।
धाता निजासनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः ॥' (२।१०)

अस्ताचल के शिखर पर किरण डाले हुए सूर्य प्रियतमा कमलिनी से विदा होते समय कह रहा है कि कमलनयने! देख अब मेरे चलने का समय हो रहा है। *अब कल जब तू सोई ही हुई होगी आकर तुम्हे जगाऊँगा—*

'यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैप
सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया।
प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः
सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति ॥' (३।६)

(३) नागानन्द—५ अङ्क के इस नाटक मे राजकुमार जीमूतवाहन के आत्मत्याग की कथा का उल्लेख है। गरुड़ प्रतिदिन एक सर्प का भक्षण करता था। जब जीमूतवाहन को ऐसा ज्ञात होता है तो उस दिन के भक्ष्य

शङ्खचूड सर्प के बदले वह अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देता है। गौरी अपने प्रभाव से जीमूतवाहन को जीवित कर देती है। अमृत की वर्षा होती है और सभी मारे गए सर्प जीवित हो जाते हैं। गरुड भविष्य में उनका वध न करने की प्रतिज्ञा करता है।

नाटक का रस वीर (दयावीर) है। इसमें रस के अनुकूल वर्णों का विन्यास तथा करुण एवं हास्य का मार्मिक चित्रण हुआ है। जीमूतकेतु का पुत्रवात्सल्य, शङ्खचूड की माता का निर्व्याज पुत्रस्नेह, मलयवती की स्वाभाविक अनुरक्ति सब के सुन्दर चित्रण का निर्वाह हुआ है। शङ्खचूड जीमूतवाहन के अलोकसामान्य चरित का प्रत्याख्यान करता है—

'विश्वामित्र स्वमांस श्वपच इव पुराभक्षयद् यन्निमित्त
नाडीजङ्घो निजघ्ने कृततदुपकृतिर्यत्कृते गौतमेन।
पुत्रोऽयं काश्यपस्य प्रतिदिनमुरगानत्ति तार्क्ष्यो यदर्थं
प्राणांस्तानेष साधुस्तृणमिव कृपया यः परार्थं ददाति॥'

'जिन प्राणों की रक्षा के निमित्त विश्वामित्र ने चाण्डाल के समान कुत्ते का मांस खाया था, गौतम ने अपने ही उपकारी 'नाडीजङ्घ' नामक बगुले को मार (कर खा) डाला था और काश्यप का पुत्र गरुड प्रतिदिन सर्पों का भक्षण करता है, यह दूसरे के लिए उन्हीं प्राणों का तृण के समान उत्सर्ग कर रहा है।'

८ भवभूति

महान् नाटककार महाकवि भवभूति ने तीन नाटक लिखे हैं—महावीरचरित, मालतीमाधव एवं उत्तररामचरित। इन्होंने अपने नाटकों में अपना परिचय दिया है जिससे ज्ञात होता है कि ब्राह्मण भवभूति का निवासस्थान पद्मपुर (विदर्भ–आधुनिक बरार), गोत्र काश्यप, पिता नीलकण्ठ, माता जतुकर्णी और पितामह भट्टगोपाल थे। इनका असली नाम श्रीकण्ठ माना जाता है। विद्वानों का मत है कि प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट के शिष्य जिनका नाम उम्बेक है भवभूति ही हैं।

इनके भवभूति नाम पड़ने का कारण इनके द्वारा रचित दो श्लोकों में 'भवभूति' शब्द का उल्लेख है—'साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः' तथा

'गिरिजाया' कुचौ वन्दे भवभूतिसितानतौ'। वामन ने काव्यालङ्कारसूत्र मे भवभूति का उल्लेख किया है। वामन का समय ८०० ईसवी सन् है। इधर बाण ने कालिदास, भास आदि प्रसिद्ध महाकवियो के साथ भवभूति का उल्लेख नही किया है। बाण का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। अत भवभूति का समय सातवी शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर आठवी शताब्दी के अन्त तक में कही रहा होगा।

(१) महावीर चरित—रचनाक्रम मे यह भवभूति का प्रथम नाटक है। इसमे ७ अङ्क हैं। इसमे प्राय. रामायण के पूर्वार्ध की कथा को उपनिबद्ध किया गया है। राम का विवाह, निर्वासन, सीता का हरण एव राज्याभिषेक की कथा वर्णित है। रावण सीता की प्राप्ति के लिये प्रयास करता है किन्तु विफल हो जाता है। राम धनुष को तोडते हैं और सीता का वरण कर लेते हैं। पराजित रावण परशुराम को राम के विरुद्ध उत्तेजित करता है और सूर्पणखा को मन्थरा के रूप मे राम के अनिष्टसम्पादनहेतु भेजता है। राम मिथिला मे हैं और मन्थरा (सूर्पणखा) राम के १४ वर्ष के वनवास की सूचना वहीं लाती है। अन्त मे राम—रावण एव मेघनाद का वध कर देते हैं।

ग्रन्थ के सवादों एवं वर्णनो में अधिक विस्तार है। मनोवैज्ञानिक विवेचन एव भाषा के सौष्ठव का पुट अल्प है। पात्रो का चरित्रचित्रण भी निखर नही पाया है इसलिये इस ग्रन्थ को पर्याप्त प्रतिष्ठा न प्राप्त हो सकी। लगता है कि इस पर भवभूति बहुत ही अधिक खीझे थे क्योंकि मालतीमाधव की प्रस्तावना मे भवभूति ने आलोचकों की लम्बी खबर ली थी।

(२) मालतीमाधव—'मालतीमाधव' एक प्रकरण है। प्रकरण की कथा कविकल्पनाप्रसूत होती है। १० अङ्क के इस प्रकरण मे नायिका मालती एवं नायक माधव के प्रेम विवाह का वर्णन है। मालती पद्मावती के राजा के मत्री (भूरिवसु) की पुत्री है। भूरिवसु की विशेष इच्छा है कि वे अपनी पुत्री मालती का विवाह माधव के साथ कर दें जो उनके बाल्यकाल के मित्र देवरात का पुत्र है। मालती एव माधव का मिलन एक शिवमन्दिर में होता है जहाँ माधव का मित्र मकरन्द मालती की सखी मदन्तिका की रक्षा एक बाघ से करता है।

मदन्तिका का भाई नन्दन (जो राजा का साला है) मालती को वश मे करना चाहता है। मकरन्द एव मदन्तिका में परस्पर अनुराग अङ्कुरित होता है। माधव श्मशान में जाकर तन्त्र के अनुष्ठान द्वारा मालती को प्राप्त करने का उपक्रम करता है'। वहाँ वह देखता है कि मालती को अघोरघण्ट एव उसकी शिष्या कपालकुण्डला ने देवी को बलि देने के लिये पकड़ लिया है। माधव मालती की रक्षा करता है। राजप्रभाव से जब नन्दन का विवाह सम्पन्न होने लगता है तब मकरन्द मालती के स्थान को ग्रहण कर लेता है तथा मालती और माधव भाग निकलते हैं। मदन्तिका मालतीवेश-धारी मकरन्द के समीप जाती है और देखती है कि यह तो उसका प्रेमी ही है। दोनों भाग निकलते हैं। कपालकुण्डला के द्वारा चुराई गई मालती सौदामिनी की सहायता से प्राप्त हो जाती है। दोनों का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

नाटक का कथानक रुचिकर है, चरित्रचित्रण मे वैशद्य है, भाषा में सौंदर्य एव प्रकृतिचित्रण में मनोहारिता है। सवादों का मनोहारी विन्यास हुआ है। मन्मथपीडित माधव की दशा की सूचना पाकर मालती लवङ्गिका से अपनी अवस्था का प्रख्यापन करती है—

'मनोरागस्तीव्रो विषमिव विसर्पत्यविरत
प्रमाथी निर्घूमो ज्वलति विधुतः पावक इव।
हिनस्ति प्रत्यङ्ग ज्वर इव गरीयानित इतो
न मा त्रातुं तातः प्रभवति न चाम्बा न भवती॥ (२।१)

'मन की तीखी व्यथा निरन्तर विष के समान फैल रही है, जैसे हिलाई गई धूमहीन अग्नि के समान जल रही है, तीव्र ज्वर के समान अङ्ग अङ्ग को पीडित कर रही है। मेरी रक्षा न पिता न माता और न आप ही कर सकती हैं।'

(६) उत्तररामचरित—नाटक में ७ अङ्क हैं और राम के उत्तरचरित का वर्णन है। 'उत्तरचरित' का अर्थ है जीवन के उत्तरभाग में रामद्वारा अनुष्ठित क्रियायें। इसके अन्तर्गत रावणवध के पश्चात् होनेवाले राज्या-भिषेक से लेकर सीतानिर्वासन तथा पुन' सीतासमागम तक की घटनायें हैं। राम के उत्तरचरित का जैसा चित्रण महाकवि ने किया है वैसा किसी अन्य कवि ने नहीं किया—

'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।'

नाटक का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—राम के राज्याभिषेक में आगत अतिथियों को राम विदा कर देते हैं। जनक के चले जाने पर सीता खिन्न हो जाती है। राम सीता के मनोरञ्जनहेतु पूर्वचरितों से सम्बद्ध चित्रों को दिखलाते हैं। लक्ष्मण भी साथ में हैं। सीता भागीरथी का दर्शन करना चाहती हैं। उधर दुर्मुख नामक गुप्तचर राम को सूचित करता है कि सीता के चरित्र के विषय में लोकापवाद फैला है। राम भागीरथी दर्शन के बहाने सीता का परित्याग कर देते हैं। १२ वर्ष के पश्चात् राम अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं। दण्डकारण्य में तपस्या करनेवाले शूद्र तपस्वी राम के द्वारा मारा जाता है। तमसा एवं मुरला नामक दो नदियाँ परस्पर बात करती हैं कि गङ्गा में प्रविष्ट सीता ने जल में ही लवकुश नामक दो पुत्रों का जन्म दिया है जो महर्षि वाल्मीकि को सौंप दिये गये हैं। सीता छाया के रूप में प्रकट होती है। राम पूर्वानुभूत क्रीडास्थलों को देखकर मूर्छित हो जाते हैं और सीता के स्पर्श से उनकी मूर्छा भङ्ग होती है। राम विलाप करते हैं तो करुणरस की धारा प्रवाहित होने लगती है।

वाल्मीकि के आश्रम में राम के अश्वमेध यज्ञ के अश्व को पकड़े हुए एक तेजस्वी बालक का प्रवेश होता है। ये राम के पुत्र 'लव' हैं जिनके साथ लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु के युद्ध की सूचना मिलती है। राम की उपस्थिति से युद्ध का विराम होता है। राम का लव-कुश के प्रति अज्ञात स्वाभाविक स्नेह उमड़ पड़ता है। सप्तम अङ्क में एक दिव्य नाटक के अभिनय में दिखलाया जाता है कि परित्यक्ता सीता गङ्गा एवं पृथ्वी एक-एक शिशु को लेकर जल से बाहर आती हैं और सीता कहती हैं कि वह इन शिशुओं का तब तक पालन-पोषण करें जब तक वे इतने सयाने न हो जायें कि वाल्मीकि के आश्रम में रह सकें। यह सब देख राम को मूर्छा आ जाती है। सीता के सान्निध्य से राम स्वस्थ हो जाते हैं। वाल्मीकि लव और कुश को राम को सौंप देते हैं।

काव्यवैशिष्ट्य

(१) मौलिकता—रामायण की कथा में भवभूति ने मौलिक परिवर्तन करके नाटक को एक नया एवं हृदयाकर्षक रूप प्रदान किया है। विप्रलंभ,

छायारूप मे सीता का उपस्थित होना, ७ वें अङ्क का गर्भाङ्कनाटक एवं इसी प्रकार के अन्य स्थल महाकवि की मौलिक कल्पना से प्रसूत हैं जिससे नाटक अतीव मनोरम हो गया हैं।

(२) करुणरस—'उत्तररामचरित' का प्रधान रस करुण है। यद्यपि *भारतीय नाट्यशास्त्र के नियमो के* अनुसार किसी नाटक का मुख्य रस शृङ्गार अथवा वीर होना आवश्यक है तथापि भवभूति ने इस क्षेत्र में प्रचलित परम्परा का बहिष्कार करके एक सर्वथा नूतन सरणि का अवलम्ब लिया। इतना ही नही, भवभूति की दृष्टि मे रस तो केवल एक 'करुण' ही है, अन्य रस उसके विभिन्न विकार हैं। जैसे भँवर, बुलबुले और लहरें जल के अतिरिक्त और क्या हैं ? जल ही —हैं

'एको रसः करुण एव निमित्तभेदा-
दभिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समग्रम्॥'(३।४७)

जनस्थान की घटना—सीताहरण, राम का शोकाकुल होना—स्मरणमात्र से राम को प्रत्यक्ष अनुभव जैसा दुःख देती है। रावण से बदला ले लिया गया फिर भी राम की उस करुण निरुपाय दशा को देखकर मानव अथवा प्राणी तो क्या पत्थर भी रो पड़ता है और वज्र का हृदय फट जाता है लक्ष्मण कहते हैं—

'अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना
तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै-
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्॥' (१।२८)

सीता, राम, जनक आदि के करुण चरित का निरीक्षण करके प्रेक्षकों का हृदय करुणा से आप्लावित हो जाता है। दुःख से अभिभूत राम मूर्च्छित भी हो जाते हैं। दुःख की वेदना विष, शल्य किंवा फूटे हुए फोड़े के समान है। असहाय राम का सहारा सीता की स्मृति ही है। वह स्मृति जिस क्षण में दूर हो जाती है राम का जीवन जीर्ण अरण्य के सदृश शून्य और हृदय लगता है जैसे धधकते हुए अङ्गारो पर रख दिया गया हो—

'जगज्जीर्णारण्यं भवति च विकल्पव्युपरमे
कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव।' (६।३८)

(३) अन्य रस—करुण के अतिरिक्त शृङ्गार, वीर, रौद्र, बीभत्स आदि रसों की भी स्पष्ट अभिव्यञ्जना उत्तररामचरित में हुई है। लव के वर्णन में वीर रस का पुट देखिये—

'दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्।
कौमारकेऽपि गिरिवद् गुरुतां दधानो
वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव॥' (६।१६)

(४) चरित्रचित्रण—भवभूति चरित्रचित्रण में निपुण हैं। राम के चरित का उत्कर्ष उनके प्रजारञ्जन, शरणागतपालन एवं कठोरता के साथ कर्तव्य-निर्वाह में हुआ है। वे दयालु हैं, किसी को दुःख नहीं देना चाहते, स्नेहशीलता उनका स्वभाव है, मैत्री का निर्वाह वे जानते हैं सीता उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं फिर भी राजा का कर्तव्य पालन सर्वोपरि है। राम-प्रजारञ्जन के लिये सबका परित्याग करके भी सन्तोष की साँस लेने में विश्वास करते हैं—

'स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥' (१।१२)

'प्रजा के रञ्जनहेतु स्नेह, दया, सुख अथवा यदि सीता भी हो तो उसका परित्याग करने में मुझे दुःख नहीं होता।'

तभी तो अतीत की घटनाओं का स्मरण करके विसंज्ञ होनेवाले कोमल-हृदय राम कर्तव्य के कठोर मार्ग पर चलकर सीता का परित्याग करके प्रस्तर-हृदय बन जाते हैं। वे केवल सत्पति एवं भावुक प्रेमी ही नहीं हैं, राजा भी हैं—कठोरतापूर्वक दण्डविधान का विनियोग करनेवाले महापुरुष—तभी तो वासन्ती कहती है कि राम जैसे अलौकिक पुरुषों के हृदय को कौन समझ सकता है कि कैसे होते हैं—वज्र से भी अधिक कठोर और फूल से भी अधिक कोमल—

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥' (२।७)

राम में आदर्श दाम्पत्य प्रेम है। राजा, आश्रयदाता, पिता, भ्राता, मित्र, शत्रु सभी रूप में राम का आदर्श एवं लोकोत्तर चित्र उपस्थित किया गया है। सीता, लक्ष्मण आदि के चरित का भी समीचीन अङ्कन महाकवि ने किया है।

(५) प्रकृतिवर्णन—भवभूति ने प्रकृति के आन्तर एवं बाह्य दोनों ही रूपों का चित्रण किया है। ऐसा नहीं कि महाकवि की केवल कोमलपक्ष के वर्णन में ही रुचि हो। वे प्रकृति के भयानक, प्रचण्ड एवं उग्ररूप का यथावत् वर्णन करने में भी निष्णात हैं। दण्डकारण्य जहाँ एक ओर स्निग्धश्याम है वहीं दूसरी ओर भयङ्कर विस्तार होने के कारण उद्वेगजनक–भीषणभोगरूक्ष है और झरनों के झञ्झनाते शब्द से युक्त[1]। वहीं पर पक्षियों का शब्द न होने से शान्ति है और वहीं पर हिंस्र जीवों के अति भयानक शब्द हो रहे हैं तो दूसरे स्थान पर स्वेच्छा से सोये हुए बड़े भयानक साँपों के श्वासों से अग्नि प्रदीप्त हो रही है। जहाँ जल कम रह गया है वहाँ गिरगिट अजगरों के पसीने की बूँदों को पी रहे हैं—

'निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः
स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः।
सीमानः प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसो यास्वयं
तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते॥'

नाटक में पशु पक्षियों, वनों, झरनों, नदियों सभी का वर्णन है। भवभूति की प्रकृति समवेदना भी कम नहीं है। राम के दुःख को देखकर पत्थर रोने लगता है और वज्र का हृदय भी विदीर्ण हो जाता है। जड़ पदार्थ भी सीता एवं राम के असह्य दुःख से निरपेक्ष नहीं रह पाते। मुरला एवं तमसा नदियाँ सीता के परित्याग के अनन्तर राम की दयनीय अवस्था के विषय में वार्ता करती हुई दिखलाई पड़ती हैं। मुरला राम के व्यथित हृदय का मार्मिक चित्रण करती हुई कहती है कि राम अत्यधिक गम्भीर हैं, सीता-

---

१—'स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणाभोगरूक्षाः
स्थाने स्थाने मुखरककुभो झाङ्कृतैर्निर्झराणाम्।
एते तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्राः
सन्दृश्यन्ते परिचितभुवो दण्डकारण्यभागाः॥' (२।१४)

परित्याग के कारण होनेवाले असह्य दुःख को वे भीतर ही भीतर दबाये हुए हैं। उनकी वेदना उन्हें भीतर ही भीतर तपा रही है। उफ भी वे नहीं कर सकते, वैसे ही जैसे अग्नि पुटपाक वस्तु को भीतर ही भीतर पकाती रहती है—जलाती रहती है—भस्म करती है—

'अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः॥' (३।१)

पृथिवी एवं गङ्गा सीता एवं उनके पुत्रों की रक्षा करती हैं। सरयू एवं गोदावरी भी नाटक में चेतनवत् चित्रित हुई हैं।

(६) भाषा एवं शैली—भवभूति का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वीररस के वर्णन में क्लिष्ट पदावली, प्रगाढ बन्ध तथा कोमल भावों को व्यक्त करने में सरल भाषा एवं असमस्त पदों का प्रयोग महाकवि ने सफलतापूर्वक किया है। उनके काव्य में व्यञ्जना को भी स्थान प्राप्त हुआ है फिर भी किसी विषय का साङ्गोपाङ्ग वर्णन महाकवि की विशेषता है।

(७) सूक्तियाँ—उत्तर रामचरित सूक्तियों का आगार है। उदाहरणार्थ एक-दो सूक्तियाँ ये हैं—

'तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।'
'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।'
'अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया।' इत्यादि।

६ विशाखदत्त

'मुद्राराक्षस' नामक विख्यात नाटक के रचयिता विशाखदत्त का समय ४र्थ शताब्दी से नवम शताब्दी तक दोलायमान है। मुद्राराक्षस के अंतिम श्लोक के पदद्वय में पाठान्तर है। वहाँ 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' 'पार्थिवो दन्तिवर्मा' तथा 'पार्थिवोऽवन्तिवर्मा' पाठ प्राप्त होते हैं। शारदारञ्जन राय के अनुसार 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' पदों द्वारा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय जिनका समय ३७५ ईसवी सन् से ४१३ ई० सन् तक है, उल्लेख किया गया है। नाटक के पढ़ने से ऐसा अनुमान होता है कि नाटककार ने प्रकारान्तर से चन्द्रगुप्त की प्रशंसा की है। वहाँ बौद्धधर्म का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इन सब तथ्यों की दृष्टि में रखकर विद्वानों का एक वर्ग विशाखदत्त का समय ईसा

की ५ वीं शताब्दी का प्रारम्भ मानता है। 'पार्थिवो दन्तिवर्मा' पाठ के अनुसार कुछ विद्वान् इस नाटक की रचना पल्लव नरेश दन्तिवर्मा (७७९-८३० ई०) के शासनकाल में मानते हैं किन्तु इस मत के पोषक प्रमाण नहीं मिलते। 'पार्थिवोऽवन्तिवर्मा' पाठ को लेकर तैलङ्ग, मैकडानल एवं रैप्सन मुद्राराक्षस को राजा अवन्तिवर्मा के समय से जोड़कर उसे ७ वीं शताब्दी की कृति मानते हैं। याकोबी ज्योतिष के तथ्यों पर इस ग्रन्थ का समय ९ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध मानते हैं।

विशाखदत्त के पिता का नाम महाराज पृथु तथा पितामह का नाम सामन्त वटेश्वरदत्त था।

मुद्राराक्षस—मुद्राराक्षस संस्कृत का अपने ढंग का एक अद्वितीय नाटक है। इसमें नाट्यशास्त्र के नियमों का अक्षरशः पालन नहीं किया गया है। यह नाटक ऐतिहासिक है तथा रस-प्रधान न होकर घटना-प्रधान है। अङ्कों का विभाजन दृश्यों में प्रतीत होता है। स्त्री पात्रों का सर्वथा अभाव है। केवल चन्दनदास की पत्नी एक स्थल पर थोड़ी देर के लिए आती है और विषकन्या का तो उल्लेखमात्र ही है। वह रङ्गमञ्च पर भी नहीं आती। चरित्रचित्रण की दृष्टि से इस नाटक में अन्य नाटकों की अपेक्षा नवीनता है। इसके पात्र वास्तविक एवं आदर्श हैं। विदूषक का सर्वथा अभाव भी इस नाटक का वैशिष्ट्य है। जहाँ अन्य नाटकों में प्रायः शृङ्गाररस की अभिव्यञ्जना रहती है यह नाटक शुद्ध राजनैतिक एवं घटना-प्रधान है। यहाँ शृंगार एवं कामक्रीडा को अवकाश नहीं मिला है।

नाटक का कथासार इस प्रकार है—चाणक्य नन्दवंश का समूल नाश करने की प्रतिज्ञा करता है। वह चाहता है कि नन्दवंश का स्वामिभक्त एवं सुयोग्य मन्त्री राक्षस चन्द्रगुप्त का प्रधानामात्यपद स्वीकार कर ले। विपत्तिग्रस्त राक्षस अपने पुत्र कलत्र को अपने अभिन्न मित्र एवं धनाढ्य व्यक्ति चन्दनदास के पास छोड़ देता है। चन्दनदास के घर के द्वार पर गिरी राक्षस के नाम की अँगूठी चाणक्य के पास पहुँचाई जाती है। चाणक्य की अविश्रान्त कूटनीति का प्रभाव यह होता है कि चन्द्रगुप्त से प्रतिद्वन्द्विता करनेवाले स्वयं फँस जाते हैं, मारे जाते हैं अथवा निगृहीत होते हैं। चन्दनदास राक्षस को शरण देने के अभियोग में निगृहीत होता है। उसे मृत्युदण्ड का

आदेश होता है। चन्दनदास के पुत्र-कलत्र विलाप करते हैं। राक्षस की नामाङ्कित अँगूठी को नन्द की राजमुद्रा के रूप में उपयोग करके चाणक्य अपनी नीति में सफल होता है। राक्षस चाणक्य के समक्ष आत्मसमर्पण करके अपने मित्र चन्दनदास तथा सभी हितैषियों एवं सहायकों के प्राणों की रक्षा करता है इस प्रकार चाणक्य की कूटनीति सफल होती है।

विशाखदत्त में ज्योतिष, काव्यशास्त्र, दर्शन, धर्मशास्त्र एवं राजनीति आदि अनेक शास्त्रों का दुर्लभ पाण्डित्य है। प्राकृत भाषा पर भी उनका असाधारण अधिकार है। दर्शनशास्त्र पर उनके अधिकार की पुष्टि तो श्लेषगर्भित निम्नलिखित श्लोक से ही हो जाती है जिसमें सैन्य एवं हेतु दोनों पक्षों के अर्थों का बोध होता है—

'साध्ये निश्चितमन्वयेन घटितं बिभ्रत् सपक्षे स्थितिं
व्यावृत्तञ्च विपक्षतो भवति यत् तत्साधनं सिद्धये।
यत्साध्यं स्वयमेव तुल्यमुभयोः पक्षे विरुद्धञ्च यत्
तस्याङ्गीकरणेन वादिन इव स्यात् स्वामिनो निग्रहः ॥'

मुद्राराक्षस राजनीतिप्रधान नाटक है। समस्त क्रियायें, घटनायें मात्र चाणक्य की कूटनीति के प्रयोगसाफल्य के निमित्त हैं। गुप्तचरों पर गुप्तचर सक्रिय हैं। सर्वदा जिज्ञासा, भय, अनिश्चितता के दर्शन होते हैं। शत्रुओं की गुरुतर चालों को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली चालों से व्यर्थ कर दिया जाता है। चाणक्य शत्रुओं में परस्पर अविश्वास एवं भेद उत्पन्न करने में सर्वथा सफल होता है। विशाखदत्त चरित्रचित्रण में अतीव सफल नाटककार हैं। चाणक्य असाधारण मेधासम्पन्न त्यागमूर्ति ब्राह्मण है। उसे अपनी बुद्धि एवं पौरुष पर भरोसा ही नहीं गर्व है। वह स्वाभिमान की मूर्ति है और लोभ का तो स्पर्श ही उसे नहीं हो सकता। वह शत्रुराज्य को जीतकर चन्द्रगुप्त को समर्पित कर देता है। उसका त्यागमय जीवन तो निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होता है जिसमें उसके दैनन्दिन जीवन में काम आनेवाली सामग्रियों का उल्लेख किया गया है—

'उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां
वटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम एषः।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभि-
र्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम् ॥' (३।१५)

'गोबर को तोड़नेवाला यह पत्थर का टुकड़ा दिखलाई दे रहा है। यह है ब्रह्मचारियों द्वारा लाया हुआ कुश का ढेर। सूखती हुई समिधाओं के भार से झुके हुए छप्परवाला यह जीर्ण-शीर्ण (चाणक्य का) घर दिखलाई दे रहा है।'

चाणक्य कार्यसिद्धि के निमित्त हत्या, छल आदि के सम्पादन में सङ्कोच नहीं करता तथापि वह गुणों का आदर करता है। वह राक्षस की स्वामिभक्ति, कर्तव्यनिष्ठा एवं योग्यता से प्रभावित है। राक्षस में उक्त गुणों के अतिरिक्त साहस, रणकौशल एवं कृतज्ञता गुण हैं किन्तु क्षिप्रविश्वास के कारण उसकी हार होती है। चन्दनदास को इस बात पर गर्व है कि वह मैत्री, निर्वाह के कारण मृत्यु का आलिङ्गन करने जा रहा है। चन्द्रगुप्त चाणक्य का परम भक्त है। चाणक्य के कृत्रिम क्रोध को वह सत्य समझता है।

यद्यपि नाटक में प्रसाद ओज एवं माधुर्य तीनों गुण विद्यमान हैं तथापि प्रसाद का ही प्राधान्य है। यथा—

'स्वयमाहृत्य भुञ्जाना बलिनोऽपि स्वभावतः।
गजेन्द्राश्च नरेन्द्राश्च प्रायः सीदन्ति दुःखिताः॥' (२।१६)

'स्वयं (साधनसामग्री को) इकट्ठा करके उपयोग करनेवाले राजा और हाथी शक्तिसमन्वित होते हुए भी प्रायः दुःखी होकर कष्ट का अनुभव करते हैं।'

नाटक की गद्य भाषा प्रभावशालिनी है। उसमें सारल्य एवं प्रवाह है—

'सम्यगाप्यस्मिन् वस्तुनि न ध्यानेन स्थीयते, यथाशक्ति क्रियते तदग्रहणं प्रति यत्नः। कथमिति? अद्य तावद् वृषलपर्वतकयोरन्यतर-विनाशेनापि चाणक्यस्यापकृतं भवतीति विषकन्यया राक्षसेनास्माक-मत्यन्तोपकारी मित्रं घातितः तपस्वी पर्वतेश्वर इति सञ्चारितो जगति जनापवादः।' (१।१५-१६)

प्रस्तुत नाटक रङ्गमञ्च के लिए सर्वथा उपयुक्त है। विविध छन्दों की योजना विषय प्रकाशन की दृष्टि में रखकर की गई है।

७ भट्टनारायण

भट्टनारायण की एकमात्र कृति 'वेणीसंहार' नामक नाटक है। ये शाण्डिल्य-गोत्रज ब्राह्मण थे जिन्हें वैदिकधर्म के प्रचार हेतु आदिशूर ने कन्नौज से

बगाल बुलाया था। यह भी कहा जाता है कि भट्टनारायण एक गौड ब्राह्मण परिवार के प्रवर्तक थे। वामन (८०० ईसवी सन्) ने 'काव्यालङ्कार' नामक अपनी कृति मे 'वेणीसहार' से उद्धरण दिये हैं। अत इनका समय ८ वी शताब्दी का प्रारम्भ माना जा सकता है।

वेणीसहार –इसका कथानक महाभारत से लिया गया है। इसमे ६ अङ्क हैं। नाटककार ने कथानक मे यथेच्छ परिवर्तन किया है। दु शासन के द्वारा द्रौपदी के वस्त्र एव केशो के खीचे जाने के कारण उत्तेजित भीम प्रतिज्ञा करते हैं कि वे दु शासन के रक्त को पियेंगे तथा दुर्योधन का वध करके उनके रक्त से द्रौपदी की खुली हुई वेणी बाँधेंगे। दुर्योधन की पत्नी भानुमती एक भयानक स्वप्न देखती है। वह देखती है कि एक नकुल सौ सर्पो का वध करता है। यह स्वप्नदृष्ट घटना एक पाण्डव के द्वारा सभी कौरवो के विनाश का प्रतीक मानी जाती है। भानुमती कहती है कि वह स्वप्न मे नकुल के प्रति आसक्त हो गई और नकुल अनुसरण करने लगा। नकुल ने उसके स्तनावरणो को हटा दिया। इतना सुनकर क्रोध से आगबबूला दुर्योधन भानुमती का वध करने के लिये तलवार खीचता है किन्तु सहसा यह समझने पर कि यह स्वप्न है रुक जाता है। भानुमती के प्रति दुर्योधन शृङ्गारिक भावनाओ को प्रकट करते हैं। घटोत्कच का वध हो जाता है। दुर्योधन को सूचना मिलती है कि भीम ने दु शासन को मारकर प्रतिज्ञा पूराकर लिया तथा कर्ण का पुत्र वृषसेन भी मार दिया गया। दुर्योधन धृतराष्ट्र एव गान्धारी के समझाने पर युद्ध से विरत नही होता किन्तु समस्त सहायको के वध होने पर कार्पण्य भाव का प्राप्त दुर्योधन एक सरोवर मे छिप जाता है। भीम ने दुर्योधन को मार डाला किन्तु एक चार्वाक आकर मिथ्या सूचना देता है कि दुर्योधन ने भीम को मार डाला है। इस समाचार से अवगत होने पर द्रौपदी एव युधिष्ठिर आत्मघात ही करने वाले हैं कि भीम का प्रवेश होता है जो दुर्योधन के उष्ण रक्त से द्रौपदी की चोटी बाँधते हैं।

नाटक मे वीररस की प्रधानता है। चाहे भीम हो अथवा दुर्योधन या अन्य कोई पात्र प्राय सभी वीररसान्वित भाषा का प्रयोग करते हैं। शब्दो मे ओज विचारों मे दृढता एव उग्रता, हृदय मे युद्ध की उत्कट अभिलाषा, विनाश के प्रति रुचि, सहनशीलता का तिरस्कार आदि बहुसख्यक पात्रों की विशेषताएँ हैं। देखिए भीम की दर्पपूर्ण भाषा। वह कहते हैं कि राजा

युधिष्ठिर पाँच गाँव लेकर सन्धि कर लें किन्तु क्या मैं युद्ध में सौ कौरवों को नहीं मारूँगा ? अथवा दुर्योधन के हृदय का रक्त नहीं पीऊँगा ? और क्या दुर्योधन की जाँघ को चूर-चूर नहीं कर दूँगा ?—

'मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपात्
दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः ।
सञ्चूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू
सन्धिं करोतु भवता नृपतिः पणेन ॥' (१।१५)

शृङ्गार एवं करुण रस का भी चित्रण नाटक में हुआ है। शान्तरस का भी उदाहरण दुर्लभ नहीं है। नाटक का अपर वैशिष्ट्य घटना-बाहुल्य है जिससे कथानक में जटिलता आ गई है। विकट समासबन्ध के प्रयोग से नाटक में चारुता कम हो गई है। कहीं-कहीं वर्णन का आधिक्य है जिससे पात्रों के चरित्र पर विशद प्रकाश डालने का अवसर सुलभ नहीं हो सका है। नाटक के अन्त में दुर्योधन पर एक के पश्चात् दूसरी आपत्ति आती है। वह निराश, किंकर्तव्यविमूढ़ एवं पलायनवादी बन जाता है और अन्त में भीम के हाथों उसका वध होता है। वेणीसंहार का नायक दुर्योधन ही है और उसका वध नाटक के अन्त में होता है *अतः नाटक दुःखान्त हो जाता* है। तथापि यदि दर्शकों का भीम एवं अन्य पाण्डवों के प्रति सहानुभूति हो और दुर्योधन के छल-कपट के कारण उनके प्रति विद्वेष हो तो नाटक को दुःखान्त नहीं माना जा सकता।

सारांश यह है कि ओजोगुणविशिष्ट 'वेणीसंहार' अपने युग का एक अनूठा नाटक है।

८ मुरारि

'अनर्घराघव' नाटक के रचयिता मुरारि के पिता का नाम वर्धमानक एवं माता का नाम तन्तुमती देवी था। 'उत्तररामचरित' के दो श्लोक 'अनर्घ-राघव' में उद्धृत किये गये हैं अतः मुरारि भवभूति (७०० ईसवी सन्) से परवर्ती हैं। रत्नाकर अपनी कृति हरविजय महाकाव्य (३८।६८) में मुरारि की ओर संकेत करते हैं इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मुरारि रत्नाकर (८५० ई० सन्) से पूर्ववर्ती हैं। इस प्रकार मुरारि का समय ८०० ईसवी सन् के लगभग स्थिर होता है।

अनर्घराघव—जैसा कि नाटक के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है यह रामकथा पर आश्रित है। इसमे ७ अक हैं। प्रस्तावना मे मुरारि प्रतिज्ञा करते हैं कि भयानक एव बीभत्स जैसे प्रचण्ड रसो से उद्विग्न प्रेक्षको के निमित्त वे अद्भुत एव वीररस समन्वित नाटक का प्रणयन कर रहे हैं। *तथापि कवि का प्रयास उतना सफल नहीं रहा। ग्रन्थ भवभूति के 'महावीर-चरित'* से प्रभावित है। इस ग्रन्थ का प्रारम्भ ताडकावध से होता है और समाप्ति रामराज्याभिषेक की घटना से होती है। बीच मे रामायण की कथायें हैं। विश्वामित्र की याचना पर पुत्रवत्सल दशरथ राम एव लक्ष्मण को धर्मरक्षणार्थ मुनि के साथ भेजते हैं। राम ताडका का वध करते हैं।

मुरारि ने रूढिगत घटनाओ में कल्पना का पुट देकर परिवर्तन भी किया है। परशुराम से राम का विवाद होने पर राम के धनुष की टङ्कार को सीता सुनती हैं। वह सोचती हैं कि कही ऐसा तो नही कि राम दूसरा धनुष तोडकर दूसरी पत्नी को ग्रहण करने जा रहे हो। शूर्पणखा, मथरा, सीताहरण, जटायु, मारीच आदि की घटनाओं का उल्लेख है जिनमे कही-कही कवि कल्पनाप्रसूत परिवर्तन भी है। वालि का वध एव सुग्रीव का राज्याभिषेक, सेतुबन्ध, राम की सेना का लङ्काप्रवेश, मेघनाद कुम्भकरण और रावण का वध आदि से सम्बद्ध घटनायें अङ्कित हैं। सप्तम अङ्क मे राम-सीता का मिलन तथा विभीषण एव लक्ष्मण के साथ उनका अयोध्या-गमन उल्लिखित है। मार्ग में अनेक पर्वत, नदी तथा नगर पड़ते हैं। अयोध्यावासी आगत व्यक्तियो को देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। वसिष्ठ राम का राज्याभिषेक करते हैं।

मुरारि के काव्य मे प्रौढता है। गुण ओज है। उसमे वह कोमलता नही है जो कालिदास के काव्य में है, वह भावाभिव्यक्ति नही है जो भवभूति के काव्य मे है। मुरारि को भाषा पर पूर्ण अधिकार है। व्याकरण के वे *उद्भट विद्वान् हैं। भट्टोजि दीक्षित अपनी विश्रुत कृति सिद्धान्तकौमुदी म* अनर्घराघव से उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इस कथन का यह अर्थ नहीं कि मुरारि में काव्य प्रतिभा का अभाव है। उनकी प्रतिभा एव मौलिकता से प्रभावित होकर ही उनके विषय मे *'मुरारेस्तृतीय. पन्था.' कहा जाता* है। मुरारि के पद्यो मे निहित नादसौ दर्य भी कम आकर्षक नही है। कवि

की कल्पना कहीं-कहीं पूर्णतः नूतन है। राम सीता से कहते हैं कि हे कदली के समान जघनों वाली सीते! जब तुम्हारे मुख के साथ तौलने के लिये चन्द्रमा को पलड़े पर रखा गया तो देखा गया कि चन्द्रमा में गौरव कम है। उसे पूरा करने के लिये ये प्रतिमान (पासंग) रूप में निखरे हुये चमकते तारे रख दिये गये—

'अनेन रम्भोरु भवन्मुखेन
तुषारभानोस्तुलया धृतस्य।
ऊनस्य नूनं परिपूरणाय
ताराः स्फुरन्ति प्रतिमानखण्डाः॥' (७।८७)

मुरारि ने गुरुगृह जाकर अनेक कष्टों को सहन करके बड़े त्याग एवं तप द्वारा विद्या का अर्जन किया था। उनका कथन है कि अध्ययन तो सभी करते हैं किन्तु विद्या का रहस्य—तत्त्व घोर परिश्रम द्वारा उसे अर्जित करने वाला मुरारि ही जानता है। वानरों ने सेतु द्वारा समुद्र पार कर लिया किन्तु समुद्र है कितना गहरा यह तो मन्दराचल ही जानता है जिसका भारी-भरकम शरीर समुद्र में पाताल तक धँस गया था—

'देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारं तु सारस्वतं
जानीते नितरामसौ गुरुकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः।
अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरता—
मापातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचलः॥'

९ दामोदर

कि पहले हनुमन्नाटक को हनुमान् जी ने लिखा था। परन्तु जब वाल्मीकि की रामायण की रचना हुई और यह समझकर कि हनुमन्नाटक के वर्तमान रहते वाल्मीकि रामायण जैसे शुष्क ग्रन्थ को कौन पढ़ेगा, हनुमन्नाटक, जो शिलाओं पर लिखा हुआ था, समुद्र में फेंक दिया गया। फिर कभी भोज ने खोज करवाई। जो भी अवशेष मिले उन्हें आधार बनाकर दामोदर ने नाटक की पूर्ति की।

ग्रन्थ मे वीर श्रृङ्गार एव करुणरसो का पुट अधिक है। भाषा मे प्रसाद एव ओज गुण, अति विलष्ट विकट गद्यबन्ध, नवीन कल्पनायें, रोचक उत्तर-प्रत्युत्तर, वर्णननैपुण्य ग्रन्थ में देखने को मिलता है। एक-दो उदाहरण दिये जा रहे हैं—

निद्रागत कमलनयनी सीता स्तनो के ऊपर करकमल को रखे हुए हैं, कहीं हृदयस्थित राम निकल कर चले न जायें इस शङ्का से—

> 'भाति स्म चित्तस्थितरामचन्द्र
> सारुन्धती निर्गमशङ्कयेव।
> स्तनोपरि स्थापितपादपद्मा
> सञ्जातनिद्रा सरसीरुहाक्षी॥' (२।१५)

सीता का हरण हो गया। शोकविह्वल पगलाये राम वृक्षो लताओं से पूछ रहे हैं कि उनकी प्राणप्रिया सीता को कौन ले गया? किसी ने देखा—

> 'रे वृक्षा पर्वतस्था गिरिगहनलता वायुना वीज्यमाना
> रामोऽहं व्याकुलात्मा दशरथतनय. शोकशुक्रेण दग्ध।
> बिम्बोष्ठी चारुनेत्री सुविपुलजघना बद्धनागेन्द्रकाञ्ची
> हा सीता केन नीता ममहृदयगता को भवान् केन दृष्टा॥'

परशुराम के फर्से का वर्णन देखिये—

> 'येन नि सम्कृत्वा नृपवहलवसामासमस्तिष्कपङ्क—
> प्राग्भारेऽकारि भूरिच्युतरुधिरसरिद्वारिपूरेऽभिषेकः।
> यस्य स्त्रीबालवृद्धावधि निधनवधौ निर्दयो विश्रुतोऽसौ
> राजन्योच्चासकृटकथनपटुरटद्घोरधारः कुठारः॥'(१।३३)

(इसका यह वही प्रसिद्ध फर्सा है जिसने इक्कीसबार स्त्रियो-बालकों एव वृद्धों तक के सिरो को काट लेने से गिरे हुये रक्त की नदी के प्रवाह मे,

जिसमे राजाओं की चर्बी माँस एवं मज्जा का दलदल भरा पड़ा था, स्नान किया था तथा जिस फर्से की भयानक धार क्षत्रिय राजाओं के उचस्कन्ध-रूप पर्वतों को फाड़ने मे तीव्र शब्द करती है।)

१० राजशेखर

राजशेखर ने 'कर्पूरमञ्जरी', 'विद्धशालभञ्जिका', 'बालरामायण' तथा 'बालभारत' (प्रचण्डपाण्डव) इन ४ नाटक ग्रन्थों की रचना की है। इनके अतिरिक्त उन्होंने 'काव्यमीमांसा' नामक अलङ्कार ग्रन्थ तथा 'हरविलास' नामक महाकाव्य की रचना की है। ये महाराष्ट्र देश के निवासी थे। इनके पिता का नाम दर्दुक एवं माता का नाम शीलवती था। ये यायावर नामक क्षत्रिय वंश मे उत्पन्न हुये थे। इनकी पत्नी का नाम अवन्ति सुन्दरी था जो सुशिक्षिता थी। 'काव्यं यशसेऽर्थकृते' के उद्देश्य से वे महाराष्ट्र से कान्यकुब्ज (कन्नौज) आये थे। इनके पिता एक यशस्वी व्यक्ति थे। राजशेखर ने अपने नाटकों मे अपने को महेन्द्रपाल अथवा निर्भयराज नामक राजा का गुरु बतलाया है। महेन्द्रपाल और निर्भयराज एक ही व्यक्ति हैं जिनका समय एक शिलालेख से ६०३-६०८ ई० के लगभग सिद्ध होता है अतः राजशेखर का भी समय दसवी शताब्दी का पूर्वार्ध निश्चित होता है।

१. कर्पूरमञ्जरी—इसमे चार अङ्क हैं। यह उपरूपक का एक प्रभेद-'सट्टक' है। 'सट्टक' पूरा का पूरा प्राकृत मे होता है। इसमें प्रवेशक और विष्कम्भक नही होते। अद्भुत रस प्रचुर मात्रा मे होता है और उसके अङ्क को जवनिका कहते हैं।

कर्पूरमञ्जरी का कथानक इस प्रकार है—वसन्तवर्णन के पश्चात् राजा चन्द्रपाल के विदूषक के साथ भैरवानन्द नामक योगी का प्रवेश होता है जो अपने योगबल से एक राजकुमारी को सबके सम्मुख लाकर दिखला देता है। राजा राजकुमारी के अनुपम लावण्य पर मुग्ध हो जाता है। इस राजकुमारी का नाम है—'कर्पूरमञ्जरी' जो रानी की मौसी की पुत्री है रानी की प्रार्थना पर भैरवानन्द कुछ समय के लिए राजकुमारी को रानी के पास छोड़ देता है। कर्पूरमञ्जरी एवं राजा एक दूसरे के प्रति आकृष्ट एवं विरह से पीड़ित होते हैं। हिंदोलन चतुर्थी के अवसर पर वे एक दूसरे को छुप-छिपकर देख पाते हैं। राजा और विदूषक अपने-अपने

स्वप्नो का वर्णन करते हैं। राजा ने स्वप्न मे कर्पूरमञ्जरी को देखा लेकिन वह भाग निकली और स्वप्न भङ्ग हो गया।

विदूषक अपने स्वप्न का वर्णन इस प्रकार करता है—मैं गङ्गा में सो गया। वहाँ मेघो ने मुझे निगल लिया। मेघ बरसे और सीपियो ने मुझे पी लिया मैं मोती बना। मोतियों का हार बनाया गया जिसे पाञ्चाल देश की रानी ने पहना। ज्योत्स्नाक्षालित रात्रि मे राजा ने रानी का जब प्रगाढालिङ्गन किया तो मैं दब गया और जाग पड़ा।

विदूषक एवं राजा में वार्ता हो रही थी कि संयोगवश कर्पूरमञ्जरी के दर्शन होते हैं। राजा के हस्तस्पर्श से उसे पसीना आ जाता है। राजा हवा करता है जिससे दीपक बुझ जाता है। दोनो सुरग द्वारा प्रमदोद्यान चले जाते हैं जहाँ राजा उसका आलिंगन करता है। रानी कर्पूरमञ्जरी की पहरेदारी मे कठोरता बरतती है। रानी गौरी की प्रतिष्ठा भैरवानन्द से करवाती है और दक्षिणा के लिए आग्रह करती है। भैरवानन्द कहते हैं कि आप घनसारमञ्जरी के साथ राजा का विवाह करा दें। ऐसा ही किया जाता है। बाद मे इस रहस्य का उद्घाटन होता है कि कर्पूरमञ्जरी ही घनसारमञ्जरी है।

नाटक का नायक चन्द्रपाल धीरललित नायक है। शृङ्गार रस की प्रधानता है। भाषा का लावण्य सर्वत्र दर्शनीय है। वसन्तऋतु का वर्णन भी उत्कृष्ट है प्रणय सम्बन्धी मनोभावो के चित्रण विशद हैं। अद्भुत रस का पर्याप्त विनिवेश है। पद्य महाराष्ट्री मे और गद्य शौरसेनी प्राकृत में लिखा हुआ है। हास्यरस का भी पर्याप्त पुट पाया जाता है। नाटक ऐतिहासिक, सामाजिक एव सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। राजशेखर के शब्दों मे 'कर्पूरमञ्जरी' नामक सट्टक की व्याख्या इस प्रकार है'—
'अहो! कप्पूरमंजरीए अहिणवत्थदसण रमणीओ सद्दो, उत्तिविचित्तदा, रसणिस्सदो अ'[1] (कर्पूरमञ्जरी ३।३१-३२)

(२) विद्धशालभञ्जिका—चार अङ्कों की नाटिका है। लाट नरेशचन्द्र वर्मा अपनी पुत्री मृगाङ्कावली को अपना मृगाङ्कवर्मन पुत्र कहकर पुत्र के

१-संस्कृत छाया '—अहो! कर्पूरमञ्जर्या अभिनवार्थदर्शनं, रमणीयः शब्दः, उक्तिविचित्रता, रसनिष्यन्दश्च।'

ही वेश में विद्याधर की रानी के समीप भेज देते हैं। रानी चाहती है कि मृगाङ्कवर्मन का विवाह राजकुमारी कुवलयमाला के साथ कर दिया जाये। राजा स्वप्न में एक सुन्दरी बाला को देखकर मुग्ध हो जाता है और मृगाङ्कावली का चिन्तन करता रहता है। राजा के मंत्री भागुरायण को यह ज्ञान था कि यह लड़का नहीं लड़की है और जिसके साथ इसका विवाह होगा वह सार्वभौम राजा होगा। कुपित रानी मृगाङ्कवर्मन को स्त्री का वेश धारणकर कर राजा के साथ विवाह करवा देती है किन्तु रहस्य का उद्भेद होने पर रानी कर ही क्या सकती थी? कुवलयमाला का भी विवाह राजा से करा दिया जाता है।

(३) बालरामायण—दस अङ्कों का महानाटक। सीतास्वयम्वर में आगत रावण धनुष चढ़ाने का प्रयास नहीं करता। वह परशुराम को राम के विरुद्ध उकसाता है। रावण को सीता की मूर्ति दी जाती है जिसे वह वास्तविक समझता है और बाद में निराश होता है। लङ्का को कूच करने वाली राम की सेना के आगे रावण माया द्वारा सीता का कटा सिर देखता है। राम रावण को मारकर अयोध्या वापस आ जाते हैं।

१९ दिङ्नाग

'कुन्दमाला' नामक नाटक को दिङ्नाग की कृति बतलाया जाता है। विद्वानों का मत है कि 'कुन्दमाला' के रचयिता दिङ्नाग उन बौद्धाचार्य 'दिङ्नाग' से भिन्न हैं जिन्होंने प्रमाणसमुच्चय, न्यायप्रवेश, हेतुचक्रहमरु, आलम्बनपरीक्षा, त्रिकालपरीक्षा, आदि ग्रन्थों की रचना की है। कारण, 'कुन्दमाला' का रचयिता दिङ्नाग (जिसके धीरनाग तथा धीरनाग नाम भी हैं) की पौराणिक हिन्दूधर्म में दृढ़ आस्था है। अन्तरङ्ग प्रमाणों के आधार पर प्रतीत होता है कि दिङ्नाग कर्मकाण्डी सामवेदी ब्राह्मण है जिसे देवी-देवताओं पर पूर्ण विश्वास है। ग्रन्थों के प्रारम्भ में इन्होंने गणेश एवं शिव की स्तुति भी की है। इन्हें सङ्गीत से प्रेम था तथा व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि अनेक शास्त्रों का परिपक्व ज्ञान था। कुन्दमाला पर उत्तररामचरित (७०० ई० सन्) का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई पड़ता है तथा सर्वप्रथम 'कुन्दमाला' का उल्लेख गुणचन्द्र रामचन्द्र (११०० ई० सन्) के

'नाट्यदर्पण मे हुआ है। अत दिङ्नाग का समय ७०० ई० सन् से ११०० सन् के मध्य कहीं रहा होगा।

कुन्दमाला—नाटक में ६ अङ्क हैं। कथा का सार इस प्रकार है—लोकापवाद के कारण राम की आज्ञा से सीता का परित्याग किया जाता है। दु.ख से अभिभूत सीता आत्महत्या के लिये उद्यत होती है किन्तु लक्ष्मण उन्हें समझाते हैं कि राम को आपके चरित्र पर अणुमात्र सन्देह नहीं है किन्तु लोकापवाद के कलङ्क से मुक्त होने के लिए उन्होंने ऐसा किया है। उनका आपके प्रति प्रगाढ प्रेम है और वे तपस्वी की भाँति जीवन व्यतीत करते हैं। वे दूसरा विवाह भी न करेंगे। वाल्मीकि योगशक्ति द्वारा सब कुछ समझ जाते हैं एव निर्दोष सीता को आश्रय देते हैं। सीता गङ्गा से प्रार्थना करती हैं कि यदि सकुशल प्रसव हुआ तो वे उन्हें प्रतिदिन कुन्दपुष्पों की एक माला उपहार स्वरूप दिया करेंगी।

लव और कुश बडे होकर रामायण का पाठ करने लगे। राम नैमिषारण्य मे अश्वमेध यज्ञ करते हैं जिसमे वाल्मीकि प्रभृति ऋषियों को निमन्त्रित करते हैं। सीता भी लव-कुश के साथ नैमिष पहुँचती हैं। गोमती का किनारा है। सीता के निर्वासन से सतप्त राम लक्ष्मण से अपनी असह्य वेदना प्रकट कर रहे हैं। वे देखते हैं कि नदी की धारा में एक कुन्दमाला बह रही है। राम कल्पना करते हैं कि यह कुन्दमाला सीता द्वारा गुँथी होगी। वे सीता की खोज में निकलते हैं। कोमल पदचिह्नों को देखकर उन्हें सीता के पद चिह्न मानते हैं। आगे चलकर कठोर भूमि पर पदचिह्न लुप्त हो जाते हैं। तब निराश राम अतीव व्यग्र हो जाते हैं। सीता कुञ्ज में छिपी सब कुछ देख रही है। सीता राम के सम्मुख जाने में अपने को नहीं रोक पा रही है। इसी समय वाल्मीकि के द्वारा भेजे गये बादरायण राम और लक्ष्मण को बुला ले जाते हैं।

राम कभी टहलने निकलते हैं और धुएँ से पीडित नेत्रों को बावली में धोने जाते हैं। वे वहाँ जल में सीता का प्रतिबिम्ब देखते हैं और मूर्छित हो जाते हैं। सीतारूपधारिणी तिलोत्तमा नामक अप्सरा स्पर्श से उन्हें सचेत करती है। राम को यह घटना विदूषक से ज्ञात होती है। सभा मण्डप में दो बालक जिनकी आकृति राम एव लक्ष्मण से मिलती-जुलती है, रामायण सुनाते आते हैं। राम का उनके प्रति अतीव आकर्षण है। वे उन्हें सिंहासन पर बैठा लेते हैं। विदूषक ऐसा करने से मना करता है क्योंकि सूर्य-

वंशियों के अतिरिक्त सिंहासन पर बैठनेवाले का सिर तत्काल चूर-चूर हो जाता है। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। वार्ताप्रसङ्ग से शनैः-शनैः ज्ञात होता है कि ये युग्म बालक राम-सीता के पुत्र हैं। पृथ्वी सीता की निष्कलङ्कता को प्रमाणित करती है। राम सीता को स्वीकार करते हैं। कुश को सम्राट् का पद और लव को युवराज का पद दिया जाता है।

रामायण की कथा से कुन्दमाला में अनेक परिवर्तन किये गये हैं। उत्तररामचरित तथा कुन्दमाला के कथानक में भी पर्याप्त अन्तर है। भाषा सरल एवं प्रसादपूर्ण है। अलङ्कार स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। उनसे रस-निष्पत्ति अथवा अर्थावबोध में व्याघात नहीं उत्पन्न होता। व्याकरण सम्बन्धी कुछ दोष भी प्राप्त होते हैं। भाषा में माधुर्य, कथनोपकथन में रोचकता, कथा में उत्सुकता, पात्रों में अपना व्यक्तित्व, मनोभावों का सफल अङ्कन, प्रकृति-चित्रण में कौशल—ये विशेषताएँ ग्रन्थ में निहित हैं। करुण रस एवं अन्तर्वेदना का मनोरम चित्रण दिङ्नाग ने किया है। वे मर्मस्थलों पर सीधा एवं प्रखर प्रहार करना जानते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है। भूमि पर बने पद-चिह्नों को देखकर राम कहते हैं कि ये पदचिह्न अवश्य ही सीता के होंगे क्योंकि चरणों की आकृति वैसी ही है जैसी सीता के चरणों की है। कोमल एवं सुन्दर बनावट, रेखाचित्रित कमल और सबसे बड़ा प्रमाण यह कि इस पदपङ्क्ति को देखकर मेरा शोकविधुर मन आकृष्ट होता है—

'समानं संस्थानं निभृतललिता सैव रचना,
तदेवं तद्रेखाकमलरचितं चारु तिलकम्।
यथा चेयं दृष्टा हरति हृदयं शोकविधुरं,
तथा ह्यस्मिन् देव्या सपदि पदपङ्क्तिर्विनिहिता ॥'(३।११)

१२ कृष्ण मिश्र

प्रबोधचन्द्रोदय—इस नाटक मे ६ अङ्क हैं। मानव हृदय के अन्तर्द्वन्द्वों का सफल चित्रण इस दार्शनिक नाटक मे हुआ है। मन की दो पत्नियाँ हैं—प्रवृत्ति एवं निवृत्ति। प्रवृत्ति से मोह का जन्म होता है और निवृत्ति से विवेक का। मोह एवं विवेक मे परस्पर विरोध है। जहाँ विवेक के पक्ष में शान्ति श्रद्धा आदि अनेक व्यक्ति हैं वही मोह के पक्ष मे काम, तृष्णा, लोभ, हिंसा आदि हैं। विवेक के मन्त्री यम-नियम हैं।

दैवी एवं आसुरी शक्तियों मे सघर्ष दिखलाना नाटककार का प्रमुख उद्देश्य है। अद्वैत वेदान्त को ही सर्वोपरि दर्शन सिद्ध किया गया है। इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं—काम, रति, विवेक (राजा), मति (रानी), दम्भ, अहङ्कार, महामोह, चार्वाक, क्रोध, लोभ, हिंसा, विभ्रमावती, मिथ्यादृष्टि, शान्ति, करुणा, दिगम्बर, श्रद्धा, भिक्षु, क्षपणक, सोमसिद्धान्त, कापालिक, मैत्री, वस्तुविचार, क्षमा, सन्तोष, विष्णुभक्ति, मन, सङ्कल्प, सरस्वती, वैराग्य, पुरुष, उपनिषद्। अमूर्तभावों के मानवीकरण द्वारा अद्वैत-तत्त्व की न्याय, सांख्य, कापालिक, क्षपणक, मीमांसा आदि सभी पर विजय दिखलाई गई है तथा विष्णुभक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है। दर्शन के कठिन तत्त्वों की भी सरल भाषा मे व्याख्या प्रस्तुत की गई है। पाखण्डियों और दम्भियों के क्रियाकलापों का भण्डाफोड किया गया है। कवि जिस विषय का वर्णन करता है उसका यथातथ्य चित्र उपस्थित कर देता है। देखिये क्रोध अपने प्रभाव का वर्णन करता हुआ कहता है—

'अन्धीकरोमि भुवन बधिरीकरोमि, धीर सचेतनमचेतनता नयामि।
कृत्य न पश्यति न येन हित शृणोति, धीमानधीतमपि न प्रतिसदधाति॥
(२।२९)

'मैं ससार को अन्धा और बहरा बना देता हूँ। धीर एव विद्वान् को मूर्ख बना देता हूँ जिससे न वह कर्तव्य को देखता है, न हितकारी बात को सुनता है। बुद्धिमान् होकर भी वह पढ़े लिखे हुए (विषय) को भूल जाता है।'

१३ जयदेव

जयदेव ने 'प्रसन्नराघव' नामक नाटक की रचना की। यह वही जयदेव हैं जिन्होंने 'चन्द्रालोक' सज्ञक अलकार ग्रन्थ को लिखा। ध्यान देर

'प्रसन्नराघव' के रचयिता जयदेव का समय १२०० ई० सन् के लगभग माना जाता है। विदर्भदेश का कुण्डिनपुर नगर इनका निवासस्थान था। इनके पिता का नाम महादेव तथा माता का नाम सुमित्रा था। जयदेव कोमल काव्य की रचना में सक्षम होने के साथ ही साथ कर्कश तर्कशास्त्र में भी अतीव प्रवीण थे।

प्रसन्नराघव—'प्रसन्नराघव में ७ अंक हैं। इसका कथानक रामायण से लेकर उसमें बहुत मौलिक परिवर्तन कर लिये गये हैं जिससे नाटक की चारुता में अभिवृद्धि हुई है। नाटक के आरम्भ में बाणासुर तथा रावण दोनों ही सीता को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं तथापि असफल हो जाते हैं फलतः खिन्न होकर उपहास के पात्र बनते हैं। सीता स्वयंवर तथा राम-परशुराम संवाद में ग्रन्थकार ने पर्याप्त रुचि प्रदर्शित की है। वासन्ती लता एवं सहकार वृक्ष के संयोग के व्याज से सीता एवं राम अपने भावी मिलन की लालसा व्यक्त करते हैं। राम के वनवास से प्रारम्भ करके सीता-हरण तक के कथानक का वर्णन कवि ने नदियों के माध्यम से करवाया है। विद्याधर राम को अपनी माया से प्रसूत लङ्का के दृश्यों को दिखलाते हैं। रावण प्रणयप्रार्थना को अस्वीकार करने वाली सीता पर ज्यों ही घातक प्रहार करना चाहता है कि अपने पुत्र अक्ष का कटा हुआ सिर देखकर हतक्रिय हो जाता है। अन्त में राम रावण को मार डालते हैं और अयोध्या वापस आ जाते हैं।

जयदेव की भाषा पर पूर्ण अधिकार था। भाषा में माधुर्य एवं प्रसाद गुण सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। इनके काव्य की अपर विशेषता है सूक्तियों का बाहुल्य। असाधारण पुरुषों के चरित का वर्णन करने वाली कविता की रचना करने पर जो सन्तोष—जो आनन्द कवि को होता है वह आनन्द ब्रह्मविद्या या राजलक्ष्मी की प्राप्ति में नहीं होता। उस आनन्द की तुलना तो सत्पात्र को दी गई कन्या से होनेवाले सन्तोष से ही की जा सकती है। 'प्रसन्नराघव' का सूत्रधार कहता है—

'न ब्रह्मविद्या न च राजलक्ष्मीस्तथा यथेयं कविता कवीनाम्।
लोकोत्तरे पुंसि निवेद्यमाना पुत्रीव हर्षं हृदये करोति॥'

अध्याय ५

गद्यकाव्य

संस्कृत गद्यकाव्य का उद्भव—प्राचीनतम संस्कृत गद्य के दर्शन (१) 'यजुर्वेद' में होते हैं। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, काठक, मैत्रायणी आदि संहिताओं का पर्याप्त अंश गद्य में प्रथित है। तैत्तिरीय संहिता में तो गद्य प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। तदनन्तर (२) 'अथर्ववेद' में गद्य का प्रयोग हुआ है। तत्पश्चात् (३) 'ब्राह्मण' ग्रन्थों का गद्य है। समस्त ब्राह्मण ग्रन्थों का निर्माण गद्य में ही हुआ है। (४) 'आरण्यकों' तथा (५) 'उपनिषदों' का पर्याप्त अंश गद्य में लिखा हुआ प्राप्त होता है। इस प्रकार वैदिककाल में काल-क्रम एवं भाषा की दृष्टि से गद्य के प्रायः पाँच सोपान प्राप्त होते हैं। सभी सोपानों में गद्य अपना वैशिष्ट्य लिए हुए है।

महर्षि यास्क (७०० ईसा पूर्व) की रचना (६) निरुक्त (७) महाभारत पतञ्जलि (१५० ईसा पूर्व) द्वारा रचित (८) महाभाष्य में सुष्ठु गद्य के दर्शन होते हैं। दर्शन के सूत्र-ग्रन्थ—(९) न्यायसूत्र, (१०) वैशेषिक सूत्र, (११) योगसूत्र, (१२) पूर्वमीमांसा सूत्र तथा (१) वेदान्त सूत्र सभी गद्य में लिखे गए हैं। इसके अतिरिक्त दर्शन के स्वतंत्र एवं टीकाग्रन्थ, ज्योतिष, व्याकरण आदि के ग्रन्थों में गद्य की उपलब्धि होती है। किन्तु गद्य की अपेक्षा पद्य में ही अधिक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है तथा उक्त गद्य अधिक साहित्यिक एवं आलङ्कारिक नहीं है विभिन्न (१४) शिलालेखों में भी गद्य के दर्शन होते हैं। यह गद्य अपेक्षाकृत अधिक विकसित, साहित्यिक एवं आलङ्कारिक है।

हमें साहित्यिक गद्य के दर्शन दण्डी, सुबन्धु एवं बाण की कृतियों में होते हैं और वह भी पूर्णतः विकसित अवस्था में। किन्तु पूर्णतः अविकसित गद्य के पश्चात् पूर्ण विकसित गद्य की रचना हो सकनी प्रायः असम्भव है। अतः दण्डी सुबन्धु एवं बाण के पहले बहुत सी ऐसी गद्यकृतियाँ होंगी जो कालक्रम में नष्ट हो गई होंगी क्योंकि—(१) गद्य में होने के कारण उन्हें कण्ठाग्र करना कठिन था। बाण आदि के प्रौढ एवं गुणसमन्वित गद्यकाव्य

की अपेक्षा उनका महत्त्व कम हो गया होगा और काव्यरसिकोंने उनकी उपेक्षा कर दी होगी।

कतिपय गद्य ग्रन्थों का उल्लेख विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है किन्तु ये गद्यग्रन्थ प्राप्त नहीं हैं। कात्यायन (३०० ई० पू०) ने 'वार्तिक' में गद्यकाव्य के एक प्रभेद—'आख्यायिका' का उल्लेख किया है—'लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्', 'आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च' और पतञ्जलि ने महाभाष्य में तीन आख्यायिकाओं का उल्लेख किया है। ये हैं—'वासवदत्ता', 'सुमनोत्तरा' एवं 'भैमरथी'। बाण ने अपनी कृति 'हर्षचरित' में भट्टारहरिश्चन्द्र नामक श्रेष्ठ गद्यकार का उल्लेख किया है[1] किन्तु उनकी कोई कृति प्राप्त नहीं होती। इसी प्रकार वररुचिरचित 'चारुमती' रामिल-सोमिल रचित 'शूद्रककथा' एवं श्रीपालित-रचित 'तरङ्गवती' नामक ग्रन्थ भी आज प्राप्त नहीं होते किन्तु इससे इन ग्रन्थों तथा ऐसे ही असख्य उत्कृष्ट गद्यग्रन्थों के अस्तित्व की निर्विवाद पुष्टि होती है।

दण्डी

उपलब्ध साहित्यिक गद्य के सर्वप्राचीन कवि दण्डी माने जाते हैं। ये प्रसिद्ध गद्यकाव्य 'दशकुमारचरित' के रचयिता हैं। राजशेखर के अनुसार इन्होंने तीन ग्रन्थ लिखे थे[2]। (१) दशकुमारचरित एवं (२) काव्यादर्श प्राय दोनों ग्रन्थों को विद्वान् दण्डी की रचना मानते हैं। 'काव्यादर्श' अलङ्कार शास्त्र का ग्रन्थ है। कुछ विद्वान् इन दोनों ग्रन्थों को एक ही विद्वान् की रचना नहीं मानना चाहते हैं क्योंकि 'काव्यादर्श' में प्राप्त नियमों का उल्लङ्घन 'दशकुमारचरित' में उपलब्ध होता है। दण्डी की तृतीय कृति कौन सी है ? इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वान् 'काव्यादर्श' में उल्लिखित 'छन्दोविचिति' अथवा 'कलापरिच्छेद' में से किसी कृति का दण्डी की रचना मानते हैं परन्तु ये दोनों कृतियाँ दण्डी से पूर्ववर्ती किसी या किन्हीं अन्य कवियों के अलङ्कार ग्रन्थ हो सकते हैं। पिशेल के इस मत का भी

१—'भट्टारहरिश्चन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते'

२—'त्रयोऽग्नयस्त्रयोदेवास्त्रयोवेदास्त्रयोगुणा ।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥' (शार्ङ्गधरपद्धति)

खण्डन हो चुका है कि दण्डी की तृतीय कृति 'मृच्छकटिक' है। 'अवन्तिसुन्दरी-कथा' को अधिकांश विद्वान् दण्डी की तृतीय रचना मानने के पक्ष में हैं।

अवन्तिसुन्दरी कथा के अनुसार महाकवि भारवि के अन्तरङ्ग मित्र दामोदर दण्डी के प्रपितामह थे। कुछ लोगों का कथन है कि भारवि का ही दूसरा नाम दामोदर था। दामोदर का पुत्र मनोरथ और मनोरथ का पुत्र वीरदत्त था। वीरदत्त ही दण्डी के पिता थे। दण्डी की माता का नाम गौरी था। दण्डी के बाल्यकाल में ही उनके माता पिता का स्वर्गवास हो गया था। दण्डी ब्राह्मण थे। इनका निवास-स्थान काञ्ची था।

दण्डी के समय के विषय मे विद्वद्वर्ग एकमत नही है। ७ वीं से लेकर ९ वीं शताब्दी तक इनका स्थान दोलायमान है। विद्वानों के इस विषय पर भी मतैक्य नही है कि दण्डी बाण से पूर्ववर्ती हैं या पश्चाद्वर्ती। जहाँ एक विद्वान् की दृष्टि में दण्डी सर्वप्राचीन काव्यप्रणेता हैं वही दूसरा विद्वान् उन्हें बाण के काव्य से प्रभावित मानता है। दण्डी के नाम का उल्लेख ९ वीं शताब्दी के ग्रन्थो मे हुआ है अत: इनका समय किसी प्रकार भी ९ वीं शताब्दी के पश्चात् नही हो सकता। सिंहली भाषा का 'सिय-बस लकर' नामक अलङ्कारग्रन्थ दण्डीकृत 'काव्यादर्श' नामक अलङ्कारग्रन्थ के आधार पर लिखा गया है। 'सिय-बस लकर' के रचयिता राजा सेन प्रथम का समय ८४६–६६ ई० सन् माना जाता है। इसी प्रकार अमोघवर्ष (९ वी शताब्दी का प्रथम पाद) की कृति 'कविराजमार्ग' नामक ग्रन्थ पर काव्यादर्श का प्रभाव है। यह ग्रन्थ कन्नड़ भाषा मे लिखा हुआ है। इसमें प्रतिपादित अनेक अलङ्कारों के लक्षण दण्डी के लक्षणों से अक्षरशः मिलते हैं।

प्रो० पाठक का मत है कि दण्डी ने अपने काव्यादर्श में निर्वर्त्य, विकार्य एवं प्राप्य हेतु का विभाजन भर्तृहरि के विवेचन के आधार पर किया है। भर्तृहरि का समय ६५० ई० के आसपास है अतः दण्डी अवश्य ही ६५० ई० से परवर्ती हैं। विद्वानों को दण्डी के ग्रन्थों में बाण के विवेचन का साम्य प्रतीत होता है अतः वे दण्डी को बाण से परवर्ती मानने के पक्ष मे हैं। तथापि यह कैसे निश्चय किया जाये कि दण्डी ही बाण से प्रभावित हैं और बाण ने दण्डी के ग्रन्थो के कतिपय स्थलो से सामग्री नहीं गृहीत की ? यह भी असम्भव नही कि बाण ने अपने से पूर्ववर्ती कवियो की अनतिप्रौढ़ कृतियों

की सहायता लेकर अपने परिश्रम, प्रतिभा एवं पाण्डित्य से सर्वातिशायी अतिप्रौढ ग्रन्थों की रचना की हो। पुष्ट प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूप से क्या कहा जाये? डॉ० बेलवेलकर के अनुसार दण्डी का समय ७ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध होना चाहिए।

दशकुमारचरित—'दशकुमारचरित' महाकवि दण्डी का एकमात्र गद्य-काव्य है। अपने अनेक विशेष गुणों के कारण 'दशकुमारचरित' संस्कृत के मूर्धन्य गद्यकाव्यों में से अन्यतम माना जाता है। जैसा कि इस ग्रन्थ का नाम है इसमें दश कुमारों के चरित का चित्रण किया गया है। 'दशकुमार-चरित' ग्रन्थ आज जिस रूप में उपलब्ध है उसमें तीन भाग हैं—(१) पूर्व-पीठिका (२) चरित और (३) उत्तरपीठिका। विद्वानों का मत है कि चरित भाग ही दण्डी का लिखा हुआ है और दोनों पीठिकायें दण्डी की रचना नहीं हैं जिन्हें बाद में किसी या किन्हीं कवियों ने लिखकर जोड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मूल दशकुमारचरित का पूर्व एवं अन्त का कुछ कुछ भाग नष्ट हो गया था अतः पूर्व एवं उत्तर पीठिकाओं के योग से उस अभाव की पूर्ति की गई है। किन्तु सम्प्रति हम पीठिकाओं सहित चरित भाग को 'दशकुमारचरित' कहते हैं और समग्र ग्रन्थों को दण्डी की रचना मानकर आलोचना-प्रत्यालोचना करते हैं।

इस ग्रन्थ में जिन दस कुमारों के चरित का वर्णन है वे हैं—राजवाहन, सोमदत्त, पुष्पोद्भव, अपहारवर्मा, उपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त और विश्रुत। ग्रन्थ में दसों कुमारों का परिभ्रमण, अनेकविध साहस आदि का रोचक एवं यथार्थ वर्णन है।

दण्डी के काव्य की विशेषताएँ

(१) भाषा का सारल्य—दण्डी की भाषा सरल है। दण्डी की भाषा को हम 'क्लिष्ट' विशेषण नहीं दे सकते। वैदर्भी शैली में इस ग्रन्थ की रचना हुई है न तो यहाँ श्लेष अलङ्कार का प्राचुर्य है जैसा कि सुबन्धु की वासवदत्ता में है और न हीं कादम्बरी के समान इस ग्रन्थ में विकट समास-बन्ध का ही अस्तित्व है। अलङ्कारों के सीमित प्रयोग ने ग्रन्थ को प्राञ्जल बना दिया है। एक उदाहरण देखिए—'अस्ति हि श्रावस्ती नाम नगरी।

तस्याः पतिरपर इव धर्मपुत्रो धर्मवर्धनो नाम राजा। तस्या दुहिता प्रत्यादेश इव श्रियः प्राणा इव कुसुमधन्वनः सौकुमार्यविडम्बितनवमालिका नवमालिकानाम कन्यका।' (उत्तरपीठिका पञ्चम उल्लास)।

(२) पदलालित्य—दण्डी के काव्य की सर्वप्रसिद्ध विशेषता है पदलालित्य—'दण्डिनः पदलालित्यम्। पदलालित्य होने के लिए दण्डी के काव्य में अनुप्रास आदि शब्दालङ्कार अनिवार्य नहीं हैं। भाषा का सारल्य एवं स्वाभाविक अनवरुद्ध प्रवाह भी पदलालित्य की सृष्टि कर देता है जैसे—'सैषा मे प्राणसमा, यद् विरहो दहन इव दहति माम्। इदं च मे जीवितमपहरता राजपुत्रेण मृत्युनेव निरुष्मतां नीतः। न च शक्ष्यामि राजसूनुरित्यमुष्मिन्पापमाचरितुम्। अतोऽनयात्मानं सुदृष्टं कारयित्वा त्यक्ष्यामि निष्प्रतिक्रियान्प्राणान्।' (उत्तरपीठिका, षष्ठ उल्लास) दण्डी का अनुप्रासानुप्राणित गद्य ओजोगुणगर्भित होने पर भी ललित होता है। मगधाधीश महाराज राजहंस के गुणगणों का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

"...स्वर्लोकशिखरोरुरुचिररत्नरत्नाकरवेलामेखलायितधरणीरमणीसौभाग्यभोगभाग्यवान् अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासम्भारभासुरभूसुरनिकरः विरचितारातिसंतापेन प्रतापेन सततुलितवियन्मध्यहंसो राजहंसो नाम घनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्य रूपो भूपो बभूव। तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावतीकुलशेखर रमणी रमणी बभूवः।' (पूर्वपीठिका-प्रथम उच्छ्वास)

पूर्वपीठिका प्रथमोच्छ्वास से पदलालित्य के कतिपय उदाहरण और दिये जा रहे हैं—

'मालवनाथो जयलक्ष्मीसनाथो मगधराज्यं प्राज्यं समाक्रम्य पुष्पपुरमध्यतिष्ठत्'

'कल्याणि! भूरमणमरणमनिश्चितम्। किञ्चदैवज्ञकथितो मथितोद्धतारातिः सार्वभौमोऽभिरामो भविता सुकुमारः कुमारस्त्वदुदरे वसति।'

'निजराज्याभिलाषो सोमकुलावतंसो राजहंसो मुनिमभाषत—'भगवन्! मानसारः प्रबलेन दैवबलेन यां निर्जित्य मद्भोग्यं राज्यमनुभवति।'

(३) अलंकारों का कम प्रयोग—दण्डी ने सुबन्धु एवं बाण की अपेक्षा अलंकारों का कम प्रयोग किया है। पदलालित्य के लोभ में यत्र-तत्र अनुप्रास का प्रयोग मिलता है तथापि अनुप्रास अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता है। न यहाँ सुबन्धु एवं बाण के प्रिय श्लेष आदि अलंकारों का ही साम्राज्य है और न उपमा आदि शब्दालंकारों का ही आधिक्य है। अनुप्रास का एक उदाहरण देखें। शङ्कर ने जब काम को भस्म कर दिया तब कामदेव की उद्दीपक सेना अतीव सुन्दरी रानी 'वसुमती' के तत्तत् शरीरावयवों के रूप में प्रकट हुई। भ्रमर पंक्ति महारानी के केशों के रूप में, चन्द्रमा मुख के रूप में, मलयवायु मुखवायु के रूप में प्रकट हुई इत्यादि—

'रोषरूक्षेण निटिलाक्षेण भस्मीकृतचेतने मकरकेतने तदा भयेनानवद्या वनितेति मत्वा तस्य रोलम्बावली केशजालं प्रेमाकरो रजनीकरो विजितारविन्दं वदनं जयध्वजायमानो मीनो जायायुतोऽक्षियुगलं सकल सैनिकाङ्गवीरो मलयसमीरो निःश्वासः……समभूवमिव।' (पूर्वपीठिका-प्रथम उच्छ्वास)

(४) रस—शृङ्गार, वीर, हास्य वीभत्स, शान्त आदि रसों का योग ग्रन्थ में हुआ है। वामलोचना, बालचन्द्रिका, अवन्तिसुन्दरी, काममञ्जरी, रागमञ्जरी, कन्दुकवती, चन्द्रलेखा, मञ्जुवादिनी आदि के प्रति प्रेमियो के अनुरागवर्णन से शृङ्गाररस निष्पन्न होता है। अनेक राजा बन्दी बनाये जाते हैं जिनमें बहुत से मार डाले जाते हैं। भयंकर युद्ध होते हैं जिनसे वीररस की निष्पत्ति होती है। इसी प्रकार अन्य रसों का सन्निवेश भी प्रस्तुत कृति में हुआ है।

मोहित करके छोड़ दिया। मरीचि हाथ करके रह जाते हैं। यदि उपहारवर्मा धन की ही नश्वरता का बखान करके लोभियों के धनापहरण का विचार करता है तो कहीं पुरुष पात्र कन्या के वेश को धारण करके विनोद की सृष्टि करता है।

(७) यथार्थता का चित्रण—दण्डी कोरे आदर्शवाद के पक्षपाती नहीं हैं अतएव दशकुमारचरित में हमें संसार में दैनन्दिन घटित होनेवाली घटनाओं का वर्णन मिलता है। यहाँ के पात्र तत्कालीन समाज के प्रतिनिधि हैं। उच्च तथा निम्न दोनों वर्गों के पात्रों को स्थान मिला है। वचनचतुर वेश्यायें, कामलोलुप कौपीनावशेष व्यापारी, वेश्यावञ्चित महर्षि मरीचि, धूर्त कुट्टिनी, पाखण्डी, तपस्वी तथा चौरकर्मपक्षपाती एवं द्यूत छल-कपट आदि का आश्रय लेने वाले पात्र—सभी का यथार्थ चित्रण महाकवि ने किया है।

(८) उर्वर कल्पना—दण्डी में कल्पना की अद्भुत शक्ति है। चाहे शृङ्गार का वर्णन हो अथवा प्रकृति का, मानव की दुर्बलताओं का वर्णन हो अथवा आदर्श चरित का, कवि की कल्पना कुछ विचित्र ही होती है। एक उदाहरण देखें। वेश्या काममञ्जरी ने महर्षि का परित्याग कर दिया। मरीचि को ज्ञान हुआ। उनके हृदय से घोर अन्धकार निकल गया। काममञ्जरी के प्रति उनका अनुराग दूर हो गया। उनके मुख से वैराग्य के वाक्य निकलने लगे। इधर सन्ध्या हो रही है। कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो मरीचि के मन से निकले हुए घोर अन्धकार के स्पर्श से ही सूर्य अस्त हो गये, उनके द्वारा परित्यक्त अनुराग ही सान्ध्य राग में परिणत हो गया और मानो उन्हीं के वैराग्यवचनों के प्रभाव से कमलवन सङ्कुचित हो गया हो—

'अथ तन्मनश्च्युततमः स्पर्शभियेवास्तं रविरगात्। ऋषिमुक्तश्च रागः सन्ध्यात्वेनास्फुरत्। तत्कथादत्तवैराग्याणीव कमलवनानि समकुचन्।' (उत्तरपीठिका-द्वितीय उच्छ्वास)

(९) तात्कालिक विश्वास—दशकुमारचरित से हमें तत्कालीन समाज के विश्वासों का ज्ञान होता है। राजा राजहंस ब्राह्मणों का भक्त था और सन्तति की प्राप्ति के निमित्त भगवान् की उपासना करता था। विजगीषु मानसार को शिव से एक गदा प्राप्त होती है। मार्कण्डेय ऋषि के शाप से अप्सरा चाँदी की जंजीर बन जाती है।

(१०) प्रकृतिचित्रण—दण्डी प्रकृति का विस्तृत वर्णन नहीं करते। उन्होंने प्रकृति के संक्षिप्त चित्रण प्रस्तुत किये हैं जो सूक्ष्म एवं मनोरम हैं।

दण्डी ने पर्वत, नदी, वसन्तऋतु, सूर्यास्त आदि का वर्णन किया है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

'अस्तगिरिकूटपातक्षुभितशोणित इव शोणीभवति भानुबिम्बे पश्चिमाम्बुधिपय.पातनिर्वापितपतङ्गाङ्गारधूमसम्भार इव भरित-तमसि नभसि विजृम्भिते।' (उत्तरपीठिका-तृतीयोच्छ्वास)

सुबन्धु

सुबन्धु की एकमात्र रचना है 'वासवदत्ता' नामक गद्यकाव्य। इनके वश तथा माता-पिता आदि के सम्बन्ध मे जानने के लिये हमारे पास कोई साधन नही है। कुछ लोग इन्हें काश्मीरी मानते हैं जब कि अन्य लोग मध्यदेशीय। पीटर्सन, कीथ तथा डे का मत है कि सुबन्धु बाण से पूर्ववर्ती हैं औरयह कथन सत्य भी प्रतीत होता है क्योंकि बाण ने अपनी कृति 'हर्षचरित' मे 'वासवदत्ता' की प्रशसा की है—'कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया' (कवियो का दर्प 'वासवदत्ता' के कारण चूर हो गया)। यह वासवदत्ता निश्चित रूप से सुबन्धु की कृति 'वासवदत्ता' ही है। वासवदत्ता मे 'न्यायवार्तिक' के रचयिता उद्योतकर का उल्लेख है—'न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपाम्। बाण हर्ष वर्धन (६०८—४८ ई० सन्) के राज्यकाल मे थे अतः सुबन्धु का समय ६०० ईसवी के आसपास ही होना चाहिए। डॉ० विद्याभूषण ने उद्योतकर का समय ६३५ ई० के आसपास माना है[1]। तब तो सुबन्धु का समय इसके और बाद मानना होगा जो न्यायसगत नहीं प्रतीत होता है।

कतिपय विद्वानो ने 'वासवदत्ता' एव 'कादम्बरी' की भाषा, भाव, कथानक तथा वर्णन आदि मे यत्र तत्र साम्य देखकर यह धारणा बना ली है कि 'वासवदत्ता' पर 'कादम्बरी' का प्रभाव है अत सुबन्धु बाण से परवर्ती हैं। किन्तु किञ्चित् साम्य ही पूर्वापरभाव का निर्णायक नही होता। पूर्वापरभाव के निर्णय के लिए सर्वाङ्गीण विचार करना आवश्यक होता है। वासवदत्ता एव स्वपूर्ववर्ती प्राप्त अन्य साहित्य के आधार पर अपनी प्रतिभा एव वैदुष्य के द्वारा बाण ने अपूर्व गद्यग्रन्थ 'कादम्बरी' की रचना की, यही मानना तर्कसङ्गत होगा।

1–Vidyabhusana–A History of Indian logic P. 124.

वासवदत्ता—राजा चिन्तामणि का कन्दर्पकेतु नामक पुत्र स्वप्न में एक अतीव सुन्दरी बाला को देखकर मुग्ध हो जाता है। कामपीडित कन्दर्पकेतु अपने मित्र मकरन्द के साथ उस सुन्दरी की खोज में निकल पड़ता है। दोनों विन्ध्याटवी की तलहटी मे पहुँचते है। वहाँ उन्हें शुक-सारिका की वार्ता से विदित होता है कि कुसुमपुर के शृङ्गारशेखर की सुन्दरी पुत्री वासवदत्ता ने राजा चिन्तामणि के पुत्र कन्दर्पकेतु को स्वप्न मे देखा और उस पर मोहित हो गई तथा तमालिका नामक एक सारिका को कन्दर्पकेतु के भावों का पता लगाने के लिए भेजा है। कन्दर्पकेतु मकरन्द एवं तमालिका के साथ कुसुमपुर पहुँचता है। वासवदत्ता एव कन्दर्पकेतु का मिलन होता है।

जब कन्दर्पकेतु को पता चलता है कि वासवदत्ता की इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह एक विद्याधर के साथ किया जाने वाला है तो वह एक जादू के घोड़े पर वासवदत्ता को लेकर चला जाता है। विन्ध्याटवी में दोनों सो जाते हैं। कन्दर्पकेतु जागता है और वासवदत्ता को न देखकर शरीर त्याग हेतु समुद्र मे उतरने लगता है। आकाशवाणी उसे ऐसा करने से रोकती है इतस्ततः भ्रमण करता हुआ कन्दर्पकेतु जब एक पत्थर की मूर्ति को छूता है तो वह मूर्ति वासवदत्ता के रूप में परिणत हो जाती है। विस्मित कन्दर्पकेतु को वासवदत्ता बतलाती है कि मैं पहले ही जाग गई थी और थोड़ी दूर फल लेने गई थी। वहाँ किरात के दो दलो मे मेरे पीछे संघर्ष हो गया। वे दोनों दलो दल झगड कर नष्ट हो गये और वह स्थान तहस-नहस हो गया। इस आश्रम के अधिपति ने आकर मुझे अपराधी समझकर पत्थर हो जाने का शाप दे दिया जिसका अवसान आपके स्पर्श होने तक था। मित्र मकरन्द भी वहाँ आ पहुँचता है। समित्रकलत्र कन्दर्पकेतु अपने नगर में आकर आनन्द से रहने लगता है।

सुबन्धु का काव्य

(१) अपर्याप्त का कथानक—वासवदत्ता जैसे बड़े ग्रन्थ के लिए उसका कथानक अत्यल्प होने के कारण अपर्याप्त है। ग्रन्थकार विभिन्न प्राकृतिक विषयों तथा नायक अथवा नायिका के सौन्दर्यवर्णन में अधिक रुचि लेता हुआ देखा जाता है। इस प्रकार कथानक में शैथिल्य आ जाता है। जहाँ-

जहाँ कथानक के अन्तर्गत उपकथाएँ होनी चाहिए थीं कवि पूर्णतः मौन दिखलाई देता है।

(२) श्लेष आदि अलंकारों की प्रधानता—सुबन्धु को विरोधाभास, परिसंख्या आदि अलकारों का चमत्कार प्रदर्शित करना अत्यन्त प्रिय है। श्लेष उनका अत्यधिक प्रिय अलङ्कार है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्लेष के प्रयोगनैपुण्य को दिखलाने के लिए ही सुबन्धु ने 'वासवदत्ता' की रचना की। सुबन्धु स्वयं कहते हैं कि उन्होंने प्रत्येक अक्षर में श्लेष के प्रयोग द्वारा ग्रन्थरचना की निपुणता दिखलाई है—

'प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम्' श्लेष के लोभ में ग्रन्थकार रस, कथानक, चरित्र-चित्रण आदि पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव पर भी ध्यान नहीं देते। बहुत अस्वाभाविक एवं क्लिष्ट श्लेष के प्रयोग होने के कारण ग्रन्थ की गरिमा में व्याघात पहुँचा है और प्रसाद गुण का अभाव खटकता है। श्लेष का एक उदाहरण देखिये जिसमे श्लेषवशात् दो अर्थ निकलते हैं—एक प्रशंसापरक और दूसरा निन्दापरक—

'… राजसेन राजसे नरहितो रहितो ध्रुवम्। विशारदा शारदा-भुविशदा विशदात्मनानमहिमानमहिमानरक्षणक्षमा क्षमातिलक-धीरता धीरता मनसि भूतता भूतता च वचसि। साहसेन सा हसेन कमलालया यया जिता सा · विनाशा विना शापमनुभवति दुःखानि।'

परिसंख्या का एक उदाहरण देखिए—

'……छलनिग्रह प्रयोगो वादेषु नास्तिकता चार्वाकेषु कण्टक-योगो नियोगेषु परीवादो वीणासु खलसयोगः शालिषु… …'

[(चिन्तामणि नामक राजा के शासनकाल में) छल एवं निग्रह (निग्रह स्थान) का प्रयोग वाद-विवाद में होता था (प्रजा में छल एवं निग्रह का प्रयोग नहीं होता था), नास्तिकता चार्वाकों में थी (प्रजा में न थी), नियोग संबन्ध में रोमाञ्च होता था न कि सुई के चुभोने का दण्ड (कण्टक-योग) किसी को दिया जाता था। परीवाद (वादन) वीणा में होता था किसी की निन्दा (परीवाद) नहीं होती थी। धान के विषय में (शालिषु) खल (खलिहान) का सम्बन्ध होता था (राज्य में कोई खल नहीं था जिससे सयोग होता।]

(३) गौड़ीरीति का प्राधान्य—सुबन्धु का काव्य दीर्घसमासयोजना के द्वारा अतीव क्लिष्ट हो गया है। अतएव प्रसाद गुण का अभाव दृष्टिगोचर होता है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

'यश्च समदकलहंससारसरसितोद्भ्रान्तभाकूट विकटकुञ्जकूर्चव्याघूतकमलपण्डगलितमकरन्दबिन्दुसन्दोहसुरभितसलिलया सायन्तनसमयमज्जत्पुलिन्दराजसुन्दरीनिम्ननाभिमण्डलपीतप्रतिहतरयसलिलया······तीरप्ररूढवेतसलताभ्यन्तरलीनदात्यूहव्यूहमदकलकुहकेलीकुहकुहारावकौतुकाकृष्ट सुरमिथुनसंस्तूयमानकूलोपवनोपभोगया···'

(४) सरलवाक्यों का भी अस्तित्व—उक्त विवेचन का यह अर्थ नहीं कि सुबन्धु के गद्य मे सर्वत्र दीर्घ समासो का ही प्रयोग है। वर्ण्यविषय की अनुकूलता देखकर अल्पवृत्ति एवं अवृत्ति पदो का भी प्रयोग किया गया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है। स्वप्न मे कन्दर्पकेतु को देखकर उस पर मुग्ध कामपरवशा वासवदत्ता की दशा को देखिए। अपनी दशा का वर्णन करती हुई वह मूर्च्छित हो जाती है—

'मुग्धे मदनमञ्जरि ! सिचाङ्गानि चन्दनवारिणा। सरले वसन्तसेने ! संवृणु केशपाशम्। तरले तरङ्गवति ! विकिराङ्गेषु कैतकधूलिम्। वामे मदनमालिनि ! कलय वलयं शैवालकलापेन। चपले चित्रलेखे ! चित्रपटे विलिख चित्तचोरं जनम्······'

(सुन्दरि मदनमञ्जरी ! चन्दन के जल को मेरे अङ्गों पर छिड़क। अरी भोली वसन्तसेने ! केशो को बाँध। चञ्चल तरङ्गवती ! अङ्गों पर केवड़े का पराग बिखेर दे। सुन्दरी मदनमालिनी ! शैवालो का कङ्कण तैयार कर दे। चञ्चल चित्रलेखे ! चित्रपट पर चित्त को चुराने वाले व्यक्ति कंदर्पकेतु का चित्र बना दे······।')

(५) चरित्रचित्रण—श्लेष आदि अलंकारों के प्रयोग एवं विविध पदार्थों के वर्णन के लोभ मे कवि ने पात्रों के चरित्र-चित्रण पर विशेष बल नहीं दिया है। इस प्रकार कलापक्ष ने भाव-पक्ष को दबा दिया है। मानवचित्तवृत्तियों के निरूपण की कवि ने उपेक्षा की है जिसका ध्यान प्रायः सर्वत्र शब्दक्रीडा की ओर रहता है। अपवादरूप मे अवश्य ही भावपक्ष के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।

(६) रस—रस के समावेश की दृष्टि से 'वासवदत्ता' सफल कृति नहीं है। औचित्य का विचार किये बिना ही अलङ्कार प्रयोग की निपुणता दिखलाने का प्रयास किया गया है जिससे रसानुभूति में व्याघात उत्पन्न हुआ है।, जहाँ विस्तृत शब्दावली के द्वारा विभिन्न रसों के विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों का चित्रण किया जा सकता है कवि मौन धारण कर लेता है अथवा अल्पपदों का प्रयोग करके अपने को कृतकृत्य समझ लेता है।

(७) पाण्डित्य प्रदर्शन—सुबन्धु का काव्य पाण्डित्यप्रदर्शन के कारण जटिल एवं दुरूह हो गया है। 'वासवदत्ता' को समझाने के लिए व्याकरण, मीमांसा, न्याय, बौद्ध आदि दर्शन, इतिहास, पुराण, काव्यशास्त्र से परिचय होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए 'छलनिग्रहप्रयोगी वादेषु, का अर्थ वही समझ सकता है जिसने न्याय दर्शन के 'छल' एवं 'निग्रह स्थान' नामक पदार्थों का परिचय प्राप्त किया हो।

(८) प्रकृतिवर्णन—सुबन्धु ने पर्वत, नदी, समुद्र, अरण्य, ऋतु, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, पशु पक्षी आदि विषयों का सुष्ठु वर्णन उपस्थित किया है। इनके वर्णन का आधार कल्पनावैविध्य एवं निरीक्षणचातुर्य होता है। यद्यपि अलङ्कारबाहुल्य के कारण कृत्रिमता आ जाती है तथापि वर्णन में सौष्ठव है। कवि ने प्रकृति के शोभन एवं अशोभन दोनों रूप का चित्रण किया है।

का उल्लेख उद्भट विद्वानों के रूप मे किया है। बाण के बाल्यकाल में ही माता का देहान्त हो गया था और जब बाण केवल १४ वर्ष के थे, पिता का भी देहान्त हो गया। बाण स्वच्छन्द होकर भ्रमण करते रहे। अनेक राजाओ, विद्वानो एव विभिन्न प्रकार के व्यक्तियो के संसर्ग मे रहकर लौकिक अनुभव तथा विद्या प्राप्त करके पुनः अपने निवास स्थान पर आ गए। पहले तो राजा हर्षवर्धन दूसरों की शिकायत के कारण इनसे अप्रसन्न थे किन्तु बाद मे इन्हें अपने दरबार मे ससम्मान रखा।

बाण के आश्रयदाता सम्राट् हर्षवर्धन थे। हर्षवर्धन का शासनकाल ६०६ से ६४८ ई० सन् रहा है। अतएव बाण का समय ७ वी शताब्दी का पूर्वार्ध मानना उचित है। वामन (८०० ई० सन्) ने अपनी कृति 'काव्यालङ्कार-सूत्रवृत्ति' मे कादम्बरी के एक अश को उद्धृत किया है। आनन्दवर्धन (८५० ई०सन्) ने ध्वन्यालोक में 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' का उल्लेख किया है। बाण ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ मे जिन ग्रन्थकारो एवं ग्रन्थों का उल्लेख किया है उनमे से कोई भी ७ वीं शताब्दी के बाद का नहीं है। इस प्रकार बाण का समय ७ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध मानने मे किसी प्रकार की असङ्गति नहीं है।

हर्षचरित—महाकवि बाण की प्रथम गद्य रचना। इसका कथानक ऐतिहासिक है अतः स्वयं बाण ने इसे 'आख्यायिका' कहा है। ग्रन्थ ८ उच्छ्वासो मे विभक्त है। जो भी कारण रहा हो 'हर्षचरित' अपूर्ण ग्रन्थ है। ग्रन्थ ऐसे स्थान पर आकर समाप्त हो जाता है जिससे उसके कथानक के रुक जाने का स्पष्ट ज्ञान होता है। इससे ग्रन्थ की अपूर्णता सिद्ध होती है। ग्रन्थारम्भ के श्लोकों मे कवि ने कतिपय ग्रन्थों एव ग्रन्थकारो का उल्लेख किया है। प्रथम तीन उच्छ्वासो में बाण ने आत्मकथा लिखी है। यह अंश सम्पूर्ण ग्रन्थ के आधे से कुछ कम होगा। शेष पाँच उच्छ्वासो मे हर्ष के चरित का वर्णन है।

पिता के पास वापस आ जाते हैं। प्रभाकरवर्धन जीवन की अन्तिम साँसें ले रहे हैं। हर्ष के रोकने पर भी यशोवती पति की मृत्यु सन्निकट समझ कर अग्नि में जलकर सती हो जाती है। प्रभाकरवर्धन का देहान्त हो जाता है।

कुछ समय बाद मालव राज ग्रहवर्मा का वध करके राज्यश्री को कैद कर लेता है। गौडराज छल से राज्यवर्धन को मार डालता है। राज्यश्री विन्ध्याटवी में पहुँच जाती है। बहन की खोज में हर्ष भी विन्ध्याटवी पहुँचता है। राज्यश्री चिता में प्रवेश ही करने वाली थी कि हर्ष पहुँच कर उसके प्राणों की रक्षा कर लेता है। हर्ष राज्यश्री को लेकर कटक आ जाता है। यहीं ग्रन्थ की समाप्ति हो जाती है।

कादम्बरी—कादम्बरी समग्र संस्कृत साहित्य की सर्वोत्कृष्ट गद्यकृति है। भाषा, भाव, कथानक, चरित्रचित्रण, प्रकृतिवर्णन आदि विभिन्न दृष्टियों से कादम्बरी अनुपम गद्यकाव्य है। संक्षेप में इसकी कथा इस प्रकार है—*राजा शूद्रक के पास एक चाण्डालकन्या आती है। वह शूद्रक को एक शुक* भेंट करती है जो अत्यधिक मेधासम्पन्न है। शुक अपने जन्म से लेकर समस्त वृत्तान्त शूद्रक को बतलाता है। शुक जाबालि के आश्रम में पहुँचने का वर्णन करता है। इसके बाद जाबालि मुनि शुक से उसके (शुक के) पूर्वजन्म का वृत्तान्त कहते हैं। वह इस प्रकार है—

खोज मे अच्छोद सरोवर आता है। महाश्वेता बतलाती है कि मैंने वैशम्पायन को शुक होने का शाप दे दिया है क्योंकि वह मुझसे प्रणयप्रस्ताव कर रहा था। इस समाचार के दुःख से चन्द्रापीड की मृत्यु हो जाती है। कादम्बरी अपने प्रेमी को मृत देखकर प्राणत्याग करने ही वाली थी कि आकाशवाणी उसे ऐसा करने से रोकती है। आकाशवाणी द्वारा यह भी ज्ञात होता है कि कादम्बरी एवं महाश्वेता को अपने-अपने प्रेमी से शीघ्र ही मिलन होगा।

शुक कहता है कि जाबालि से ऐसा वृत्तान्त सुनकर महाश्वेता के प्रति मेरा प्रेम नवीभूत हो गया और मैं वहाँ से उड़ा किन्तु इस चाण्डालकन्या ने मुझे पकड़ लिया और यहाँ ले आई। मैं इतना ही जानता हूँ। तब चाण्डालकन्या बतलाती है कि मैं पुण्डरीक की माता हूँ। पुण्डरीक ही जन्मान्तर मे वैशम्पायन था और आप शूद्रक पूर्वजन्म मे चन्द्रापीड थे। अब पुण्डरीक का और आपकी शापावधि समाप्त ही होने वाली है। शूद्रक को कादम्बरी का स्मरण हो आया। उसके प्राण निकल गये और उधर चन्द्रापीड जीवित हो गया।

पुण्डरीक और शूद्रक को प्राप्त होने वाले शाप का विवरण इस प्रकार है—पुण्डरीक ने चन्द्रमा को और चन्द्रमा ने पुण्डरीक को बार-बार जन्म लेने का शाप दिया था। चन्द्रमा चन्द्रापीड के रूप में जन्म लेता है और पुण्डरीक वैशम्पायन के रूप मे। पुनः चन्द्रापीड शूद्रक के रूप मे और वैशम्पायन शुक के रूप में जन्म लेते हैं।

अन्त मे पुण्डरीक तथा महाश्वेता, चन्द्रापीड तथा कादम्बरी का मिलन होता है और ग्रन्थ की सुखद समाप्ति होती है।

बाण का काव्यसौष्ठव

(१) रोचक कथानक—कादम्बरी में प्राप्त कथानक बाण के कथा-रचना के नैपुण्य को प्रमाणित करता है। भले ही कादम्बरी की कथा का स्रोत गुणाढ्य की बृहत्कथा रही हो किन्तु इसमे सन्देह नहीं कि बाण की मौलिक प्रतिभा ने अनुपम कथा की सृष्टि की। सुन्दर कथानक के कारण कादम्बरी को निःसंकोच एक उत्कृष्ट उपन्यास कहा जा सकता है जो कुतूहल कथा के प्रारम्भ में उत्पन्न होता है वह क्रमशः बढ़ता ही जाता है। प्रमुख नायिका कादम्बरी ग्रन्थ के मध्य मे आती है और शूद्रक ही प्रधान नायक

है इस विषय का उद्घाटन अन्त मे जाकर होता है। दो-दो नायिकाओं की प्रणय कथाएँ साथ साथ चलती हैं। इनके नायकों के तीन-तीन जन्मों की घटनायें कादम्बरी में चित्रित है। कथानक कुछ जटिल होने पर भी अधिक रोचक है।

(२) गद्यरचनानैपुण्य—साहित्य की विभिन्न विधाओ मे गद्य का प्रणयन अपेक्षाकृत अधिक कठिन माना जाता है। इसीलिए गद्य को कवियो की कसौटी कहा जाता है—'गद्यं कवीना निकष वदन्ति'। गद्य लेखन में कवि को अपनी प्रतिभा एवं योग्यता को प्रकाशित करने का पूर्ण अवसर रहता है वहाँ कवि को अपना ध्यान स्वर, मात्रा, अक्षर आदि की ओर केन्द्रित नही करना होता। अत काव्य मे उत्कृष्टता के अभाव का कोई कारण नही रह जाता। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि पूर्ण प्रतिभाशाली एव सुयोग्य व्यक्ति ही गद्यकाव्य का निर्माण कर सकता है। पद्य छन्दोबद्ध होते हैं अतएव अन्य गुणों की न्यूनता अथवा अभाव होने पर भी उसमे लालित्य रहता है जब कि गद्य के विषय मे ऐसी स्थिति नहीं है। गद्य में जब तक अलङ्कार, लालित्य सुन्दर कल्पनायें, रोचक वर्णन, आकर्षक कथानक, रस का योग आदि विशेषतायें न होंगी सहृदय उसका स्वागत न करेंगे। बाण के गद्य में ऐसे बहुत से गुण पाये जाते हैं। इसीलिए उनके गद्यकाव्य अभी तक जीवित हैं और वे भी सर्वोत्कृष्ट रूप में। गद्य मे पद्य जैसी गेयता भी नहीं होती जिसके कारण उसे कण्ठस्थ करके चिरस्थायी रखा जा सके। प्रकृत विवेचन से यह सिद्ध होता है कि गद्यकाव्य का निर्माण पद्य-रचना से अधिक कठिन है। तब अवश्य ही गद्य-काव्य कवियों की कसौटी है। यह निर्विवाद है कि बाण सर्वश्रेष्ठ गद्यकार हैं। बाण ने गद्य की दोनो विधाओ—आख्यायिका एवं कथा का प्रणयन किया। हर्षचरित आख्यायिका है क्योंकि उसका कथानक ऐतिहासिक है और कादम्बरी कथा है क्योंकि इसका कथानक कविकल्पित है। अतएव बाण को नि संकोच सर्वगुणसम्पन्न महाकवि कहा जा सकता है।

(३) भाषासौष्ठव—बाण की भाषा मे वह शक्ति एव प्रभाव है जिससे पाठक स्वभावत आकृष्ट हो जाता है। इनकी भाषा वर्ण्य विषय के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। चन्द्रापीड दिग्विजय के लिए प्रस्थान करता है। उस समय का ओजस्वी वर्णन निम्न पंक्तियो मे देखिये—

'... ... अनवरतकर्णतालस्वनसम्पृक्तेन च दन्तिनामाडम्बररवेण, ग्रैवेयककिङ्किणीकणितानुसृतेन च गतिवशाद्विषमविराविणीना घण्टाना टङ्कृतेन मङ्गलशङ्खशब्दसवर्धितध्वनीनाञ्च प्रयाणपटहाना निनादेन मुहुर्मुहुरितस्ततस्ताड्यमानानाञ्च डिण्डिमाना निःस्वनेन जर्जरीकृतश्रवणपुटस्य मूर्च्छेवाभवज्जनस्य।'

किन्तु विचित्र शुक के विषय में कुतूहलवश पूछ रहे शूद्रक की सरल शब्दावली पर दृष्टिपात कीजिए—

" जन्म कस्मिन् देशे ? भवान् कथ जात ? केन वा नाम कृतम् ? का ते माता ? कस्ते पिता ? कथ वेदानामागम ? कथ शास्त्राणा परिचय ? कुत कला समासादिता ? किं हेतुक जन्मान्तरानुस्मरणम्, उत वरप्रदानम् ? कथ पजरबन्धनम् ? कथ चाण्डालहस्तगमनम् ? इह वा कथमागमनम् ?'

इस प्रकार अर्थ के अनुकूल भाषा का प्रयोग होने के कारण बाण की गद्य की रीति पाञ्चाली है—'शब्दार्थयो समो गुम्फ पाञ्चालीरीतिरिष्यते'। बाण के गद्य में विकट समासो का प्रयोग है किन्तु वैसा नही जैसा कि सुबन्धु के काव्य में है।

(४) अलङ्कार—बाण के काव्य में अलङ्कारो का प्रयोग चारुता को उत्पन्न करता है। यहाँ अलङ्कार रस एव वर्ण्यविषय के सवथा अनुकूल होते हैं अत सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हैं। सुबन्धु के समान बाण को न तो शाब्दी क्रीडा ही प्रिय है और न वे रस आदि पर बिना ध्यान दिए ही अलङ्कारो के चमत्कार का प्रदर्शन करके अपने पाण्डित्य का परिचय देने का प्रयास करते हैं। इनके काव्य मे उपमा, श्लेष, परिसख्या, यमक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, एकावली सहोक्ति आदि सभी प्रमुख अलङ्कार प्राप्त होते हैं। श्लेषानुप्राणित परिसख्या का उदाहरण देखिए—

' काव्येषु दृढबन्धा, शास्त्रेषु चिन्ता, स्वप्नेषु विप्रलम्भा, छत्रेषु कनकदण्डा, ध्वजेषु प्रकम्पा सायकेषु शून्यग्रहा न प्रजानामासन्। विरोधाभास अलङ्कार का उदाहरण—

' आयतलोचनमपि सूक्ष्मदशनम्, महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्, अविरतप्रवृत्तदानमप्यमदम्, अत्यन्तशुद्धस्वभावमपि कृष्णचरितम्, अकरमपि हस्तस्थित सकलभुवनतल राजानमद्राक्षीव'।

रसनोपमा का उदाहरण—

'क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्।'

(५) सङ्गीततत्त्व—बाण के काव्य में सङ्गीत तत्त्व विद्यमान हैं। कादम्बरी में हम गद्यपद्यों की ऐसी संयोजना पाते हैं जो सङ्गीत को उत्पन्न करती है। गद्य के श्रवणमात्र से एक अपूर्व आह्लाद उत्पन्न होता है। शृङ्गाररस के प्रसङ्ग में कोमल एवं वीररस के प्रसङ्ग में श्रुतिकटु वर्णों का चयन किया गया है जो सुनने में प्रासङ्गिक रस के आस्वादन में सहायक होते हैं।

(६) चरित्रचित्रण—बाण चरित्रचित्रण में अतीव निपुण हैं। व्यक्तिगत अनुभव एवं प्रतिभा के बल पर महाकवि ने अनेक पात्रों के परस्पर विरुद्ध चरित्र का चित्रण किया है। जब हम शूद्रक एवं विशेषतः चन्द्रापीड के गुणों एवं प्रवृत्तियों का वर्णन सुनते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि कवि किसी राजवंश में उत्पन्न हुआ है। बाण की दृष्टि अत्यधिक सूक्ष्म है। एक राजकुमार में जो विशेषताएं होनी चाहिए वे सभी चन्द्रापीड में हैं, यथा—सौन्दर्य, विनम्रता, उदारता, सहृदयता, असामान्य शारीरिक शक्ति, वीरता, विद्वत्ता एवं मेधा इत्यादि। वह आदर्श प्रेमी है। शुकनास में वे सभी गुण एकत्र हैं जो एक अनुभवशील एवं दूरदर्शी मन्त्री में होने चाहिए। जाबालि एवं हारीत के चरित्र का चित्रण देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे बाण ने सम्पूर्ण आयु किसी आश्रम या गुरुकुल में व्यतीत की हो। शबर युवा एवं उसकी सेना का चित्रण कितनी सजीव एवं यथार्थ है। इसी प्रकार सुकुमार रानी विलासवती, महाश्वेता एवं कादम्बरी भी स्वयं ही अपनी-अपनी उपमान हैं। वस्तुतः बाण बहुविध पात्रों के चरित्र का अङ्कन करने में सक्षम हैं।

(८) कल्पना—बाण के काव्य में हमे अभिनव कल्पनाओं के दर्शन होते हैं। ग्रन्थकार की मौलिकता प्रत्येक पृष्ठ पर झलकती है। शूद्रक ने रिपुसमूह को नष्ट कर दिया। फिर उसकी प्रतापाग्नि शत्रुओं की विधवाओं के हृदयों में क्यों जल रही है? इसलिए कि उसके हृदय में विद्यमान उनके पति जल जावें—

'यस्य च हृदयस्थितानपि पतीन् दिधक्षुरिव प्रतापानलो वियोगिनीनामपि रिपुसुन्दरीणामन्तर्जनितदाहो दिवानिशं जज्वाल।'

लक्ष्मी चञ्चल कही जाती है। वह कहीं भी पैर जमा कर नहीं रुकती। क्यों? क्योंकि उसका वास कमल पर है अतः कमलनाल के काँटे उसके पैर में चुभ गये होंगे फिर वह किस प्रकार एक स्थान पर अपना पैर गड़ा कर रुक सके—

'कमलिनीसञ्चरणव्यतिकरलग्ननलिननालकण्टकक्षतेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम्।'

(९) प्रकृतिवर्णन—बाण ने पर्वत, नदी, सरोवर, अरण्य, कन्दरा, वृक्ष, लता, आश्रम, वायु, रात्रि, प्रभात, चन्द्रोदय, सन्ध्या आदि विभिन्न प्रकृतिगत विषयों का मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है। महाकवि ने सर्वत्र अपनी आलङ्कारिक प्रौढ़ एवं सशक्त शैली द्वारा प्रकृति के वर्णन को आभूषित करने का सफल प्रयत्न किया है। यद्यपि कहीं कहीं कल्पनाधिक्य एवं अलङ्कार-बाहुल्य वर्णन की अस्वाभाविकता की ओर ले जाते हुए दिखलाई देते हैं किन्तु महाकवि की प्रतिभा एवं प्रकृति का सूक्ष्म निरूपण उनकी अलङ्कारनिष्ठ शैली को भूषण सिद्ध करते हैं, दूषण नहीं। भले ही वाल्मीकि एवं कालिदास जैसा स्वाभाविक वर्णन बाण की कृतियों में न मिलता हो तथापि भाषासौष्ठव के साथ भावसौन्दर्य का अद्भुत योग बाण के गद्यकाव्य को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करता है। महाकवि प्रकृति के भीषण एवं रमणीय दोनों ही पक्षों का मनोहारी रूप उपस्थित करते हुए पाये जाते हैं। देखिये विन्ध्याटवी का भयजनक रोमाञ्चकारी वर्णन—

'नखमुखलग्नेभकुम्भमुक्ताफललुब्धैः शबरसेनापतिभिरभिहन्यमानकेसरिशता प्रेताधिपनगरीव सदा सन्निहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, समरोद्यतपताकिनीव बाणासनारोपितशिलीमुखा विमुक्तसिंहनादा च, कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालङ्कृता च, कर्णीसुतकथेव सन्निहितविपुलाचला शशोपगता च, कल्पान्तप्रदोषसन्ध्येव प्रनृत्यन्नीलकण्ठा पल्लवारुणा च।'

बाण प्रकृति के रमणीय पक्ष के वर्णन में भी निष्णात हैं। पम्पा सरोवर में कुमुद, कुवलय एवं कल्हार खिले हुए हैं। प्रस्फुट कमलों से टपकने वाले मधुबिन्दुओं से जल में चन्द्राकृतियाँ बनीं हुई दिखलाई देती हैं। कमलों में भौंरों का समूह चिपका हुआ है जिससे वे काले दिखलाई पड़ रहे हैं। मदमत्त सारस बोल रहे हैं। कमल के मधु का पान करने के कारण मदमाती हंसिनियाँ कोलाहल कर रही हैं। जल में रहनेवाले पक्षी तैरते हैं जिससे चञ्चल लहरों में कल-कल की ध्वनि हो रही है, इत्यादि—

'उत्फुल्लकुमुदकुवलयकल्हारम्, उन्निद्रारविन्दमधुबिन्दुबद्धचन्द्रकम्, अलिकुलपटलान्धकारितसौगन्धिकम्, सारसितसमदसारसम्, अम्बुरुहमधुपानमत्तकलहंसकामिनीकृतकोलाहलम्, अनेकजलचरपतङ्गशतसञ्चलनचलितवाचालवीचिमालम्'।

वसन्त के वर्णन में प्रयुक्त कवि की कोमल पदावली पर दृष्टिपात कीजिए—

'अशोकतरुताडनारणितरमणीमणिनूपुरझङ्कारसहकारमुखरेषु सकलजीवलोकहृदयानन्ददायकेषु मधुमासदिवसेषु'।

बाण जिस विषय का वर्णन करने लगते हैं उसका प्रायः साङ्गोपाङ्ग वर्णन करके ही छोड़ते हैं। विन्ध्याटवी, पम्पासरोवर, शाल्मलीवृक्ष आदि इसके निदर्शन हैं। शाल्मलीवृक्ष के वर्णन में कवि ने नवीन उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है। इस प्रकार पशु पक्षियों के वर्णन में भी कवि सिद्धहस्त हैं। जीवों के बाह्यस्वरूप के अतिरिक्त उनकी अन्तःप्रकृति का भी सूक्ष्म निरूपण महाकवि ने प्रस्तुत किया है। बाण ने प्रभात, मध्याह्न, संध्या एवं रात्रि का भी आकर्षक चित्र उपस्थित किया है। आग बरसाती हुई तपती दुपहरी कितनी कष्टप्रद होती है। सूर्य मानों अपनी किरणों से आग की चिनगारियाँ बिखेर रहा हो, उस पर भी उग्र पिपासाजन्य व्याकुलता। धूप के कारण सन्तप्त धूल पर पाँव नहीं रखा जाता। प्यास के मारे रास्ता तय करने के लिये हाथ पाँव नहीं उठता ······इत्यादि—

सन्ध्या हो गई कमलिनी का अपने प्रियतम सूर्य से अभी अभी वियोग हुआ है अतः शोकविधुरा कमलिनी ने प्रियतम से समागम होने के लिये व्रत को धारण किया और तपस्विनी की भांति तपश्चर्या मे लीन हो गई। कमलों की कलियां ही उसका कमण्डलु हैं, हंस ही उसके श्वेत वस्त्र हैं, मृणाल ही उसका श्वेत यज्ञोपवीत है और मधुकरसमूह ही उसकी जपमाला है—

'अचिरप्रोषिते च सवितरि शोकविधुरा कमलमुकुलैकमण्डलु-धारिणी हंससितदुकूलपरिधाना मृणालधवलयज्ञोपवीतिनी मधुकर-मण्डलाक्षवलयमुद्वहन्ती कमलिनी दिवसपति समागमव्र-तमिवाचरत्'।

(१०) वर्णननैपुण्य—प्रकृति के अतिरिक्त राजप्रासाद, राजसभा, उज्जयिनी नगर आदि विषयो के वर्णन मे कवि को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

(११) तात्कालिक समाज का चित्रण—महाकवि के 'हर्षचरित' एव 'कादम्बरी' दोनो ही ग्रन्थो में उस समय के समाज का चित्रण किया गया है। तात्कालिक समाज को जादू टोने मे विश्वास था। सती प्रथा को आदर की दृष्टि से देखा जाता था। आकाशवाणी एव दिव्यशक्तियो पर विश्वास किया जाता था। वर्णव्यवस्था मे आस्था थी। महाकवि ने शैव, शाक्त एव क्षपणक जैसे सम्प्रदायो का भी उल्लेख किया है।

उक्त विवेचन से यह प्रमाणित होता है कि बाण ने अपने काव्य मे विषय का ऐसा साङ्गोपाङ्ग एवं सूक्ष्म चित्रण किया है कि किसी भी विषय का अभाव नही खटकता। हमे बाण के काव्य में सब कुछ एक स्थान में ही मिल जाता है। बाण के काव्य के सौष्ठव एव पूर्णता के कारण ही 'बाणोच्छिष्ट जगत् सर्वम्' यह सूक्ति प्रचलित है।

अम्बिकादत्त व्यास [१८५८-१९०० ई०]

अम्बिकादत्त व्यास के पूर्वज जयपुर के निवासी थे। अम्बिकादत्त का जन्म जयपुर मे ही चैत्र शुक्ल अष्टमी विक्रम संवत् १९१५ को हुआ था। इनके पिता का नाम दुर्गादत्त था। बाल्यकाल से ही इन्हें छन्दोरचना एवं

साहित्य से अतीव अनुराग था। प्रतिभावान् तो थे ही थे। अन्य असुविधाओं के साथ अर्थसंकट होने पर भी इन्होंने अपनी प्रतिभा को कुण्ठित नहीं होने दिया तथा विविध ग्रन्थों के निर्माण में संलग्न रहे। व्यास जी के द्वारा प्रणीत 'सामवतम्' संज्ञक नाटक की प्रशंसा में डॉ० भगवान् दास की यह सम्मति है—

'श्री अम्बिकादत्त व्यास जी का रचा 'सामवतम्' नाम नाटक दो बार पढ़ा। 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' ऐसा मानने वाले सज्जन प्रायः मेरे मत पर हँसेंगे तो भी मेरा मत यही है कि कालिदास-रचित 'शकुन्तला' से किसी बात में कम नहीं है।'

व्यास जी ने अपने अल्पकाल जीवन में लगभग ८० पुस्तकों का प्रणयन किया। इनमें कतिपय पुस्तकें अप्रकाशित हैं एवं कतिपय प्रकाशित। कतिपय अपूर्ण भी हैं। पुस्तकें संस्कृत, हिन्दी एवं ब्रजभाषा में लिखी गई हैं। व्यास जी को संस्कृत, हिन्दी, ब्रजभाषा एवं बँगला पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था। दर्शन, इतिहास, आयुर्वेद, धर्म, गणित, साहित्य, स्तोत्र, छन्द, राष्ट्रभक्ति, व्याकरण आदि विषयों को लेकर ग्रन्थों की रचना की गई है, भले ही कतिपय ग्रन्थों का कलेवर लघु हो। इनके द्वारा रचित कतिपय ग्रन्थों के नाम ये हैं—सारयमागरसुधा, सांख्यतरङ्गिणी, मीमांसा-भाष्य, इतिहास संक्षेप, चिकित्सा, धर्म की धूम, दयानन्दमतमूलोच्छेद, मूर्तिपूजा, रेखागणित, रेखागणितभाषा, समस्यापूर्तिसर्वस्व, सुकविसतसई, शिवराजविजय, गद्यकाव्यमीमांसा, सामवतम्, गणेशशतक, छन्दःप्रबन्ध, भारतसौभाग्य, प्राकृतप्रवेशिका, बालव्याकरण।

शिवराजविजय—व्यासरचित ग्रन्थों में सर्वश्रेष्ठ 'शिवराजविजय' संज्ञक गद्यकाव्य है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें कतिपय पात्र ऐतिहासिक एवं इतर कल्पित हैं। शिवराज, जयसिंह, औरङ्गजेब, माल्यश्रीक एवं रोशन आरा आदि पात्र ऐतिहासिक हैं तथा कल्पित पात्रों में मुख्य हैं—रामसिंह, गौरसिंह, शूरसिंह, श्यामसिंह, देवशर्मा, ब्रह्मचारी, सौवर्णी, चाँद खाँ आदि। जैसा कि इस उपन्यास के नाम से स्पष्ट है इसके नायक शिवराज—शिवाजी—हैं। उपन्यास के कथानक का आधार मराठा इतिहास है। चरित्रचित्रण, भावाभिव्यक्ति, वस्तुविन्यास तथा संवाद आदि की दृष्टि

से यह उपन्यास बङ्ग उपन्यासों से प्रभावित है। कविकल्पना ने ऐतिहासिक तथ्यों का समूल विनाश न करके उनकी रक्षा करने का प्रयास किया है।

'शिवराजविजय' में शिवाजी महाराष्ट्र की मुसलमानों के आक्रमण से रक्षा करते प्रदर्शित किये गये हैं। दक्षिण में यवनों के आक्रमणों का प्रतीकार करने हेतु शिवाजी अपने विश्वासपात्र मित्रों एवं शुभचिन्तकों के संयुक्त प्रयास द्वारा सक्रिय हो जाते हैं। शिवाजी की उत्तरोत्तर विजय यवनों की चिन्ता का कारण बन जाती है। शिवाजी की सूझबूझ से प्रतिपक्षी अफजल खाँ को भी मार दिया जाता है। शिवाजी तथा कवि भूषण का सम्मेलन, शिवाजी द्वारा सूरत पर विजय आदि भी विशेष घटनायें हैं। शिवाजी एवं जयसिंह में पहले तो संघर्ष होता है किन्तु बाद में सन्धि हो जाती है। शिवाजी महाराष्ट्र के सम्मान एवं स्वातंत्र्य की रक्षा करते हैं।

उपन्यास में सभी पात्रों के चरित्र का सजीव चित्रण है, चाहे वे पात्र वास्तविक अर्थात् ऐतिहासिक हों अथवा काल्पनिक। शिवराज उपन्यास के नायक हैं। वे निर्भीक, दूरदर्शी, प्रतिभावान, साहसी, धर्मरक्षक, जनप्रिय एवं उत्कट राष्ट्रप्रेमी हैं। इन्हें 'कार्यं वा साधयेय देहं पातयेयम्' सिद्धान्त में पूर्ण आस्था है। उपन्यास का अङ्गीरस वीर है। वीररस का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'महाराष्ट्रैः 'हर हर महादेव' इति, यवनैश्च 'अल्ला अल्ला' इति युद्धारम्भसूचको महानिनदोऽक्रियत्। तस्मिन् घोरेऽन्धकारे दीपप्रकाशसाक्षिके कुट्टिमेऽट्टे प्राङ्गणे च खड्गखणत्कारक्ष्वेडाहुङ्कारध्वनिप्रतिध्वनिघर्षितप्रतिवेशिनिचयं मुहूर्तं यावत् तुमुलं युद्धमभूत्।'

वीर के अतिरिक्त शृङ्गार-हास्य आदि अन्य रसों का भी यथा स्थान विनियोग हुआ है। प्रकृत काव्य में प्रकृति का भी अनूठा वर्णन प्राप्त होता है। सन्ध्या, रात्रि, सूर्योदय, सूर्यास्त, वन, नदी, पर्वत, ऋतु आदि का समाकर्षक चित्रण किया गया है। सिंहदुर्ग के आसपास का प्राकृतिक दृश्य देखें—

'अथोच्चाया एकस्या वेदिकाया उपरि समारूढो महाराष्ट्रराजः समवालोकयत यत् पूर्वस्यां रिङ्गत्तरङ्गभङ्गाहततीरा शीतलसमीरा घलद्घलद्ध्वनिघोरा गम्भीरा नीरानाम्नी नदी प्रवहति। दक्षिणा

प्रतीच्या च गिरिराजीनां परतो गिरिराजयः स्वकीयैरभ्रंलिहैरुच्चोच्चैः सानुभिरधित्यकास्थैररण्यानीसस्थानैर्मेघमालामण्डलभ्रममुत्पादयन्ति।'

कल्पना, भाषा एवं भावों की दृष्टि से भी 'शिवराजविजय' उत्तम काव्य ठहरता है। भाषा सर्वत्र रस-भाव की अनुगामिनी रही है। ग्रन्थकार ने सभी प्रमुख अलंकारों का सफल विन्यास प्रकृत उपन्यास में किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या, सहोक्ति, अनुप्रास, विरोधाभास सभी का उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। संवाद का सौष्ठव इस उपन्यास का अन्यतम वैशिष्ट्य है। संवादों में औचित्य, वाग्वैदग्ध्य एवं नीति का परिपाक द्रष्टव्य है। अनेक अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग कवि ने किया है। उसने समाज के व्यापक चित्रों को उपस्थित किया है। यवनों एवं हिन्दुओं के धार्मिक विश्वास, रहन-सहन, भोजन, वस्त्र, राजदरबार, शिविर, देवालय, विवाह, शिक्षा आदि का जीता-जागता चित्र उपस्थित कर देना कवि की सफलता का द्योतक है। तात्कालिक राजनैतिक स्थिति का सफल अङ्कन एवं हिन्दुओं के आत्मसम्मान की रक्षा की प्रेरणा कवि का लक्ष्य रहा है।

'शिवराजविजय' महाकवि बाण के काव्यों से निःसन्देह प्रभावित है। एक सफल गद्य-कृति में जो गुणसमवाय होना चाहिए 'शिवराजविजय' में वह सर्वथा विद्यमान है।

अध्याय ६

गीतिकाव्य

लक्षण एवं विशेषताएँ—गीतिकाव्य का अन्तर्भाव 'खण्डकाव्य में होता है। जो काव्य महाकाव्य नहीं होते 'खण्डकाव्य' माने जाते हैं अर्थात् जो काव्य महाकाव्यों के लक्षणों से युक्त नहीं होते 'खण्डकाव्य' या 'गीतिकाव्य' कहे जाते हैं—"खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च" (साहित्यदर्पण–६।२।२९)। ध्यान रहे अलङ्कारग्रन्थों का पारिभाषिक शब्द 'खण्डकाव्य' ही है 'गीतिकाव्य' नहीं। 'गीतिकाव्य' तो अंग्रेजी के 'Lyric poetry' का अनुवाद है। 'Lyric Poetry' की प्रमुख विशेषता उसका गेय होना है।

गीतिकाव्य में जीवन के एक प्रसङ्ग का अथवा एक भाव का गेय पदावली मे-माधुर्यसिक्त वर्णो मे चित्रण रहता है। कभी-कभी मानव के हृदय मे कोई विशेष भाव उठता है जिसके प्रभाव से उसमे तन्मयता आ जाती है। भावोत्कर्ष के कारण हृदय के उद्‌गार गीत बनकर कण्ठ से स्वतः प्रवाहित होने लगते हैं—मधुर पदों मे—श्रुतिप्रिय ध्वनि में, जो मार्मिक अनुभूति से उत्पन्न होने के कारण श्रोता के हृदय मे मार्मिक अनुभूति को जगाते हैं। ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जैसे कवि हमारे आपके हृदय की अनुभूति का ही साक्षात्कार करा रहा हो, हृदय मे प्रवेश करके हृदय से तन्मय होकर वहीं से बोल रहा हो। ऐसे वर्णनो के अवसर पर कवि इधर उधर नही भागता। उसे दायें-बायें, आगे पीछे नही जाना होता है। या वह ऊपर ही उठता जाता है या गहराई मे उतरता है। उसका वर्ण्यक्षेत्र सीमित है। वहाँ जीवन की समग्रता नही, एकदेशीयता है। वहाँ विस्तार नही है, सूक्ष्मता है। भावो का उत्कर्ष गीतिकाव्यो मे मिलता है और मिलती है कोमलकान्तपदावली। गीतिकाव्यो मे सभी रसो को स्थान नहीं मिलता। प्रायः श्रृङ्गार एव शान्त रस का समावेश रहता है। रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स रसों का योग गीतिकाव्य मे नहीं होता।

कुछ गीतिकाव्य 'मुक्तक' रूप मे हैं। मुक्तक उन पद्यों को कहते हैं जो स्वय में पूर्ण होते हैं। रसानुभूति के लिये वे दूसरे पद्यो पर आश्रित नही रहते। कुछ गीतिकाव्यो में पूर्वापर क्रम भी देखा जाता है, यथा ऋतुसहार, मेघदूत आदि में। गीतिकाव्यो मे यदि कथानक होता है तो उसका उतना अधिक महत्त्व नही जितना अधिक महत्त्व वर्णमाधुर्य, पदलालित्य, भावोत्कर्ष, रसपेशलता, गेयता एवं छन्दोयोजना आदि का। गीतिकाव्य होने के लिये यह भी आवश्यक नहीं कि उसमे केवल पद्य पद्य ही हों। 'गीतगोविन्द' मे पद्यों के साथ गद्य के भी दर्शन होते हैं। हाँ, गीतिकाव्य के लिये ग्रन्थ का लघुकाय अर्थात् सक्षिप्त होना आवश्यक है। गीतिकाव्य के विषय प्रायः नीति, श्रृङ्गार, धर्म एव प्रकृति के दृश्य होते हैं। गीतिपद्यो का अर्थ न जानने पर भी केवल सुनकर ही श्रोता उत्कण्ठित हो जाता है।

प्रमुख गीतिकाव्य

कालिदास के गीतिकाव्य—यदि ऋतुसहार कालिदास की रचना है तो 'ऋतुसंहार' और 'मेघदूत' ये दो गीतिकाव्य कालिदास की कृतियाँ हैं।

ऋतुसंहार—ऋतुसंहार कालिदास की ही रचना है इस विषय में विद्वानों में विप्रतिपत्ति है। जो विद्वान् 'ऋतुसंहार' को कालिदासप्रणीत न मानने के पक्ष में हैं उनके तर्क ये हैं—

१—अलंकारग्रन्थों में 'ऋतुसंहार' का एक भी पद्य उदाहरण में नहीं मिलता।

२—'ऋतुसंहार' में प्राप्त शृंगार का स्तर घटिया है।

३—प्रकृतिनिरीक्षण में सूक्ष्मता नहीं है।

४—भाषा एवं भाव की दृष्टि से ग्रन्थ में उत्कृष्टता नहीं है।

५—मल्लिनाथ ने 'ऋतुसंहार' पर टीका नहीं लिखी।

जो विद्वान् मानते हैं कि 'ऋतुसंहार' कालिदास की ही रचना है, उनके तर्क ये हैं—

१—अलंकारग्रन्थों में कालिदास के 'ऋतुसंहार' से इसलिये उदाहरण नहीं लिये हैं गये कि 'ऋतुसंहार' कालिदास की प्रथम कृति है अतएव उतनी उत्कृष्ट नहीं है जितनी कालिदास की अन्य कृतियाँ। अतः अन्य उत्कृष्ट कृतियों के वर्तमान रहते 'ऋतुसंहार' से उदाहरण क्यों दिये जाते ?

२—कालिदास की पहली कृति 'ऋतुसंहार' शृङ्गार का स्वरूप निम्नस्तर का होना स्वाभाविक ही है। यौवन के चाञ्चल्य में भावों के अधिक परिपक्व होने की आशा रखना व्यर्थ है।

३—प्रकृति-चित्रण में सूक्ष्मता का अभाव भी ऋतुसंहार को कालिदास की प्राथमिक कृति सिद्ध करता है।

४—इसी प्रकार भाषा एवं भाव में सौष्ठव के अभाव से भी प्रकृत ग्रन्थ कालिदास की पहली रचना सिद्ध होता है।

५—मल्लिनाथ ने कालिदास के केवल तीन ग्रन्थों पर ही टीका लिखी है। वे तीन ग्रन्थ हैं—रघुवंश, कुमारसम्भव तथा मेघदूत। अतः मल्लिनाथ की टीका के अभाव में यदि ऋतुसंहार को कालिदास की रचना न माना जायेगा तो यही मानना होगा कि कालिदास ने केवल तीन ही ग्रन्थ लिखे—रघुवंश, कुमारसम्भव और मेघदूत। तब तो यह मानना होगा कि मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञानशाकुन्तल भी कालिदास की रचनायें नहीं हैं।

६—ऋतुसंहार की भाषा-शैली, प्रकृति-चित्रण आदि भी मनोरम एवं मौलिक हैं, भले ही वह कालिदास की अन्य रचनाओं के तुल्य न हो। अतः ऋतुसंहार को कालिदास की अप्रौढ़ावस्था की प्राथमिकी कृति मानने में किसी प्रकार का सङ्कोच नहीं करना चाहिए।

ऋतुसंहार में ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर तथा वसन्त का क्रमशः वर्णन प्राप्त होता है। पूरे ग्रन्थ में १४४ श्लोक हैं। समग्र संस्कृत साहित्य में ऋतुसंहार ही ऐसा ग्रन्थ है जिसमें सभी ऋतुओं का और केवल ऋतुओं का ही एकत्र वर्णन प्राप्त होता है। ग्रन्थकार अपनी प्रिया को सम्बोधित करके ऋतुओं का वर्णन करता है।

ग्रीष्म की ऋतु। कड़ाके की धूप, चाँदनी, चन्दन, पुष्प, माला, रेशमी वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य, वीणा का स्वर, मदिरा एवं स्नानजल का सेवन करते हैं पुरुष-स्त्रियाँ इन दिनों। युवक-युवतियाँ अनेक प्रकार की कामकेलियाँ करते हैं। सिंह हाथी, मयूर-सर्प, मेढक-सर्प आदि जीव प्रचण्डताप से इतने अधीर हो गये हैं कि सन्निकट होने पर भी स्वाभाविक वैर को भूल गये। देखिये तो इस ग्रीष्म-ऋतु ने जीवों को कितना तंग कर रखा है—वृक्ष की पत्तियाँ झड़ गई हैं। उन पर बैठे पक्षी गर्मी के मारे हाफ रहे हैं। उधर गर्मी से सताये गये वानर पर्वत की कुञ्जों में भाग गये हैं। बेचारे गवय पानी की खोज में सब ओर चक्कर लगा रहे हैं। शरभों को कहीं जल-कूप मिल गया है और वे बिना हिले-डुले पानी पी रहे हैं—

> 'श्वसिति विहगवर्गः शीर्णपर्णद्रुमस्थः
> कपिकुलमुपयाति क्लान्तमद्रेर्निकुञ्जम्।
> भ्रमति गवययूथः सर्वतस्तोयमिच्छन्
> शरभकुलमजिह्मं प्रोद्धरत्यम्बुकूपात् ॥' (१।२३)

कहीं दवाग्नि से धरा दग्ध हो रही है, अग्नि की लपटों से जीव जले जा रहे हैं, जलते हुये सूखे बाँस धाड़-धाड़ की आवाज कर रहे हैं। आग वृक्षों के खोखलों में घुस जाती है। पशुवर्ग प्राणरक्षणहेतु साथ-साथ भागा जा रहा है, आपस की शत्रुता भुलाकर।

वर्षा क्या है एक राजा है। जलसीकरों से व्याप्त मेघ ही वह मतवाला हाथी है जिस पर वह सवार होता है। विद्युद् इसकी पताका है। बादलों की गरज इसका नगाड़ा है। यह ऋतु कामिजनों को अत्यन्त प्रिय है।

पपीहा पानी की रट लगाये है। जलधारायें वाण बनकर प्रवासियों को चुभ रही हैं। मेघध्वनि सुनकर मयूर उत्कण्ठित हो कर मयूरी का आलिङ्गन चुम्बन करता हुआ नाच उठता है। प्रियसमागमहेतु अभिसरण करनेवाली कामिनियों के मार्ग को विद्युत् प्रकाशित कर देती है।

बरसाती नदियों के क्या कहने। इनका आनन्द तो देखो। प्रेम में अन्धी कुलटा स्त्रियों के समान हैं ये। भागी जा रही हैं अपने प्रेमी समुद्र से मिलने के लिये, बड़ी तेजी से, तटवृक्षों को गिराती हुई, जल को अधिक मलिन बनाती हुई—

'निपातयन्त्य परितस्तटद्रुमान्
प्रवृद्धवेगं सलिलैरनिर्मलै।
स्त्रिय सुदुष्टा इव जातिविभ्रमा
प्रयान्ति नद्यस्त्वरित पयोनिधिम् ॥' (२।७)

मेघगर्जन को सुनकर चौंकी हुई सुन्दरियाँ अपने सापराध पतिजनों से भी लिपट जाती हैं। विविध पुष्प अपनी छटा दिखला रहे हैं। युवक एवं युवतियाँ अनेकविध शृङ्गार किये हुये हैं। युवतियाँ मदिरा पीकर प्रेमियों को समागमहेतु उत्तेजित करती हैं।

पुष्प, नदी, मदलक्ष्मी, कास, हस, धान, श्वेत मेघ, ज्योत्स्ना एव मन्द पवन से सुशोभित शरद् बड़ी ही मनोरम है। प्रोषितभर्तृकाओं के अङ्ग को यह चन्द्रमा भूने डाल रहा है। धरती और आकाश दोनों निर्मल हैं। जल की मलिनता दूर हो चुकी है। निरभ्र अम्बर में नक्षत्र एव चन्द्रमा शोभा देने लगे। कंदर्प से प्रभावित युवतियाँ रात्रि म सुरतरस को लूटने की योजना पर वार्ता कर रही हैं। शरद् की शोभा चन्द्रमा की कान्ति को छोड़कर स्त्रियों के मुख म, हस के शब्दों को छोड़कर स्त्रियों के नूपुरों में और बन्धूक की कान्ति को छोड़कर स्त्रियों के अधरों में जा बसी—

'शीतांशु विहाय वदनेषु शशाङ्कलक्ष्मी
काम्यं च हंसवचनं मणिनूपुरेषु।
बन्धूककान्तिमधरेषु मनोहरेषु
क्वापि प्रयाति सुभगा शरदागमश्री. ॥' (३।२७)

पाला गिराती हुई हेमन्त का प्रवेश। नव उद्गीयमान अंकुर, चौकड़ी भरते हरिणियों के झुण्ड, लहलहाते धानों से भरे खेत, उन्मत्त हस, कमलों से भरे सरोवर सभी सब मनोहारी हैं। कहीं प्रोषितभर्तृका वनिता धूप में बैठी प्रियतमकृत दन्ताघात एवं परिपीडनग्रस्त अधर का निरीक्षण कर रही

है। यह देखो, एक दूसरी रमणी है। प्रगाढ सुरत के कारण स्वय परिश्रान्त, रात्रिजागरण के कारण कमल जैसे लाल नेत्र, शिथिल असप्रदेश और अस्तव्यस्त केशराशि। सूर्य की कोमल किरणो मे पडी सो रही है यह रमणी।

यह आ गई शिशिर ऋतु। इस कडाके के जाडे मे न तो चन्दन और न चन्द्रमा की शीतल किरणें, न घरो की निर्मल छतें और न तुषारशीतल वायु ही किसी के मन को भाती है। इस समय लोग घर की खिडकियाँ बन्द कर लेते हैं तथा अग्नि, धूप, मोटे कपड और युवतियो के आलिङ्गन का सेवन करते हैं—

'निरुद्धवातायनमन्दिरोदर
हुताशनो भानुमतो गभस्तय.
गुरूणि वासांस्यबलाः सयौवना.
प्रयान्ति कालेऽत्र जनस्य सेव्यताम् ॥ (५।२)

मधुर भावो के उद्बोधक ऋतुराज वसन्त जगत् मे पदार्पण करते ही बाह्याभ्यन्तर सर्वत्र सौन्दर्य बिखेर रहा है। फूलो से लदे वृक्ष, कमलो से भरे सरोवर रत्यभिलाषिणी रमणियाँ, सुगन्धित पवन, सुखप्रद सन्ध्यायें तथा रमणीय दिन सबके सब अधिकाधिक सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। सुन्दरियो की काली केशराशि में अशोक के फूल और नवमल्लिका की प्रस्फुटित कलियाँ मन को बरबस आकृष्ट कर लेती हैं। वृक्ष की छाया और चन्द्रमा की किरणें तो लोग सेवन करने ही लगते हैं किन्तु शैत्य के निवारणहेतु प्रियाओ का प्रगाढ आलिङ्गन अतीव आनन्ददायी होता है।

पलाशवन से आच्छादित धरा रक्तवर्ण शाटिका को धारण किये वधू के समान मन को आकृष्ट कर लेती है। ये लाल टेसू और कनैर के फूल दिखलाई पडते ही कामियो के हृदयो को बीध देते हैं और उस पर भी कोकिल के मधुर शब्द युवको को मारे डाल रहे हैं। कान्ता से वियुक्त पथिक भला बौराए आम्र वृक्ष को देखकर कैसे धीरज धरे। उस बेचारे की बडी ही दयनीय स्थिति हो जाती है। उसे अपनी प्रियतमा का स्मरण हो आता है। वह बौराये आम की शोभा नही देख सकता, उसकी सुगन्ध को नही सह सकता। तभी तो वह आँखे बन्द कर लेता है, आँसू बहाता है और विह्वल हो जाता है, नाक को हाथ से बन्द कर लेता है और फूट फूट कर रोने लगता है। वसन्त ने उस पर कैसा गजब ढाया है—

'नेत्रे निमीलयति रोदिति याति शोक
घ्राण करेण विरुणद्धि विरौति चोच्च ।

कान्तावियोगपरिखेदितचित्तवृत्ति—
दृष्ट्वाध्वगः कुसुमितान्सहकारवृक्षान् ॥'(६।२८)

प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में कवि पाठकों के प्रति वर्ण्यमान ऋतु के मङ्गलकारी होने की शुभ कामना प्रकट करता है।

(४) मेघदूत

१२१ पद्यों वाले इस गीतिकाव्य के दो भाग हैं—पूर्वमेघ एवं उत्तरमेघ। सम्पूर्ण काव्य 'मन्दाक्रान्ता' छन्द में लिखा गया है। संस्कृत साहित्य के इस प्रसिद्ध गीतिकाव्य का रस विप्रलम्भ शृंगार है।

मेघदूत का कथानक

पूर्वमेघ—यक्षाधिपति कुबेर ने अपने एक अनुचर यक्ष को कर्तव्य के अनुष्ठान में प्रमाद करने के कारण शाप दे दिया। उसकी सारी महिमा घुल गई और अपनी नगरी अलका को छोड़ने के लिये विवश मर्त्यलोक में आकर रामगिरि पर्वत पर आश्रम बनाकर रहने लगा। आठ महीना बीतने के बाद जब उसने रामगिरि की चोटी पर चिपके मेघ को देखा तो उसे प्रियविरह दुःसह हो उठा। मेघ का स्वागत करके उसके माध्यम से प्रिया तक सदेश भेजने का उसने निश्चय किया अन्यथा वर्षा ऋतु के इस वियोग-काल में उस पर (प्रिया पर) गाज गिर जायेगी। वह स्वयं को जीवित रख सके एतदर्थ अपना कुशलसमाचार तथा वापस पहुँचने के समय की सूचना देनी आवश्यक है।

मेघ की शुभ यात्रा के सूचक शकुन हो रहे हैं, राजहंस मार्ग तय करने में मेघ का साथ देंगे। यक्ष मेघ को पहले अलका का मार्ग बतलाता है—यक्ष कहता है कि हे मेघ! मार्ग में भोली सिद्धाङ्गनायें और गाँवों की सुन्दरियाँ आश्चर्य तथा लोभ भरी दृष्टि से तुम्हें देखेंगी। वहाँ से उत्तर की ओर चलना। इसके बाद तुम नर्मदा नदी के जल का पान करना। तुम्हारी घीरज को सुनकर भीत एवं काँपती हुई सिद्धाङ्गनाओं का आलिङ्गन करके सिद्ध लोग तुम्हारे प्रति कृतज्ञ होंगे। वेत्रवती के मुख का पान करके नीचै पर्वत पर रुक जाना जहाँ की गुफाओं से रतिनिरत वेश्याओं के शरीर की सुगन्ध निकल रही होगी।

मार्ग में पानी बरसाते, छाया करते उज्जयिनी पहुँचना। वहाँ सुन्दरियों के चञ्चल अपाङ्गों को देखकर अपने नेत्रों को सफल बनाना। हाव-भाव प्रकट करने वाली निर्विन्ध्या नदी के रस का पान करना। उज्जयिनी की नदी

शिप्रा की वायु सुगन्धित है; वहाँ रत्नों का बाहुल्य है; उदयन-वासवदत्ता की प्रेम-कथा वहाँ अब भी सुनने को मिलती है; वहाँ के महलों में अधिक ऐश्वर्य है। महाकाल-मन्दिर जाकर सन्ध्याकाल में पूजन के समय गर्जना करके पुण्यलाभ करना। महाकाल-मन्दिर की वेश्याओं को तुम्हारे जलबिन्दुओं से सुख मिलेगा। अभिसारिकाओं को रात्रि में, अपने विद्युत्-प्रकाश से मार्ग-दर्शन कराना। तुम्हारी पत्नी-विद्युत् थक जायेगी इसलिये वह रात किसी घर के छज्जे पर—जहाँ कबूतर सोये हुए हों-विश्राम लेना। भोर होते ही सूर्य कमलिनीरूपी खण्डिता नायिका (पत्नी) के ओसरूपी आँसुओं को किरण-रूपी हाथों से पोंछने आयेगा। देखो मेघ! तुम उसके कर (किरण) को न रोकना, नहीं तो वह बेहद नाखुश हो जायेगा। कार्तिकेय की पूजा अवश्य करना और उनके वाहन मोर को अपनी गर्जना से नचाना।

इसके पश्चात् चर्मण्वती नदी को प्रणाम करके दशपुर की सुन्दरियों की आँखों के सामने से होकर निकलना। पुनः सरस्वती के जल का पान करते हुए कनखल निकल जाना। हिमालय के एक शिला-तल पर अङ्कित शिव के चरण को प्रणाम करना। इसके बाद क्रौंच-रन्ध्र से होकर उत्तर की ओर चलना और फिर कैलास पर पहुँचना। वहाँ स्त्रियाँ कङ्कणों द्वारा तुम्हें काट-काट कर तुमसे अपनी गर्मी दूर करने के लिये तुमको छोड़ना नहीं चाहेंगी। ऐसी स्थिति में अपनी गर्जना द्वारा उनको डरा देना और भाग निकलना। उसी कैलास की गोद में, उसकी प्रिया के समान अलका को देखकर तुम समझ जाओगे कि यही है अलका। उसका गङ्गा-रूप धवल वस्त्र खिसक रहा होगा। अलका के सतखण्डे महलों पर पहुँच कर पानी बरसाने लगोगे तो ऐसा प्रतीत होगा कि कामिनी के केशपाश में मुक्ताराशि गुही हो।

उत्तरमेघ—यक्ष कहता है कि हे मेघ! अलका के भवन तो बिल्कुल वैसे हैं जैसे तुम हो। तुम्हारे पास विद्युत् है और उनमें ललित वनिताएँ; तुम्हारे पास इन्द्रधनुष है, तो भवनों में रङ्ग बिरङ्गे चित्र······। वहाँ सभी ऋतुओं में सौन्दर्य है। कल्पवृक्ष द्वारा वहाँ प्रत्येक इच्छा की पूर्ति हो जाती है। हमारा घर दूर से ही दिखलाई देगा। उसमें गोल फाटक है। पास में ही प्रियाद्वारा पुत्रवत् परिपालित छोटा-सा कल्पवृक्ष है। पास में ही बावड़ी, कृत्रिम गिरि, अशोक और मौलसिरी के वृक्ष हैं।

उसी घर में कृशकाय, छोटे-छोटे दाँतों वाली, रक्त-अधर से युक्त कृश कटि चकित हरिणी के समान नेत्रों वाली, गम्भीर नाभि से युक्त तथा स्तनों

के भार से झुकी हुई जो युवती दिखलाई पड़े मेघ! उसी को तुम मेरी प्रियतमा समझना। दिन में तो उसके पास सखियाँ रहती हैं अतएव रात में जाना। यदि उसे नींद आ रही तो पहर भर रुक जाना और जल-फुहार से जगाकर मन्द गर्जन द्वारा सन्देश कहना प्रारम्भ करना कि—तुम्हारा प्रिय कुशल से है और तुम्हारी कुशल जानने का इच्छुक है। वह तुम्हारे वियोग में तड़प रहा है। मिलन के दिन शीघ्र आवेंगे। चार महीने आँख बन्द करके काट डालो तुम, फिर भरपूर आनन्द लूटना।

यक्ष कहता है कि मेघ! यह मेरा कार्य तुम पूरा कर दो, मित्र समझ कर या मेरे ऊपर तरस खाकर। तुम्हारी प्रियतमा तुम से क्षण भर के लिये भी वियुक्त न हो। मेघ अलका जाकर यक्षिणी को सन्देश सुनाता है। यक्षिणी आनन्द विभोर हो जाती है। कुबेर इस विषय से अवगत होते हैं और शाप लौटाकर पति-पत्नी का संयोग करा देते हैं।

मेघदूत का स्रोत—*यक्ष ने मेघ को दूत बनाकर अपनी प्रियतमा के* समीप सन्देश भेजा है। क्या एतादृशी कल्पना का कोई स्रोत है? वाल्मीकि रामायण मे राम हनुमान् को दूत बनाकर सीता के पास सन्देश भेजते हैं। मेघदूत की टीका 'सञ्जीवनी' के प्रणेता मल्लिनाथ ने इस घटना को कालिदास द्वारा मेघ को दूत बनाने की कल्पना का आधार माना है[१]।

मेघदूत के कथानक का स्रोत—मेघदूत के कथानक-यक्ष एवं यक्षिणी के शापजन्य विरह की कथा का स्रोत ब्रह्मवैवर्त पुराण[२] प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त 'चारित्रवर्द्धनी' टीका में भी उल्लेख किया गया है कि कुबेर ने कर्तव्य मे प्रमाद करने वाले एक यक्ष को शाप दिया था।[२] इन दोनों में से 'ब्रह्मवैवर्त' पुराण के कथानक को ही स्रोत मानना उपयुक्त होगा। 'चारित्रवर्द्धनी' के कथानक का स्रोत अज्ञात है।

मेघदूत में प्रकृति-चित्रण

मेघदूत विशेषकर पूर्वमेघ प्रकृति-चित्रण से भरा पड़ा है। भावविह्वल यक्ष धूम, ज्योति, सलिल एवं मरुत् के सन्निपात—मेघ के द्वारा सन्देश भेजने के लिये तत्पर हो जाता है। मेघ तो स्वयं प्रकृति का ही अंग है। यक्ष मेघ

१—'सीतां प्रति रामस्य हनुमत्सन्देशं मनसि निधाय मेघसन्देशं कविः कृतवानित्याहुः' ('पूर्वमेघ' श्लोक संख्या १ पर 'सञ्जीवनी')

२—विस्तृत विवेचन के लिये देखिये श्लोक संख्या १ की टिप्पणी के अन्तर्गत 'कान्ताविरहगुरुणा' पद की व्याख्या। (पूर्वमेघ—व्याख्याकार: डॉ० दयाशङ्कर शास्त्री। भारतीय प्रकाशन, चौक, कानपुर)

को अलका के मार्ग का वर्णन करता है। मार्ग प्राकृतिक है। पूर्वमेघ में पर्वत, नदी, गुफा, वायु, वृक्ष, लता, पुष्प, चातक, बलाका, हंस, मयूर, शरभ, इन्द्रधनुष, अरण्य आदि प्राकृत विषयों का मनोरम वर्णन प्राप्त होता है।

आम्रकूट पर्वत की चोटी पर जब मेघ पहुँचेगा तो आम्रकूट की शोभा कैसी होगी? यक्ष मेघ से कहता है कि यह आम्रकूट पर्वत जङ्गली आम के वृक्षों से ढका हुआ है। वृक्षों के पके पीले आम शोभा दे रहे हैं। अब जब बालों की चिकनी चोटी के समान श्याम वर्ण मेघ! तुम आम्रकूट के शिखर पर चढ़ जाओगे तो यह पर्वत, जो कि सर्वत्र पीतवर्ण किन्तु शिखर पर तुम्हारे कारण काला है, ऊपर से देवदम्पतियों को ऐसा सुन्दर प्रतीत होगा जैसे पृथ्वी का स्तर हो (सर्वत्र गौरवर्ण होता है किन्तु बीच का भाग काला होता है।)—

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै—
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।
'नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां।
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डु॥'[1]

रामगिरि की चोटी पर चिपका हुआ मेघ कैसा सुन्दर लगता है? जैसे वप्रक्रीडा में निरत कोई हाथी हो[2]। कहीं वायु धीरे-धीरे बह रही है; मतवाला चातक मधुर स्वर में बोल रहा है और गर्भाधान का समय—वर्षाऋतु समझकर बलाकायें आनन्द मना रही हैं। कैलास की यात्रा करने वाले राजहंस कमलनाल के टुकड़ों को पाथेयरूप में लिये उड़े जा रहे हैं; रत्नों की शोभा के मिश्रण के समान सुन्दर इन्द्रधनुष उदित हो रहा है, पहली जलवृष्टि के कारण जुती हुई 'माल' भूमि सुगन्ध बिखेर रही है; विन्ध्य की ऊँची नीची तलहटी में बिखरी नर्मदा हाथी के शरीर पर की गई चित्रकारी के समान शोभा दे रही है।

हरित कपिश नीप के पुष्पों के केसर अभी आधे ही उग पाये हैं और दलदलों में लगी कन्दलियों में पहली-पहली कलियाँ खिल गई हैं; सारङ्ग पृथ्वी की सोंधी गन्ध सूँघ रहे हैं, जलबिन्दुओं को गोंचने में दक्ष चातक दिखाई दे रहे हैं, अर्जुन वृक्षों से पर्वत सुगन्धित हो गये हैं, मेघ को देखकर उत्कण्ठित—डबडबाई आँखोंवाले मोर बोल रहे हैं; केतकी के अर्द्ध विकसित

१–पूर्वमेघ १८

२–'आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।' (पूर्वमेघ–२)

पीले पुष्प दिखलाई दे रहे हैं, बलिभोजी पक्षी घोंसले बना रहे हैं, जामुन के वन फल पकने के कारण काले हो गये हैं, मतवाले सारस बोल रहे हैं, कमलों की सुगन्ध फैल रही है, हाथी सूँडों से सुगन्धित वायु पी रहे हैं, हरिण छलांग मार रहे हैं, वायु के टकराने के कारण बाँसों से मधुर ध्वनि आ रही है इत्यादि।

कालिदास बाह्यप्रकृति के चित्रण में ही कृतार्थ नहीं होते। उनका अन्त प्रकृति का चित्रण भी अनूठा है बजोड़ है। कालिदास की प्रकृति चेतन है, उसका हृदय भी मानव जैसा ही है।

कालिदास की प्रकृति उपकार करती है और उपकार को मानती है। कालिदास के मेघ का उपकार देखिये। आम्रकूट पर्वत के वनों में लगी आग का वह मूसलाधार वर्षा द्वारा बुझा देता है। आम्रकूट भी कृतज्ञ है। वह थके हारे मेघ को अपने सिर पर ले लेता है। मित्रता जा ठहरी। तुच्छ व्यक्ति भी उपकार को मानता है फिर भला आम्रकूट पर्वत क्यों न उपकार मानेगा? जो इतना उच्च है, महान् है—

'त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः॥' (पूर्वमेघ-१७)

कालिदास की प्रकृति में भी कोमलभाव—प्रेमतत्त्व का साम्राज्य है। बलाकायें रतिकाल को समझकर मेघ का स्वागत करती हैं, मेघ अपने मित्र 'रामगिरि' से विदाई लेता है, रामगिरि भी मेघ के वियोग में रोता है। वेत्रवती नदी अपनी तरङ्गरूपी भौंहों को तान लेती है और उसका प्रेमी मेघ उसके मुख का-अधर का—पान करता है। प्रेमिका के तुल्य निर्विन्ध्या नदी अपने शृङ्गार तथा हाव भाव के द्वारा रति हेतु मेघ को आमन्त्रित करती है फिर क्यों न मेघ उसका रस ले—

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु॥' (पूर्वमेघ–२९)

[(हे मेघ!) मार्ग में लहरों की हिलोर से चंचल पक्षियों की पंक्तिरूपी करधनी की लड़ावली, लड़खड़ाने के कारण मनोहर ढंग से बहती हुई तथा भँवररूपी नाभि को दिखलाने वाली निर्विन्ध्या से मिलकर

अन्दर रस से युक्त हो जाना (उसके रस का पान करना) क्योंकि स्त्रियों का प्रिय के प्रति विलास प्रारम्भिक प्रार्थनावाक्य होता है।]

यक्ष की विरहव्यथा पर वनदेवियों को तरस आता है। यक्ष जब स्वप्न में अपनी प्रियतमा को देखकर प्रगाढ़ आलिङ्गन के लिए ऊपर बाँहें फैलाता है तब वनदेवियाँ वृक्ष के किसलयों पर मोती जैसे बड़े बड़े अश्रु बिन्दु टपका देती हैं—

'मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो—
लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥' (उत्तरमेघ-४३)

निर्विन्ध्या नदी मेघ के वियोग में कृश हो गई है। जल की पतली धारा विरहावस्था को सूचित करनेवाली उसकी चोटी है। तटवर्ती वृक्षों से गिरे पीले पत्तों के कारण वह पीली हो गई है, जैसे मेघ के विरह में ही पीली हो गई हो। कितना सौभाग्यशाली है मेघ जिसके विरह में उसकी प्रियतमा की ऐसी दशा है। प्रियतमा का ऐसा अनन्य प्रेम किसी सौभाग्य-शाली को ही मिलता है। यक्ष कहता है कि मेघ ! कुछ ऐसा उपाय करना जिससे उसकी दुर्बलता दूर हो जाये—

'वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः।
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥' (पूर्वमेघ-३०)

मेघदूत का काव्यसौष्ठव

विप्रलम्भ शृङ्गार—मेघदूत विप्रलम्भ शृङ्गार रस का काव्य है। प्रणयी यक्ष कुबेर के शाप के कारण अपनी प्रियतमा से वियुक्त होकर 'रामगिरि' पर्वत पर विरह के दिन काटने लगा कि आठ मास व्यतीत हो गये। आषाढ़ का पहला ही दिन था कि पर्वत की चोटी पर देखा कि मेघ क्रीडा कर रहा है। मेघ को देखकर यक्ष की विरहव्यथा दुःसह हो गई, तड़प कर रह गया, खड़ा ही नहीं हुआ जा रहा था उससे। जैसे-तैसे जी कड़ा करके खड़ा हुआ। दुनियाँ की निगाहों में वह पागल था क्योंकि वह मेघ को दूत बनाकर अपनी प्रियतमा के पास संदेश भेजने के लिये अनुनय-विनय करने लगा। काममावों से अभिभूत उस बेचारे को कहाँ पता कि यह मेघ है—जडपदार्थ, संदेश ले जायेगा। जो भी हो, उसने प्रियतमा के

वासस्थान—अलका का मार्ग बतला दिया। उसके पश्चात् उत्तरमेघ में विरहव्यथा की करुण कहानी है—यक्ष की अपनी और अपनी पत्नी की। मानवहृदय का इस काव्य में जैसा चित्रण कालिदास ने किया है, स्यात् किसी कवि ने किया हो।

विरहविधुर यक्ष कहता है कि मैं विरह पीडिता अतएव प्रणयकुपिता यक्षिणी का चित्र धातु (गेरू आदि) से प्रस्तरखण्ड पर चित्रित करके उसके पैरों पर गिरकर क्षमा याचना करना चाहता ही था कि वैसे ही मैं इतना भावविह्वल हो गया कि आँसुओं की बाढ़ आ गई (और प्रियाचित्रणकार्य रुक गया)। निष्ठुर दैव को यह भी सह्य नहीं कि चित्र के माध्यम से ही हमारा प्रिया से समागम हो जावे—

'त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायां—
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः॥' (उत्तरमेघ—४२)

मौलिकता—भले ही 'मेघदूत' काव्य की रचना में कालिदास को वाल्मीकि रामायण के रामदूत हनुमान् की कथा से प्रेरणा मिली हो। भले ही अपने कथानक को महाकवि ने 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' से लिया हो, फिर भी कालिदास की मौलिकता एवं प्रतिभा ने एक अलौकिक काव्य की सृष्टि कर दी।

श्रेष्ठ गीतिकाव्य—संस्कृत के श्रेष्ठ गीतिकाव्यों में से 'मेघदूत' अन्यतम है।

सूक्तियाँ—मेघदूत में अनेक उत्कृष्ट सूक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

गेयता—मेघदूत के पद्यों में गेयता है जो गीतिकाव्यों की विशेषताओं में अन्यतम है। 'मन्दाक्रान्ता' छन्द का उपयोग विप्रलम्भ शृङ्गार के लिये सर्वथा उचित सिद्ध हुआ है।

नगरचित्रण—'उज्जयिनी' और 'अलका' का वर्णन करते समय कवि ने वहाँ का चमत्कारपूर्ण चित्र उपस्थित किया है।

उपदेश—मेघदूत विरहजन्यप्रेम—निश्छलनिर्व्याजप्रेम—का उपदेश देता है। 'न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते'। सिद्धान्त का ज्वलन्त उदाहरण 'मेघदूत' है। यक्ष एवं यक्षिणी पूर्णतः संयमित जीवन व्यतीत करते हैं। वे रोते हैं, गिरते हैं, उन्मत्तावस्था को प्राप्त करते हैं, यहाँ तक कि प्राण भी त्याग देते किन्तु मर्यादाभङ्ग की गन्ध यहाँ नहीं है।

यही है मानवता के लिये कालिदास का शाश्वत उपदेश जो उन्होंने मेघदूत के माध्यम से दिया है।

आध्यात्मिकता—यद्यपि 'मेघदूत' में शृङ्गाररस का प्रचुर सन्निवेश है तथापि देवभक्ति का भी पुट इस काव्य में कम नहीं है। जिन आश्रमों में यक्ष निवास करता है उनका जल सीता के स्नान करने के कारण पवित्र है। राम के वन्दनीय चरणों के चिह्न रामगिरि पर अंकित हैं। शिवपार्वती, बलराम, कृष्ण, कार्तिकेय आदि का उल्लेख पूज्यभाव से अनेकत्र हुआ है।

प्रसादगुण—काव्य प्रायः सरल अतः बोधगम्य है। समासों का आधिक्य नहीं है। शब्दयोजना वर्ण्यविषय के अनुकूल है।

प्रकृतिचित्रण—देखिये 'मेघदूत में प्रकृतिचित्रण' छन्द का प्रयोग किया गया है। यह छन्द प्रकृतग्रन्थ के रस के सर्वथा अनुगुण है।

छन्द—मेघदूत में सर्वत्र 'मन्दाक्रान्ता' छन्द का प्रयोग किया गया है। यह छन्द प्रकृतग्रन्थ के रस के सर्वथा अनुगुण है।

अलंकार—प्रायः सभी प्रमुख अलंकारों का समुचित प्रयोग किया गया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का सौंदर्य हृदयावर्जक है। उपमा अलका के सतखण्डे महलों के ऊपर सटकर जलवृष्टि करते हुए मेघ कामिनी (अलका) की मुक्तिराशि से गुंथी हुई केशराशि के समान हैं—

'या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्।'(पूर्वमेघ–६७)

'मेघदूत' में सुन्दर उत्प्रेक्षाओं का बाहुल्य है। कैलास के कुमुद के समान हिमशुभ्रशिखर ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे महादेव का दिन-दिन एकत्र हुआ अट्टहास हो—

'शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः।' (पूर्वमेघ–६२)

उत्प्रेक्षा का चमत्कार निम्न श्लोक में देखें—

'छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्येश्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः॥ (पूर्वमेघ–१८)

महाकवि ने चिरन्तन सत्य का विज्ञापन प्रायः अर्थान्तरन्यास अलङ्कार

द्वारा किया है। ये वाक्य संस्कृत साहित्य की अमूल्य रत्न हैं। उदाहरण—

'याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।' (पूर्वमेघ—६)

'मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः।' (उत्तरमेघ—४२)

'कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥' (पूर्वमेघ—४८)

(३) शृङ्गारतिलक—सरल एवं मधुर भाषा में लिखे हुए इस शृङ्गार-प्रधान पुस्तिका में केवल ३२ पद्य हैं। इसे कालिदास की रचना बतलाया जाता है। कहीं कहीं अश्लीलता की भी गन्ध आती है। बुद्धिविलास की भी इसमें कमी नहीं है। प्रारम्भिक श्लोक में बतलाया गया है कि कामबाणों से दग्ध जनों के अवगाहन हेतु ब्रह्मा ने कान्ता रूपी सरोवर को बनाया है। नूतन कल्पनायें देखिये—

वसन्त की रात में प्रियतम के न आने पर अपनी मृत्यु की सम्भावना करने वाली नायिका भगवान् से प्रार्थना करती है कि अगले जन्म में उसे बहेलिया बना दिया जाये जिससे वह कुहू-कुहू के स्वर से हृदय पर वज्रपात करने वाले कोकिलों से बदला ले सके, उसे राहु बनाया जाये ताकि अपनी किरणों से निर्दयतापूर्वक शरीर को दागने वाले उस चन्द्र की खबर वह ले सके, महादेव की नेत्राग्नि बनाया जाये जिससे घोर पीडादायक कामदेव की नेत्राग्नि बनाया जाये जिससे घोर पीडादायक कामदेव का मजा चखा सके और कामदेव बना दिया जाये जिससे प्राणेश्वर को भी यह बतलाया जा सके कि काम की पीडा कैसी होती है—

'आयाता मधुयामिनी यदि पुनर्नायात एव प्रभुः
प्राणा यान्तु विभावसौ यदि पुनर्जन्मग्रहं प्रार्थये।
व्याध. कोकिलबन्धने विधुपरिध्वंसे च राहुग्रह'

सुन्दरी के कुचों से समीप उसकी कोमल बाहुलतिकाओं में झूल रहे हो भाग्यवान्। ठीक ही है, बिना कष्ट सहे कौन सुख पाता है—

'श्लाघ्यं नीरसकाष्ठताडनशतं श्लाघ्यः प्रचण्डातप-
क्लेशः श्लाघ्यतरः सुपङ्कनिचयः श्लाघ्योऽतिदाहानलः।
यत्कान्ताकुचपार्श्वबाहुलतिकाहिन्दोललीलासुखं
लब्धं कुम्भवर त्वया, नहि सुखं दुःखैर्विना लभ्यते॥'
(श्लोक सं० १०)

नायिका रोहिणी से उस (रोहिणी) के पति—चन्द्रमा की शिकायत कर रही है—देख रोहिणी! मना कर दे अपने ढीठ पति को। अरे यह अशिष्ट हमारे रहने के कमरे में खिड़की से घुसकर हमारे कटिप्रदेश को छूता है। क्या भले आदमी ऐसा ही करते हैं?—

'हे रोहिणि! त्वमसि रात्रिकरस्य भार्या
ह्येनं निवारय पतिं सखि दुर्विनीतम्।
जालान्तरेण मम वासगृहं प्रविश्य
श्रोणीतटं स्पृशति किं कुलधर्म एषः॥' (श्लोक सं० २३)

घटकर्पर—भारतीय परम्परा घटकर्पर को विक्रमादित्य का नवरत्न मानती है। अतएव इनका समय १०० वर्ष ईसापूर्व मानना होता है। इनके द्वारा रचित गीतिकाव्य का नाम 'घटकर्पर' है।

(४) घटकर्पर—२२ पद्यों के इस गीतिकाव्य में यमक अलंकार का विशेषरूप से प्रयोग हुआ है। 'घटकर्पर' शब्द का अर्थ होता है—'घड़े का खप्पर'। कवि ने प्रतिज्ञा की है कि यदि कोई कवि उससे अच्छे यमक का प्रयोग करके दिखला दे तो वह कवि उसके घर घड़े के खप्पर से पानी भरेगा—

'आलम्ब्य चाम्बु तृषितः करकोशपेयं भावानुरक्तवनितासुरतैः शपेयम्
जीयेय येन कविना यमकैः परेण तस्मै वहेयमुदकं घटकर्परेण।'

(५) हाल—कवि की 'गाथासप्तशती' प्राकृत भाषा का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण गीतिकाव्य है। कुछ विद्वानों का मत है कि हाल का काल १२५ ई० के बाद नहीं हो सकता जब कि अधिकांश विद्वान् इनका समय ईसा की प्रथम शताब्दी मानते हैं।

'गाथासप्तशती'—महाराष्ट्री प्राकृत में लिखी गई है। इसमें सब मिलाकर ७०० आर्या छन्द हैं। आर्या को ही 'गाथा' कहा गया है। मङ्गलाचरण से

प्रतीत होता है कि हाल शैव था। ग्रन्थ में राधा, कृष्ण, वामन, गौरी, गणेश, लक्ष्मी, नारायण, सरस्वती एवं कालिका आदि पौराणिक देवी-देवताओं का प्राधान्य है। गाथाओं में पाठभेद एवं क्रमभेद भी मिलता है। मुख्य टीकाकारों में कुलनाथ, गंगाधर, पीताम्बर साधारणदेव, भुवनपालन, प्रेमराज आदि हैं। अनेक गाथाओं को ध्वन्यालोक, ध्वन्यालोक-लोचन, काव्यप्रकाश, सरस्वतीकण्ठाभरण आदि ग्रन्थों में उद्धृत किया गया है। इस प्रकार यह ग्रन्थ मूर्धन्य आलङ्कारिकों को किसी अंश में उतना अधिक उपादेय जँचा जितना संस्कृत का भी कोई ग्रन्थ नहीं।

इस शृङ्गारप्रधान गीतिकाव्य में प्राचीन भारत के कृषकजनों का जीवन चित्रित है। किसानों मजदूरों, गृहपति, गृहणियों, नवयुवक, नवयुवतियों के स्वाभाविक एवं भोले-भाले मानस का चित्रण कवि ने सफलता के साथ किया है। *यदि इसे हम तद्युगीन लोकगीत कहें तो अनुचित न होगा।* ग्रामों एवं परिवारों की संस्कृति का चित्रण इस ग्रन्थ की विशेषता है। प्राकृत भाषा के माधुर्य का वर्णन करते हुए हाल कहते हैं कि जो लोग अमृततुल्य प्राकृत काव्य को बिना पढ़े या सुने ही काव्य के तत्त्व पर विचार करने लगते हैं उन्हें लज्जा आनी चाहिए—

'अमिअं पाउअकव्वं पढिउं सोउं अ जे ण आणन्ति।
कामस्स तत्ततन्ति कुणन्ति ते कहँ ण लज्जन्ति॥'[1]

रमणी के द्वारा बार-बार फूंके जाने पर भी रसोई की आग जो नहीं जल रही है, केवल धुआँ ही दे रही है उसका कारण यह है कि अग्नि नायिका के मुख की सुगन्धित वायु का मजा लेना चाहती है। प्रज्वलित होने पर वह फूंक क्यों मारेगी—

'रन्ध्रकर्मनिपुणिके मा क्रुध्यस्व रक्तपाटलसुगन्धम्।
मुखमारुतं पिबन्धूमायते शिखी न प्रज्वलति॥'

प्रियतम भोर ही परदेश चले जायेंगे इसलिये नायिका रात से इतना अधिक बढ़ जाने के लिये कहती है कि भोर हो ही न पाये। मिलन की आशा से तो विरहाग्नि को किसी प्रकार सहन किया जा सकता है किन्तु गाँव में रहते यह विरह भोर से भी बढ़कर है। जब तपती दुपहरी में छाया भी धूप से डरकर शरीर में छिपने का प्रयास करती हो तब भला

1–संस्कृत छाया—'अमृतं प्राकृतकाव्यं पठितुं श्रोतुं च ये न जानन्ति।
कामस्य तत्त्वचिन्तां कुर्वन्तस्ते कथं न लज्जन्ते'॥

पथिक से साथ रतोत्सुकता नारी पथिक को अपने घर विश्राम करने का न्योता क्यो न दे डाले—

'स्तोकमपि न नि.सरति मध्याह्ने पश्य शरीरतललीना।
आतपभयाच्छायापि पथिक तत्किं न विश्राम्यसि ॥'

कृष्ण मे बद्धभावा कोई चतुर गोपी अपनी सखियो के नृत्य की प्रशसा करके उनके उन कपोलों को चूम लेती है जिन पर कृष्ण के प्रतिबिम्ब पड रहे होते हैं—

'नर्तनश्लाघननिभेन पार्श्वपरिसस्थिता निपुणा गोपी।
सदृशगोपीना चुम्बति कपोलप्रतिमागत कृष्णम् ॥'

गाथासप्तशती में नीति एव प्रकृतिचित्रण के भी दर्शन होते हैं। सज्जन जिस स्थान पर रहकर उसे अलङ्कृत करता है उसी स्थान का जब परित्याग करता है तब वह स्थान वैसे ही उजड जाता है जैसे गाँव के समीप बडा बरगद का पेड जड से उखड गया हो—

'सुजनो य देशमलङ्करोति तमेव करोति प्रवसन्।
ग्रामासन्नोन्मूलितमहावटस्थानसदृशम् ॥'

गाथासप्तशती से प्रभावित होकर गोवर्धनाचार्य ने 'आर्यासप्तशती' की रचना की और हिन्दी के कवि बिहारी ने 'सतसई' लिखी।

भर्तृहरि—भर्तृहरि के व्यक्तिगत जीवन के विषय मे हमारा ज्ञान अत्यल्प एव सदिग्ध है। जनश्रुति के अनुसार भर्तृहरि राजा विक्रमादित्य के ज्येष्ठ भ्राता थे और स्वय राजा थे तथापि इस मत के पोषक प्रमाण नही प्राप्त होते। कुछ विद्वानो का मत है कि ये प्रसिद्ध व्याकरणदर्शन के ग्रन्थ-'वाक्यपदीयम्' के रचयिता भर्तृहरि हैं जब कि चीनी यात्री इत्सिग इन्हे बौद्ध विद्वान् मानता है। उक्त दानों मतो के साधक प्रमाण नही प्राप्त होते। एक सूचना के अनुसार शाबरभाष्य के रचयिता शबरस्वामी भर्तृहरि के पिता थे। भर्तृहरि का समय लगभग ईसा की ७ वीं शताब्दी मानने के पक्ष मे भी विद्वान् हैं किन्तु इन्हें शबरस्वामी से सम्बद्ध कर इनका समय ईसापूर्व प्रथम शताब्दी मानना होगा। इन्होंने तीन शतक लिखे हैं—नीतिशतक, शृङ्गारशतक एव वैराग्यशतक। ये तीनो शतक गीतिकाव्य के अन्तर्गत आते हैं।

(६) नीतिशतक—इसमें नीतिसम्बन्धी विषयो का सरस एवं सरल भाषा में वर्णन किया गया है। भाषा का प्रवाह स्वाभाविक, पदो मे लालित्य ध्वनि में श्रुतिमाधुर्य, भावों में प्रवणता एव अर्थ में स्पष्टता है। भाषा

मुहावरेदार एवं परिमार्जित है। विषय के विवेचन का आधार व्यावहारिक अनुभूति है। विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, धर्म, गुण, मित्रता, साहस, उदारता, पुरुषार्थ, धैर्य, स्वाभिमान, क्षमादान, दुर्जनता, मूर्खता, अल्पज्ञता, सत्सङ्ग, सत्काव्यनिर्माण एवं धन आदि के यथार्थस्वरूप का सफल चित्रण भर्तृहरि ने किया है। विद्या आदि गुणों से शून्य मानव धरा के लिए भारस्वरूप हैं, पशुतुल्य हैं—

'येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥'

जिसके पास लक्ष्मी है उसी को दुनियाँ कुलीन, विद्वान्, गुणी और सुन्दर मानती है। सारे के सारे गुण धन में सिमट कर आ गये हैं—

'यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः सः पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति॥'

दुर्जन का सर्वथा परित्याग ही श्रेयस्कर है, भले ही वह विद्वान् हो। मणि से अलंकृत सर्प ही रहता है। उसकी भयङ्करता—उसका डसना नहीं दूर थोड़े ही हो जाता है—

'दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालङ्कृतोऽपि सन्।
मणिना भूषित. सर्प. किमसौ न भयङ्करः॥

धीर पुरुष न्यायमार्ग का परित्याग नहीं करते, चाहे उन्हें कटूक्तियाँ सुनने को मिलें अथवा प्रशंसा, धन का आगमन हो अथवा विनाश, मृत्यु आज ही हो जाये अथवा एक युग बाद—

'निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥'

मित्र वही है जो अपने मित्र को पापकर्म से दूर रखता हो, हितकर कार्यों के सम्पादन हेतु प्रेरित करता हो, उसकी दुर्बलताओं को छिपाता हो गुणों का प्रकाशन करता हो, आपत्ति मे परित्याग न करता हो और अवसर आने पर धन आदि देकर सहायता करता हो—

'पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यानि गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्त.॥'

नीतिशतक की अनेक सूक्तियाँ दैनिक जीवन में उद्धृत की जाती हैं, यथा—'सर्वे गुणा. काञ्चनमाश्रयन्ति', 'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्य.', 'मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दु खं न च सुखम्', 'शील परं भूषणम्, 'सत्सङ्गति कथय कि न करोति पुसाम्', 'विधिरहो बलवानिति मे मति' इत्यादि।

(७) शृगारशतक—रमणियाँ पुरुष के चित्त पर कैसा संमोहक प्रभाव डालती हैं। पुरुष के हृदय मे प्रवेश करके वे नाना भाँति की भावनायें उत्पन्न करती रहती हैं। देखिये माया के लालित्य से पूर्ण भर्तृहरि का एक उदाहरण—

'संमोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति।
एता. प्रविश्य हृदयं सदयं नराणां
कि नाम वामनयना न समाचरन्ति ॥'

पञ्चशर के शरो से कौन आहत नहीं होता ? यह नही कि सुखी एवं सम्पन्न पुरुषो को ही विलासिता सूझती है। सांसारिक यातनाओ से परिपीडित एव सर्वविध कृश जीव को यह अतङ्क नहीं छोडता। देखो न, यह दुबला काना लँगला कुत्ता। रोग के कारण इसके कान कट-कट कर गिर चुके हैं और पूँछ भी पूरी नही है। समस्त शरीर में घाव ही घाव! मवाद से भीगा हुआ! असंख्य कीट बिलबिला रहे हैं इसके शरीर में! क्षुधा के कारण और भी कृशकाय! बूढ़ा है, गले मे मिट्टी के घड़े का घेरा (गरगना) पड़ा हुआ है। ओह! और तब भी यह कुतिया का अनुसरण किये जा रहा है। मन्मथ ऐसे जीव पर भी प्रहार करने से नहीं चूकता। वह तो मरे को भी मारता है—

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो
व्रणी पूयक्लिन्न. कृमिकुलशतैरावृततनुः।
क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरककपालार्पितगलः
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि विहन्त्येव मदनः ॥'

कैसी उल्टी बात कि विद्वान् लोग कामिनी को 'अबला' कहते हैं, उस कामिनी को जो चञ्चल कनीनिकाओ के कटाक्षमात्र से इन्द्र जैसे महाबलशाली देवजनो को भी परास्त कर देती है।

'नून हि ते कविवरा विपरीतबोधा
ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम्।

याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातैः
शक्रादयोऽपि विजिता अबलाः कथं ताः ॥'

हमें किञ्चित् सन्देह नहीं कि उस सुन्दर भौंहों वाली सुन्दरी का आज्ञापालक दास है क्योंकि जहाँ-जहाँ वह अपनी दृष्टि डालती है वहीं-वहीं कामदेव भी पहुँच जाता है (जिसे वह बाँकी निगाह से देख लेती है उसे ही कन्दर्पव्याधि लग जाती है)—

'नूनमाज्ञाकरस्तस्याः सुभ्रुवो मकरध्वजः।
यतस्तन्नेत्रसञ्चारसूचितेषु प्रवर्तते ॥'

(८) वैराग्यशतक—'वैराग्यशतक' में संसार की विषम गति, मूर्खता के बाहुल्य और गुणों के तिरस्कार से कवि आकुल हो गया है। भोगविलास के प्रति अन्धानुराग ने मनुष्य को खोखला कर दिया है किन्तु उसे सन्तोष नहीं—भोगों को हमने क्या भोगा उन्हीं ने हमें भोग डाला। तप को तपा गया हो ऐसा नहीं अपितु हम ही सन्तप्त हो गये। समय नहीं बीता, हम ही बीत गये। लोभ नहीं शिथिल हुआ, हम ही शिथिल हो गये—

'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥'

लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनै-
रस्थैर्येण विभूतिरप्यपहृता ग्रस्तं न किं केन वा ॥'

वैराग्यशतक में दीनता, लोभ, भोग, धनमद आदि की निन्दा एवं स्वाभिमान, संतोष, शिवभक्ति आदि के प्रति आदरभाव प्रदर्शित किया गया है। संसार में सभी व्यक्ति स्वार्थ परायण हैं इस बात का अनुभव मनुष्य वृद्धावस्था में करता है। किन्तु अज्ञान से अन्धा मानव कुछ सोचे तब तो। कैसी दयनीय अवस्था होती है वृद्ध पुरुष की—शरीर में झुरियां पड जाती हैं। लडखडाती चाल, दांत की बत्तीसी गिरी हुई। आँख से दिखलाई नही देता; कान से सुनाई कम देता है; मुँह से लार गिरती है; भाई-बन्धु आदि बात नही सुनते। पत्नी सेवा से विमुख हो जाती है और पुत्र तो ऐसा व्यवहार करने लगता है जैसे वह (वृद्ध पुरुष) उसका शत्रु ही हो—

'गात्रं सङ्कुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-
र्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते।
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते
हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ॥'

'वैराग्यशतक' में भी 'नीतिशतक' की जैसी सूक्तियाँ पाई जाती हैं। यथा—'विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः', 'मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः', चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः', 'पीत्वा मोहमयी प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतो जगत्' इत्यादि।

अमरुक—'अमरुकशतक' के रचयिता का नाम 'अमरुक' है। इन्हें 'अमरु' भी कहा जाता है। किंवदन्ती है कि अमरुक राजा थे। कुमारिल भट्ट की पत्नी भारती ने शङ्कराचार्य से कामशास्त्रविषयक प्रश्नों को पूछा। आजन्म ब्रह्मचारी होने के कारण शङ्कराचार्य उन प्रश्नों का उत्तर न दे सके और प्रश्नोत्तर-हेतु एक मास की अवधि लेकर चल पड़े। शङ्कराचार्य को एक निर्जीव शरीर प्राप्त हो गया जिसमें योगबल के द्वारा उन्होंने अपनी आत्मा को प्रविष्ट कर दिया। यह निर्जीव शरीर राजा अमरुक का था। एक मत के अनुसार अमरुक के शरीर में स्थित शङ्कराचार्य ने ही 'अमरुकशतक' की रचना की।

आचार्य वामन (८०० ई० सन्) ने तीन ऐसे श्लोक उद्धृत किये हैं जो, 'अमरुकशतक' में प्राप्त होते हैं अतएव अमरुक का समय ८ वीं शताब्दी के पश्चात् नहीं हो सकता। कुछ लोगों ने अटकलें लगाई हैं कि ये जाति के सोनार

थे और दक्षिणभारत के निवासी थे। अमरुक के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ये धारणायें सन्देहास्पद हैं।

(९) **अमरूकशतक**—'अमरुकशतक' शृङ्गारप्रधान ग्रन्थ है। आचार्य आनन्दवर्धन ने अमरुक के श्लोकों को 'शृङ्गाररस टपकाने वाले' तथा 'प्रबन्ध के समान' पूर्ण बतलाया है—

'मुक्तकेषु प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते। यथा ह्यमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः शृङ्गाररसस्यन्दिनः प्रबन्धायमानाः प्रसिद्धा एव★। समालोचक आचार्य जिस काव्य की प्रशंसा उक्त शब्दों में करें और उसकी 'प्रसिद्धि' का भी उल्लेख करें उस काव्य की उत्कृष्टता एवं लोकप्रियता का अनुमान स्वतः किया जा सकता है। अमरुक के मुक्तक कामशास्त्र के तत्त्वों से अनुप्राणित हैं। नायक एवं नायिकाओं के कथन, चेष्टाओं एवं दशाओं का निरीक्षण करने के पश्चात् कुछ विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचने लगे हैं कि कदाचित् यह ग्रन्थ नायक एवं नायिकाओं के भेदों का विवेचन करने के लिये ही लिखा गया हो। वस्तुतः मुक्तकों में मान, अभिसार, ईर्ष्या, संभोग आदि का पृथक्-पृथक् चित्रण किया गया है। कामी एवं कामिनियों की मनोदशाओं का सूक्ष्म निरूपण हम 'अमरुकशतक' में पाते हैं। मतवाला यौवन, भावों का चढ़ाव-उतार, आँसू टपकाती खण्डिता, राहों में नयन बिछाये मदमाती प्रोषितभर्तृका, उत्कण्ठित प्रवासी, डरावनी काली रात—घनघोरघटा—उमड़ती बरसात और ऐसे में अभिसारिका का साहस, इत्यादि का स्वाभाविक सुन्दर एवं सूक्ष्म अङ्कन 'अमरुकशतक' में देखने को मिलता है।

प्रियतमा के द्वारा प्रियतम के समीप भेजी गई दूती वापस आ गई है। इसको इसलिये भेजा गया था कि वह प्रियतम एवं प्रियतमा के मिलन में सहायक बने। लेकिन उसकी दशा कुछ और ही है। नायिका दूती से कहती है! अरी झूठी तू उस अधम (प्रियतम) के पास गई ही कहाँ? तू तो बावली में नहाने गई थी। देख न, उरोज का चंदन छूटा हुआ है, अधरों की लालिमा भी धुली हुई है; आँखों में काजल भी कहाँ रह गया है? और शरीर में यह कँपकँपी? तू क्या जाने हमारे दिल का दर्द, (व्यङ्ग्य अर्थ यह है कि तू ने हमारे प्रियतम के साथ रमण किया है इसीलिये स्तनों का चन्दन छूट गया है··············')—

★ ध्वन्यालोक—३।७

'निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरः
नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः।
मिथ्यावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे !
वापी स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम् ॥'

एक दूसरी दूती है। वह भी वैसा ही अपराध करती है जैसा उपर्युक्त दूती। किन्तु वह अपने अपराध को छिपाने के लिये तर्क उपस्थित करती है। परन्तु अन्त में अपराध सिद्ध हो जाता है। देखिये नायिका एवं दूती के प्रश्न तथा उत्तर—

'स्विन्नं केन मुखं दिवाकरकरैस्ते रागिणी लोचने
रोषात्तद्वचनोदितादिवलुलिता नीलालका वायुना।
भ्रष्टं कुङ्कुममुत्तरीयकषणात्क्लान्तासि गत्यागतै—
रुक्तं तत्सकलं किमत्र वद हे दूति ! क्षतस्याधरे ॥'

['अरी तेरे मुखमण्डल पर यह पसीना क्यों निकला ?' 'सूर्य की किरणों के कारण,; 'और यह लाल-लाल आँखें' ? 'उस नायक की बातों से क्रोध आ जाने के कारण,, 'और यह जो काले-काले बाल अस्तव्यस्त हो गये इसका कारण' ? 'वायु, 'अच्छा यह तो बताओ कि सीने पर लगा कुमकुम जो छूट गया यह क्यों ?' 'यही दुपट्टे की रगड से'; 'हाँ' थकी क्यों नजर आती हो' ? 'आने-जाने के आयास के कारण'। 'अच्छा, सब प्रश्नों का उत्तर तो तूने गढ लिया, अब जरा यह बता कि तेरे अधर पर यह क्षत कैसा ?'] दूती चुप।

नायक एवं मानिनी नायिका का संवाद कितना सरस एवं शिष्ट है—

'बाले नाथ विमुञ्च मानिनि रुषं रोषान्मया किं कृतं
खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान् सर्वेऽपराधा मयि।
तत्किं रोदिसि गद्गदेन वचसा कस्याग्रतो रुद्यते
नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते ॥'

'बाले ?' 'हाँ स्वामी'। 'अरी मानिनी ! अब क्रोध छोड दो'। 'क्रोध करके मैंने क्या ही क्या लिया' ? 'यही कि हमारा चित्त दुःखी हो गया'। 'आपने मेरे प्रति कोई अपराध किया ही नही है, सारे अपराध तो मेरे ही हैं आपके प्रति'। 'तो फिर सिसक सिसक कर क्यों रो रही हो' ? 'किसके आगे रो रही हूँ ?' 'यही मेरे आगे'। 'अरे आपकी मैं लगती ही कौन हूँ ?'। 'तुम मेरी प्रिया हो'। 'अरे यही तो नही हूँ, तभी तो रो रही हूँ'।

बिल्हण—बिल्हण (११ वी शताब्दी) के पिता का नाम ज्येष्ठकलश और माता का नाम नागादेवी था। ये काश्मीर के प्रवरपुर नामक ग्राम के निवासी थे। इन्होने (१) कर्णसुन्दरी नाटिका (२) जल्हलगुम्फितसूक्तिमुक्तावली (३) *विक्रमाङ्कदेवचरित तथा* (४) चौरपञ्चाशिका *अथवा* चौरसुरतपञ्चाशिका नाटक ग्रन्थ लिखे। कहा जाता है कि बिल्हण का किसी राजकुमारी से प्रेम था। इस अपराध में प्राणदण्ड की घोषणा की गई। तभी बिल्हण ने अपनी प्रणयजन्य आह को ५० श्लोकों में भर दिया। इन श्लोकों को सुनकर, राजा प्रभावित हो गया और प्रसन्नतापूर्वक राजकुमारी का विवाह बिल्हण से कर दिया। कीथ इस कहानी को मनगढ़न्त समझते हैं।

(१०) चौरपञ्चाशिका—५० पद्यो का गीतिकाव्य जिसमें सरस भाषा एवं उत्कृष्ट प्रणयभावों के दर्शन होते हैं। नायिका एकान्त में दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब निहार रही है। नायक चुपके से पीछे आ जाता है। नायक के प्रतिबिम्ब को दर्पण में देखते ही नायिका में कितने ही भाव साथ-साथ छलक उठते हैं—कम्पन, घबराहट, लज्जा, कामुकता और विलास। कवि के शब्दों में इस प्रकार चित्रण है—

'अद्यापि ता रहसि दर्पणमीक्षमाणा सङ्क्रान्तमत्प्रतिनिभ मयि पृष्ठलीने।
पश्यामि वेपथुमती च ससम्भ्रमा च लज्जाकुला समदना च सविभ्रमा च॥'

धोयी—कालिदास के 'मेघदूत' से प्रभावित होकर धोयी ने 'पवनदूत' की रचना करके दूतकाव्य की परम्परा को आगे बढाया। धोयी का 'पवनदूत' दर्जनो दूतकाव्यो की रचना में प्रेरक बना। धोयी का समय १२ वी शताब्दी है। ये बगाल के राजा लक्ष्मण सेन (१११६ ई०) के आश्रय में रहते थे।

(११) पवनदूत—यह १०४ पद्यों का गीतिकाव्य है। काव्य का कथानक इस प्रकार है—दिग्विजय करते हुए राजा लक्ष्मण सेन मलय पर्वत पर पहुँच जाते हैं। एक गन्धर्वकन्या जिसका नाम कुवलयवती है राजा के मोहक रूप को देख कर मुग्ध हो जाती है। राजा वहाँ से अपने राज्य में वापस आ जाते हैं। विरह-पीडिता कुवलयवती पवन द्वारा राजा के पास सन्देश भेजती है। यह ग्रन्थ मेघदूत से सर्वथा प्रभावित है। छन्द भी मन्दाक्रान्ता है। कहीं-कहीं भाव एवं भाषा का साम्य द्रष्टव्य है। मौलिकता इस विषय में है कि पवनदूत का नायक एक ऐतिहासिक व्यक्ति है और सदेश नायिका भेजती है। नायक के वियोग में श्वास की वायु से प्रज्वलित की गई यह कामाग्नि जो नायिका के अङ्गों को

जलाकर भस्म नही कर रही है उसका एक तो कारण यह हो सकता है कि नेत्रकुण्डो से आँसुओ की बौछार और दूसरा कारण नायिका के हृदय में सदैव विद्यमान तुम्हारी शीतल मूर्ति—

'सारङ्गाक्ष्या जनयति न यद् भस्मसादङ्गकानि
त्वद्विश्लेषे स्मरहुतवहः श्वाससंधुक्षितोऽपि ।
जाने तस्याः स खलु नयनद्रोणिवारेः प्रभावो
यद्वा शश्वन्नृप तव मनोवर्तिनः शीतलस्य ॥'

गोवर्धनाचार्य—इन्हें बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन (१११६ ई०) का आश्रित कवि माना जाता है । इन्होने 'आर्यासप्तशती' नामक श्रृङ्गाररसपरिपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है :

(१२) आर्यासप्तशती—इसके सभी पद्य आर्या छन्द में है और अकारादि-क्रम से लिखे हुए है । मुक्तक आर्याओं में श्रृङ्गाररस का जैसा स्निग्ध एवं चारु सन्निवेश गोवर्धनाचार्य ने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है । ग्रामीण युवक-युवतियो के हृदयो में सरस भावनाओ की उठती हुई हिलोरो को, उनकी भावभङ्गिमाओ को, मृदुल कल्पनाओं को, संयोग तथा वियोग की मार्मिक अवस्थाओं को तथा केलिपरायण तरुणियों की क्रीडाओ को ललित एवं समाकर्षक रूप में 'आर्यासप्त-शती' के अन्तर्गत चित्रित किया गया है ।

सर्वात्मना अनुरक्त नायिका और केवल बात बनाने में चतुर नायक का चित्रण एक ही आर्या में इस प्रकार किया गया है—

'सा सर्वथैव रक्ता रागं गुञ्जेव न तु मुखे वहति ।
वचनपटोस्तव रागः केवलमास्ये शुकस्येव ॥'

अर्थात् वह नायिका नायक के प्रति पूर्णरूपेण अनुरक्त है । अपने अनुराग को वह मुखद्वारा—शब्दो से प्रकट नही करती है । वह नायिका घुघची (गुञ्जा-फल) के समान है जो सर्वत्र रक्तवर्ण होती है, केवल मुखभाग को छोडकर । नायक का स्नेह केवल मौखिक है । बातें बनाना मात्र वह जानता है । नायक उस सुग्गे के समान है जो सर्वत्र हरा होता है, केवल उसके मुख में राग (लालिमा, प्रेम) होता है । आचार्य गोवर्धन कही-कही अश्लीलता का भी स्पर्श कर लेते है । कृषक घर आकर देखता है कि पलाल (पुआल) का ढेर रौंदा पड़ा हुआ है । बैल ने ही इसे रौंदा होगा यह विचार कर वृद्ध कृषक बैल को पीटने लगता है । इस पर कृषकवधू और उसका देवर चुपके से मुँह फेर

कर हँसने लगते हैं (कि हम दोनों की रतिक्रीडा के कारण पुआल की यह दशा हुई है और मार खा रहे हैं बेचारे बैल देवता)—

'दलिते पलालपुञ्जे वृषभं परिभवति गृहपतौ कुपिते ।
निभृतनिभालितवदनौ हलिकवधूदेवरौ हसतः ॥'

नारी केवल रमणी ही नही है । उसके अनेक रूप हैं । शयन में वह स्वामिनी है । कामशास्त्र में गुरु, परिश्रम में दासी, घर की लक्ष्मी और गुरुजनों के सम्मुख मूर्तमती लज्जा है ।

जयदेव—बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन (११९६ ई०) की राजसभा के प्रमुखरत्न जयदेव की कृति 'गीतगोविन्द' शब्दयोजना, अनुप्रास, लालित्य, स्वर-योग, माधुर्य एवं भावप्रवणता के लिये गीतिकाव्यों में शीर्षस्थ है ।

(१३) गीतगोविन्द—'गीतगोविन्द' की रचना पारम्परिक नही है । गद्य-पद्य एव गीतों की सुमधुर संयोजना है 'गीतगोविन्द' में । एक विशेषता यह भी है कि यह काव्यग्रन्थ सर्गों में विभाजित है । कोई विद्वान् इसे ग्राम्य रूपक मानते हैं तो दूसरे गीतिनाटक तथा अन्य लोग सङ्गीतरूपक । पिशेल तथा लेवी इसे गीतिकाव्य और नाटक के बीच की स्थिति का काव्य मानते हैं ।

कथानक इस प्रकार है—कृष्ण गोपियों के साथ रासलीला में लीन हैं । राधा के हृदय पर इसकी प्रतिक्रिया होती है । वह सखी के समक्ष कृष्ण के लिये उपालम्भवचन का प्रयोग करती है । फिर भी कृष्ण के प्रति आकृष्ट राधिका अपने अनन्य प्रेम को अभिव्यक्त करती है । सखी मधुर गीतों के द्वारा प्रयास करती है कि राधा-कृष्ण का मिलन हो सके । वह कृष्ण से राधा की दशा का वर्णन करती है । राधा मान करती है । कृष्ण राधा को मनाते हैं । दोनों के मिलन का पर्यवसान रतिक्रीडा में होता है । राधिका की इच्छा के अनुसार कृष्ण राधिका का शृङ्गार करते हैं ।

'गीतगोविन्द' में राधा एव कृष्ण के प्रणय से सम्बद्ध विभिन्न अवस्थाओं का मनोरम चित्रण किया गया है । प्रणयकोप, ईर्ष्या, उत्कण्ठा, आशा, निराशा, अनुराग, सङ्कोच तथा अधीरता आदि भावो की कोमलकान्त पदों—सुरतालसमन्वित शब्दों—के द्वारा अनूठी अभिव्यक्ति हुई है । सरस वसन्त ऋतु । मन्द मलय समीर कमनीय लवङ्गलताओं को धीरे-धीरे कम्पित कर रही है । कुञ्जों में मधुकरकुल का गुञ्जन और कोकिलों की कूजन । विरहीजनों पर गजब ढाने वाली इस ऋतु में कृष्ण गोपबालाओं के साथ नृत्य कर रहे हैं । भाव के साथ भाषा की चारुता देखिये—

'ललितलवङ्गलता परिशीलनकोमलमलयसमीरे ।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ॥
विहरतिहरिरिह सरसवसन्ते ।
नृत्यति युवतिजनेन सम सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥'

विरहविधुरा राधिका कितनी अधिक कातर है। कामदेव के बाणों से बिंध जाने के भय से, भावना से वह कृष्ण में ही लीन है। राधा की सखी कृष्ण को, राधा को विरह की दशा से अवगत कराती है—

'सा विरहे तव दीना ।
माधव ! मनसिजविशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना'

निश्चित समय व्यतीत हो गया पर कृष्ण वन को न आये। बड़ा ही ठग है। तब क्यों न राधा अपने यौवन को विकल समझे। देखिये विप्रलब्धा राधा का कथन—

'कथितसमयेऽपि हरिरहह न ययौ वनम् ।
मम विफलमिदममलरूपमपि यौवनम् ॥

अरे कृष्ण ! तुम्हारी ये लाल-लाल आँखें—आलस भरी। मालूम हो गया, रात भर जागते रहे हो। किसी दूसरी के प्रति इनमें अनुराग भरा है। जो तुम्हारे हृदय की पीड़ा को दूर करती हो, जा, उसी के पास चला जा। भर्त्सना करती हुई खण्डिता राधा कृष्ण से कहती है—

'रजनिजनितगुरुजागररागकषायितमलसनिवेशम् ।
वहति नयनमनुरागमिव स्फुटमुदितरसाभिनिवेशम् ।
हरि हरि याहि माधव ! याहि केशव ! मा वद कैतववादम् ।
तामनुसर सरसीरुहलोचन ! या तव हरति विषादम् ॥"

पण्डितराज जगन्नाथ—पण्डितराज तैलङ्ग ब्राह्मण थे। 'पण्डितराज' की उपाधि इन्हें शाहजहाँ के दरबार में मिली। शाहजहाँ से सम्बन्ध होने के कारण इनका समय १७ वीं शताब्दी हुआ। शाहजहाँ ने इनका यथोचित सत्कार किया होगा तथा विपुल धनराशि दी होगी। पण्डितराज स्वयं विज्ञापित करते हैं कि उनका पेट या तो दिल्लीश्वर भर सकता है अथवा परमात्मा। छोटे-मोटे बेचारे राजे-महराजे लोग जो दे सकते हैं वह इतना अल्प होता है कि उससे या तो शाक ही खरीद लिया जाये या नमक ही—

'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथं पूरयितुं समर्थः ।
अन्यैर्नृपालैः परिदीयमानं शाकाय वा स्याल्लवणाय वा स्यात् ॥'

कहा जाता है कि शाहजहाँ की राजपूत स्त्री से एक पुत्री थी। नाम था उसका लवङ्गी। पण्डितराज उसके अलौकिक सौंदर्य को देखकर मुग्ध हो गये। बादशाह के आदेश पर घट लेकर जाती हुई लवङ्गी का वर्णन पण्डितराज ने किया। बादशाह ने प्रसन्न होकर पण्डितराज की अभिलाषा जाननी चाही। पण्डितराज कहते हैं कि मुझे हाथी, घोड़ा, धन कुछ भी नहीं चाहिये। सिर पर घट रखे हुए सुन्दर स्तनोंवाली यह मृगनयनी लवङ्गी मुझे मिल जाये, बस—

'न याचे गजालिं न वा वाजिराजिं
न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदाचित् ।
इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा
लवङ्गी कुरङ्गीदृगङ्गीकरोतु ॥'

पण्डितराज के द्वारा निम्नलिखित ग्रंथों के लिखे जाने की सूचना मिलती है। इनमें कुछ प्राप्त एवं कतिपय अप्राप्त हैं—रसगङ्गाधर, यमुनावर्णन, रतिमन्मथ, वसुमतिपरिणय, जगदाभरण, प्राणाभरण, आसफविलास, अश्वघाटी, मनोरमा-कुचमर्दन, पीयूषलहरी, अमृतलहरी, सुधालहरी, करुणालहरी, लक्ष्मीलहरी, भामिनीविलास।

अन्तिम ६ ग्रन्थ गीतिकाव्य के अन्तर्गत आते हैं। 'पीयूषलहरी' को 'गङ्गालहरी' भी कहते हैं। इसमें गङ्गा के वर्णन में ५२ पद्य लिखे गये हैं। 'अमृतलहरी' यमुना की स्तुति में लिखे हुए १० पद्यों की पुस्तिका है। 'सुधा-लहरी' में ३० पद्य हैं जो सूर्य की स्तुति में लिखे गये हैं। करुणालहरी का ही दूसरा नाम 'विष्णुलहरी' है जिसमें विष्णु के स्तवन में ६० पद्यों का सन्निवेश है। 'लक्ष्मीलहरी' में लक्ष्मी की स्तुति के ४१ पद्य हैं।

(१३) भामिनीविलास—पण्डितराज का सर्वश्रेष्ठ गीतिकाव्य है 'भामिनीविलास'। इसमें चार खण्ड हैं जिन्हें 'विलास' कहते हैं—प्रास्ताविक विलास (२) शृङ्गारविलास (३) करुणाविलास (४) शान्तिविलास। भामिनी विलास की भाषा सरस, सरल एवं प्रभावपूर्ण है। शब्द का सौष्ठव तथा भाव का औदार्य भर्तृहरि के काव्य का स्मरण कराते हैं। एक उदाहरण देखिये—एक ओर तट पर तरुणी का हासपूर्ण सुन्दर मुखड़ा और दूसरी ओर जल में खिलते हुए कमल। मकरन्द के लोभी किशोर भ्रमर कभी इधर तो कभी उधर दौड़ लगाते हैं—

'तीरे तरुण्यावदनं सहासं नीरे सरोज च मिलद्विकासम्।
आलोक्य धावत्युभयत्र मुग्धा मरन्दलुब्धालिकिशोरमाला ॥'

सुन्दरि ! ये भौंरे तेरे मन्द मुसकान भरे मुख को कमल समझ कर खूब खुशी मना रहे हैं और हे कृष्णनयने ! उसी तेरे मुख को चन्द्रमा समझकर चकोर अपनी-अपनी चोंचों को चिरकालपर्यन्त हिलाने लगते हैं—

'आलोक्य सुन्दरि मुखं तव मन्दहासं
नन्दन्त्यमन्दमरविन्दधिया मिलिन्दाः।
किञ्चासिताक्षि मृगलाञ्छनसम्भ्रमेण
चञ्चूपुटं चटुलयन्ति चिरं चकोराः ॥'

पण्डितराज को अपने पाण्डित्य—अपनी कविता—पर अत्यधिक गर्व था। यह तो इनकी कविता ही है जो उनकी प्रियतमा का उपमान हो सकती है। उनकी कविता के अतिरिक्त और किसी वस्तु में वे सब विशेषताएँ नहीं प्राप्त हो सकती जो उनकी प्रियतमा में हैं। दोषराहित्य (प्रियतमा में कोई दोष नहीं है, कविता भी 'अदोष' है), गुणवत्ता (गुणों से युक्त प्रियतमा और 'सगुण' कविता), रसभावपूर्णता (कामिनी एवं काव्य दोनों में रस एवं भाव का अस्तित्व), अलङ्कार (कामिनीपक्ष में आभूषण, कवितापक्ष में उपमा आदि अलङ्कार), श्रुतिसुखद पद (कामिनी का मधुरस्वर और कविता में प्रयुक्त वर्णों का माधुर्य) ये सभी विशेषताएँ कामिनी एवं कविता दोनों में है। ऐसी सुन्दर कामिनी फिर कैसे हृदय से दूर हो—

'निर्दूषणा गुणवती रसभावपूर्णा
सालङ्कृतिः श्रवणकोमलवर्णराजि।
सा मामकीनकवितेव मनोभिरामा
रामा कदापि हृदयान्मम नापयाति ॥'*

प्रास्ताविक विलास में अन्योक्तियों की भरमार है। अलङ्कारों का समुचित प्रयोग कवि की विशेषता है। अर्थान्तरन्यास का एक उदाहरण देखिये—

'गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभिस्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम्।
अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वसन्ति ॥'

(गुरुजनों की डाँट-फटकार को सहन करनेवाले लोग ही महान् बनते हैं। शान पर बिना खरादी हुई मणियाँ राजाओं के मुकुट में कभी स्थान नहीं पातीं)।

---

* यहाँ उपमान व दित है रामा (प्रियतमा) यहाँ।

अध्याय ७

कथासाहित्य

उद्भव—कथासाहित्य का मानव-जीवन से अभिन्न सम्बन्ध है। इसका सम्बन्ध काव्य-नाटक, इतिहास-पुराण आदि साहित्य के इतर अङ्गों से अर्वाचीन नहीं है अपितु प्राचीन ही है। कारण विकसित-अविकसित, शिक्षित-अशिक्षित अथवा अर्धशिक्षित जातियों में कथायें प्राय उस काल से अनवरत रूप से व्यवहृत हो रही हैं जब से मानव में विचारों का आदान-प्रदान करने की क्षमता आयी। कथा के द्वारा मनोरञ्जन करना, अथवा शिक्षा प्राप्त करना, अथवा उत्सुकता को दूर करना प्रारम्भ से मानव में रहा है। छोटे बच्चों को कथा सुनने में कितनी अभिरुचि होती है। एक व्यक्ति के शैशव के समान मानव-इतिहास के शैशव में भी कथा का अतीव महत्त्व था और निरन्तर रहता आया है, आज भी है।

हम प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थ पर दृष्टिपात करें, ऐसा सम्भव नही कि वहाँ कथा का अस्तित्व किसी रूप में न हो। हाँ, वहाँ उसके विकसित रूप की आशा करना व्यर्थ है जो शताब्दियो के विकास का परिणाम है। ऋग्वेद के बहुत से सूक्तों में पात्रो की वार्ता कथात्मक है जिसमें दो या दो से अधिक पात्र भाग लेते हैं। इन सूक्तो को विद्वानों ने उचित ही 'सम्वाद-सूक्त' कहा है। ऋग्वेद की कथाओं का विस्तार ब्राह्मण एव उपनिषद् ग्रन्थो में हुआ। यही क्यो, इन ग्रन्थों में नवीन, रोचक, विचित्र एव शिक्षाप्रद कथाओ का भी अवतार स्थल-स्थल पर हुआ है। बौद्धों के जातक में अनेक वैदिक कथाओ का समावेश हुआ तथा अन्य नई कथाओं का भी जन्म हुआ। जातक-साहित्य को यदि हम कथा-साहित्य का प्राचीनतम रूप कहें तो अत्युक्ति न होगी। महाभारत में तो कुत्ते, नेवले, कपोत, कच्छप, जम्बुक आदि जीवों से सम्बद्ध बहुत-सी कहानियाँ प्राप्त होती हैं।

कथा-साहित्य की दृष्टि से भारत ससार में अग्रणी है। कथा-साहित्य यही जन्मा और अपनी रोचकता एव विभिन्न विशिष्ट गुणों के कारण भारतीय कथायें

शनै-शनै सारे संसार में फैल गईं। कुछ कथायें प्राय. उसी रूप में फैली, कुछ कुछ परिवर्तन के साथ। विदेशी लेखकों को भारतीय कथाओं से प्रेरणा मिली जिससे उन्होंने ऐसी कथाओं की रचना की जिसमें भारतीय कथाओं की शैली तथा अनेक तत्त्वों को स्थान दिया गया। हम यह नहीं कहते कि भारत का कथा-साहित्य ही विश्व के समस्त देशों की कथाओं का एकमात्र मूल है क्योंकि कथा का श्रवण एवं कथन मानव-स्वभाव है। कहने का अभिप्राय यह है कि प्राचीन भारत में पञ्चतन्त्र, हितोपदेश तथा जातक आदि की कहानियाँ इतनी प्रौढ, इतनी मनोहर, इतनी शिक्षाप्रद हैं तथा इनकी शैली इतनी रोचक तथा अन्य विशेषताएँ इतनी आकर्षक हैं कि उनका साक्षात् प्रभाव विश्व के कथा साहित्य पर पड़ा।

संस्कृत कथा-साहित्य के दो प्रभेद माने जाते हैं—

(१) नीतिकथा का उद्देश्य (२) लोककथा।

नीतिकथा का उद्देश्य मनोरम कहानियों द्वारा मानव को धर्म, अर्थ तथा काम के विषय में मार्ग-दर्शन करना है। इन कथाओं का सम्बन्ध मोक्ष से नहीं होता। नीतिकथाओं का मुख्य उद्देश्य है व्यावहारिक जीवन में सफलता पाना। इन कथाओं में पशु-पक्षी आदि मानवेतर जीव पात्र होते हैं जो मनुष्य के समान बोलते, काम करते, प्रणय-युद्ध-कलह करते तथा सुखी-दुःखी होते हैं। संसार में सर्वत्र व्याप्त छल-कपट से कैसे बचना चाहिए, लोभ किस प्रकार पाप का कारण होता है, राग में आबद्ध होकर मनुष्य का किस प्रकार पतन होता है, सहसा किसी के ऊपर विश्वास करने का कैसा दुष्परिणाम होता है, आपत्ति में धैर्य न खोकर किस प्रकार बुद्धि एवं साहस का आश्रय लेना चाहिए आदि विषयों का अतीव रोचक शैली में वर्णन किया गया है। इन कथाओं में व्यावहारिक ज्ञान, शुभ आचार तथा नीति की शिक्षा सरल एवं सरस भाषा में प्राप्त होती है। कथा गद्य में ही रहती है किन्तु कथन की पुष्टि तथा विशेष उपदेश के लिए जमते हुए पद्यों की योजना कर दी गई है। सरस दृष्टान्तों, उपयुक्त सूक्तियों एवं मुहावरों से कथाओं में चार चाँद लग जाते हैं। तथापि कहीं कहीं पद्यों का बाहुल्य खटकने भी लगता है। मुख्य कथाओं के अन्दर अनेक अवान्तर कथाएँ भी इन ग्रन्थों की विशेषता है।

लोककथाओं की विशेषता यह है कि उनका उद्देश्य उपदेश न होकर मनोरञ्जन-मात्र होता है और इनका सम्बन्ध पशु-पक्षियों के जीवन से न होकर मानव-जीवन से होता है।

कथा-साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय

नीति कथा के ग्रन्थ—

(१) पञ्चतन्त्र—'पञ्चतन्त्र' अपने मूल रूप में नहीं प्राप्त होता। मूल पञ्चतन्त्र के परवर्ती विभिन्न संस्करण ही आज उपलब्ध 'पञ्चतन्त्र' हैं अथवा 'पञ्चतन्त्र' के मूल रूप का अनुमान प्राचीनकाल में किये गये विदेशी भाषाओं के अनुवाद से होता है। आज 'पञ्चतन्त्र' के इतने संस्करण प्राप्त होते हैं जिनके कलेवर तथा विषय के वैभिन्य के कारण 'पञ्चतन्त्र' एक ग्रन्थ न होकर एक विशाल साहित्य का प्रतिनिधि हो गया है। पञ्चतन्त्र का सर्वप्रथम अनुवाद बादशाह खुसरू अनुशेरवाँ (५३१–५७९ ईसवी) की आज्ञा से पहलवी भाषा में किया गया था जिसमें महाभारत और बौद्ध सम्प्रदाय की कथाओं का समावेश कर दिया गया था। किन्तु वह अब प्राप्त नहीं होता। उसके आसुरी तथा अरबी भाषा के अनुवाद अवश्य मिलते हैं। अरबी भाषा के अनुवाद के विभिन्न ४० भाषाओं में अनुवाद किये जा चुके हैं। आसुरी अनुवाद का नाम था 'कलिलग और दमनग' तथा अरबी अनुवाद का नाम 'कलीलह् और दिमह्न' और इन नामों का आधार था पञ्चतन्त्र के प्रथम भाग के 'करटक' एवं 'दमनक' नामक दो सियारों के नाम।

पञ्चतन्त्र चाणक्य का उल्लेख करता है अतः पञ्चतन्त्र ३०० ई० पू० के बाद की रचना है। पञ्चतन्त्र में 'दीनार' शब्द का प्रयोग उसे ईसा के बाद की रचना सिद्ध करता है। विद्वानों ने इसका समय लगभग ३०० ईसवी सन् माना है।

पञ्चतन्त्र के संस्करणों में (१) आसुरी भाषा में अनुवाद (२) अरबी भाषा में अनुवाद (३) 'कथासरित्सागर' (१०३० ई०) में पञ्चतन्त्र के पाँचों भाग मिलते हैं, (४) तन्त्राख्यायिका (३०० ई०) में ग्रन्थ का सर्वाधिक मौलिक रूप प्राप्त होता है (५) पूर्णभद्र जैन के संस्करण (१२ वीं शताब्दी का अन्त)। इसमें २१ नवीन कथाओं का समावेश है। (५) नेपाली संस्करण। इसमें पञ्चतन्त्र के पद्यमात्र मिलते हैं।

पञ्चतन्त्र के लेखक हैं—विष्णुशर्मा। इन्होंने राजा अमरशक्ति के तीन मूर्ख पुत्रों को राजनीतिशास्त्र में निपुण कर देने के लिये ६ महीने में इस ग्रन्थ की लिखा था। वर्तमान पञ्चतन्त्र में ५ भाग हैं—मित्रभेद, मित्रलाभ, संधिविग्रह, लब्धप्रणाश एवं अपरीक्षितकारक (अथवा अपरीक्षितकारक)।

शनै-शनै सारे ससार में फैल गईं। कुछ कथायें प्राय उसी रूप में फैली, कुछ कुछ परिवर्तन के साथ। विदेशी लेखकों को भारतीय कथाओं से प्रेरणा मिली जिससे उन्होने ऐसी कथाओ की रचना की जिसमें भारतीय कथाओं की शैली तथा अनेक तत्त्वों को स्थान दिया गया। हम यह नही कहते कि भारत का कथा-साहित्य ही विश्व के समस्त देशो की कथाओ का एकमात्र मूल है क्योंकि कथा का श्रवण एवं कथन मानव-स्वभाव है। कहने का अभिप्राय यह है कि प्राचीन भारत में पञ्चतन्त्र, हितोपदेश तथा जातक आदि की कहानियाँ इतनी प्रौढ, इतनी मनोहर, इतनी शिक्षाप्रद हैं तथा इनकी शैली इतनी रोचक तथा अन्य विशेषताएँ इतनी आकर्षक है कि उनका साक्षात् प्रभाव विश्व के कथा साहित्य पर पडा।

संस्कृत कथा-साहित्य के दो प्रभेद माने जाते हैं—
(१) नीतिकथा का उद्देश्य (२) लोककथा।

नीतिकथा का उद्देश्य मनोरम कहानियो द्वारा मानव को धर्म, अर्थ तथा काम के विषय में मार्ग-दर्शन करना है। इन कथाओं का सम्बन्ध मोक्ष से नही होता। नीतिकथाओ का मुख्य उद्देश्य है व्यावहारिक जीवन में सफलता पाना। इन कथाओ मे पशु-पक्षी आदि मानवेतर जीव पात्र होते हैं जो मनुष्य के समान बोलते, काम करते, प्रणय-युद्ध-कलह करते तथा सुखी-दुखी होते है। ससार में सर्वत्र व्याप्त छल-कपट से कैसे बचना चाहिए, लोभ किस प्रकार पाप का कारण होता है, राग में आबद्ध होकर मनुष्य का किस प्रकार पतन होता है, सहसा किसी के ऊपर विश्वास करने का कैसा दुष्परिणाम होता है, आपत्ति में धैर्य न खोकर किस प्रकार बुद्धि एव साहस का आश्रय लेना चाहिए आदि विषयो का अतीव रोचक शैली में वर्णन किया गया है। इन कथाओं मे व्यावहारिक ज्ञान, शुभ आचार तथा नीति की शिक्षा सरल एवं सरस भाषा में प्राप्त होती हैं। कथा गद्य में ही रहती है किन्तु कथन की पुष्टि तथा विशेष उपदेश के लिए जमते हुए पद्यो की योजना कर दी गई है। सरस दृष्टान्तों, उपयुक्त सूक्तियो एव मुहावरो से कथाओं में चार चाँद लग जाते है। तथापि यही कही पद्यो का बाहुल्य खटकने भी लगता है। मुख्य कथाओं के अन्दर अनेक अवान्तर कथाएँ भी इन ग्रन्थों की विशेषता है।

लोककथाओं की विशेषता यह है कि उनका उद्देश्य उपदेश न होकर मनोरञ्जन-मात्र होता है और इनका सम्बन्ध पशु-पक्षियो के जीवन से न होकर मानव-जीवन से होता है।

कथा-साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय

नीति कथा के ग्रन्थ—

(१) पञ्चतन्त्र—'पञ्चतन्त्र' अपने मूल रूप में नहीं प्राप्त होता। मूल पञ्चतन्त्र के परवर्ती विभिन्न संस्करण ही आज उपलब्ध 'पञ्चतन्त्र' है अथवा 'पञ्चतन्त्र' के मूल रूप का अनुमान प्राचीनकाल में किये गये विदेशी भाषाओं के अनुवाद से होता है। आज 'पञ्चतन्त्र' के इतने संस्करण प्राप्त होते हैं जिनके कलेवर तथा विषय के वैभिन्य के कारण 'पञ्चतन्त्र' एक ग्रन्थ न होकर एक विशाल साहित्य का प्रतिनिधि हो गया है। पञ्चतन्त्र का सर्वप्रथम अनुवाद बादशाह खुशरू अनुशेरवाँ (५३१–५७९ ईसवी) की आज्ञा से पहलवी भाषा में किया गया था जिसमें महाभारत और बौद्ध सम्प्रदाय की कथाओं का समावेश कर दिया गया था। किन्तु वह अब प्राप्त नहीं होता। उसके आसुरी तथा अरबी भाषा के अनुवाद अवश्य मिलते हैं। अरबी भाषा के अनुवाद के विभिन्न ४० भाषाओं में अनुवाद किये जा चुके हैं। आसुरी अनुवाद का नाम था 'कलिलग और दमनग' तथा अरबी अनुवाद का नाम 'कलीलह और दिमहन' और इन नामों का आधार था पञ्चतन्त्र के प्रथम भाग के 'करटक' एवं 'दमनक' नामक दो सियारों के नाम।

पञ्चतन्त्र चाणक्य का उल्लेख करता है अत. पञ्चतन्त्र ३०० ई० पू० के बाद की रचना है। पञ्चतन्त्र में 'दीनार' शब्द का प्रयोग उसे ईसा के बाद की रचना सिद्ध करता है। विद्वानों ने इसका समय लगभग ३०० ईसवी सन् माना है।

पञ्चतन्त्र के संस्करणों में (१) आसुरी भाषा में अनुवाद (२) अरबी भाषा में अनुवाद (३) 'कथासरित्सागर' (१०३० ई०) में पञ्चतन्त्र के पाँचों भाग मिलते हैं, (४) तन्त्राख्यायिका (३०० ई०) में ग्रन्थ का सर्वाधिक मौलिक रूप प्राप्त होता है (५) पूर्णभद्र जैन के संस्करण (१२ वीं शताब्दी का अन्त)। इसमें २१ नवीन कथाओं का समावेश है। (५) नेपाली संस्करण। इसमें पञ्चतन्त्र के पद्यमात्र मिलते है।

पञ्चतन्त्र के लेखक हैं—विष्णुशर्मा। इन्होंने राजा अमरशक्ति के तीन मूर्ख पुत्रों को राजनीतिशास्त्र में निपुण कर देने के लिये ६ महीने में इस ग्रन्थ को लिखा था। वर्तमान पञ्चतन्त्र में ५ भाग हैं—मित्रभेद, मित्रलाभ, संधिविग्रह, लब्धप्रणाश एवं अपरीक्षाकारित्व (अथवा अपरीक्षितकारक)।

पञ्चतन्त्र की भाषा सरल है। गद्यका एक उदाहरण देखें—

"अत्रान्तरे पापबुद्धि गिरस्ताडयन्प्रोवाच–'भो धर्मबुद्धे! त्वया हृतमेतद्धनं, नान्येन। यतो भूयोऽपि गर्तापूरण कृतम्। तत्प्रयच्छ मे तस्यार्धम्। अन्यथाहं राजकुले निवेदयिष्यामि।' स आह–'भो दुरात्मन्, मैवं वद। धर्मबुद्धि खल्वहम्। नैतच्चौरकर्म करोमि ।"

पञ्चतन्त्र की चुभती हुई सूक्तियाँ किसको नही आकृष्ट कर लेती हैं। ये सूक्तियाँ पद्यो में पाई जाती हैं। ये पद्य विभिन्न ग्रन्थों से प्रसङ्गानुसार उद्धृत किये गये है। एक-दो सूक्तियो द्वारा कुछ आभास हो जायेगा—

'कृशे कस्यास्ति सौहृदम्' (कमजोर से कौन दोस्ती करता है)

'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्' (कीचड को धोने से कही अच्छा है कीचड से दूर रहना) 'सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम्' (पानी कितना ही गर्म क्यो न हो अग्नि को बुझाता ही है)।

पञ्चतन्त्र में विनोद का पुट कम नही है। कही अनधिकार चेष्टा करने वाला कोई नटखट वानर अपने प्राणों से हाथ धोता है तो कहीं दमनक सियार अपने पिता की गोद में खेलते समय साधुओ के मुख से नीतिशास्त्र को सुनकर अपने नीतिशास्त्र में पारङ्गत होने की बात करता है। यदि कही आषाढभूति नामक ठग देवशर्मा नामक परिव्राजक का धन ऐंठने के लिए अपने को त्यागी, विरागी सिद्ध करने के निमित्त 'ॐ नमः शिवाय' का उच्चारण करके कहता है कि 'भगवन् यह ससार असार है, पहाडी नदी के समान वेगशील यौवन होता है, शरदृतु के बादलों की छाया के समान सासारिक भोग हैं, मित्र-पुत्र-कलत्र, नौकर-चाकर ये सब स्वप्नवत् हैं,' और मौका पाकर देवशर्मा का प्राणतुल्य धन लेकर चम्पत हो जाता है, तो कही दुराचारियो और कुलटाओ के चरित्र का पर्दाफाश किया जाता है। पञ्चतन्त्र को अतिमनोरञ्जक, शिक्षाप्रद एवं यथार्थ का चित्रण करनेवाली कथाओं के कारण जो विश्व में ख्याति प्राप्त हुई, उसके वह सर्वथा योग्य ही है।

(२) तन्त्रोपाख्यान—इस ग्रन्थ में कथायें प्राय 'पञ्चतन्त्र' की ही हैं तथापि बहुत सी नई कथायें भी हैं। कथाओं का वाचक वसुभाग है। अत संभावना है कि वसुभाग ने ही इस ग्रन्थ की रचना की हो। इसका गद्य समास-बहुल एवं समलङ्कृत है जिससे उसमें बाण एवं सुबन्धु के गद्य का सादृश्य देखने का मिलता है। इसमें केवल ३ प्रकरण हैं।

जावा, थाई तथा लाओस की भाषा में इसके अनुवाद मिलते हैं और विशेषता यह कि इन अनुवादो में ४ प्रकरण हैं। प्राचीन जावा की भाषा में इसे 'तन्त्रिकामन्दक' कहते हैं। नीति के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कामन्दक नीतिसार' में प्रयुक्त 'कामन्दक' शब्द 'नीति' का पर्याय मान लिया गया होगा।

(३) हितोपदेश––नीति कथाओ में पञ्चतन्त्र के पश्चात् 'हितोपदेश' का ही स्थान है। वस्तुत. लोकप्रियता की दृष्टि में 'हितोपदेश' का स्थान पहला ही है। हितोपदेश के रचयिता 'नारायण पण्डित' हैं। इनके आश्रयदाता बंगाल के धवलचन्द्र नामक एक राजा थे। यह ग्रंथ १४ वी शताब्दी के आस-पास लिखा गया है। मुख्यत. पञ्चतन्त्र तथा गौणत अन्य किन्ही कृतियों को आधार बनाकर यह ग्रथ लिखा गया था, जैसा कि प्रारंभ में ग्रंथकार ने स्वयं लिखा है–

'पञ्चतन्त्रात् तथान्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्यलिख्यते'।

हितोपदेश में कुल ४३ कथायें हैं जिनमें से २५ पञ्चतन्त्र से ली गई हैं। हितोपदेश में ४ परिच्छेद हैं––(१) मित्रलाभ (२) सुहृद्‌भेद (३) विग्रह (४) सधि। नीतिपद्यों की संख्या ६७९ मानी जाती है। ये प्रायः महाभारत, धर्मशास्त्र, पुराण तथा अन्य नीतिग्रंथो से उद्‌धृत किये गये हैं। ग्रन्थ सरल, पद्य उपदेशात्मक एवं कथायें रोचक तथा शिक्षाप्रद हैं।

गद्य के प्रवाह, सरलता तथा सरसता को देखिये––

'अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः। तत्र नानादिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति। अथ कदाचिदवसन्नाया रात्रौ अस्ताचलचूडावलम्बिनि भवगति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्ध. कृतान्तमिव द्वितीयमटन्तं पाशहस्तं व्याधमपश्यत्' (मित्रलाभ)

धन का व्यावहारिक जीवन में क्या मूल्य है? एक पद्य में इसका उत्तर इस प्रकार है––

'तस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमाल्लोके यस्यार्थाः स हि पण्डितः॥'

कथाओ में वैचित्र्य, विनोद एवं शिक्षा के पुट को निम्नाङ्कित कथा में देखें––

एक बूढ़ा बाघ स्नान करके तालाब के किनारे खड़ा था। उसके हाथ में कुश-जल तथा सोने का एक कंकण था। वह कह रहा था कि इस सोने के कंकण को कोई दान में ले ले। एक लोभी पथिक ने कंकण दिखलाने के लिए कहा। बाघ ने हाथ फैलाकर दिखा दिया। लोभी पथिक बाघ के पास जाने

में यह सोचकर हिचकिचाने लगा कि यह तो बाघ है, पास जाने पर कहीं मारकर खा न जाये। बाघ ने कहा, 'सुनो, जवानी में मैंने बड़े दुष्कर्म किये। बहुत-सी गायों और ब्राह्मणों का वध करने के कारण मेरे बीवी-बच्चे मर गये। सारा वंश ही नष्ट हो गया। तब एक ने उपदेश दिया कि दान करो, इसीलिए कंकण दान कर रहा हूँ, लेकिन दुनियाँ को क्या कहूँ, मेरे ऊपर विश्वास ही नहीं करती। अब तो मेरे दाँत और नाखून भी गिर गये हैं फिर भी लोग विश्वास नहीं करते। आप स्नान करिये और कंकण को दान में लीजिए'। दान लेने के लिए जैसे ही पथिक तालाब में घुसा तो कीचड़ में फँस गया। बाघ ने कहा, 'अरे बड़े कीचड़ में फँस गये हो, जरा तुमको निकाल तो दें। बाघ धीरे धीरे पथिक के पास गया और उसे धर दबोचा तथा मार कर खा गया। यह है लोभ का परिणाम।

लोककथा—इनका प्रयोजन उपदेश न होकर मनोरञ्जन होता है। पात्र प्रायः मनुष्य होते हैं पशु-पक्षी नहीं।

(४) बृहत्कथा—मूल 'बृहत्कथा' अब नहीं प्राप्त होती। मूल 'बृहत्कथा' की रचना गुणाढ्य नामक विद्वान् ने पैशाची प्राकृत में की थी जिसमें एकलाख श्लोक थे। अब इस ग्रन्थ के संक्षिप्त संस्कृत संस्करण प्राप्त होते हैं। कुछ विद्वान् मूल 'बृहत्कथा' का रचना-काल प्रथम शताब्दी और कुछ पाँचवी शताब्दी तक बतलाते हैं। मूल 'बृहत्कथा' गद्य में रचित थी अथवा पद्य में अथवा गद्य-पद्य रूप में, इस विषय का निर्णय नहीं हो पाया है। मूल 'बृहत्कथा' के जो ३ संक्षिप्त संस्करण प्राप्त होते हैं, वे ये हैं।-

(१) 'बृहत्कथा-श्लोकसंग्रह'—इसकी रचना बुद्धस्वामी नामक नेपाली विद्वान् ने ८ वी-९ वी शताब्दी में की थी। यह ग्रन्थ भी खण्डशः प्राप्त हुआ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ नहीं मिलता। उपलब्ध अंश मे ८ सर्ग और ४५२४ पद्य हैं।

(२) बृहत्कथामञ्जरी—काश्मीरी विद्वान् क्षेमेन्द्र ने इस ग्रन्थ की रचना ११ वी शताब्दी में की है। श्लोक संख्या—७५०० है।

(३) कथासरित्सागर—सबसे प्रसिद्ध एवं अधिक उपादेय संस्करण यही है। इसकी रचना ११ वी शताब्दी मे हुई। रचयिता का नाम सोमदेव है। श्लोक संख्या २४००० है। विश्व का सबसे बड़ा कथासंग्रह 'कथासरित्सागर' ही है। भाषा की रसानुकूलता एवं कथा की सृष्टि का क्रम आदि की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है।

उक्त तीन संस्कृत संस्करणों के अतिरिक्त दो तमिल संस्करण भी प्राप्त होते हैं।

'बृहत्कथा' की मूल कथा इस प्रकार है—राजकुमार उदयन की रानी जिनका नाम 'मदनमञ्जूषा' है मानसवेग के द्वारा अपहृत कर ली जाती है। उदयन के गोमुख संज्ञक मंत्री के प्रयास से वह मुक्त होती है।

संस्कृत के कवियों के लिये 'बृहत्कथा' उपजीव्य रही है। भास एवं हर्ष ने उदयन एवं वासवदत्ता के कथानक को यहीं से गृहीत किया है। शूद्रक ने मृच्छकटिक में बहुत से पात्रों को 'बृहत्कथा' से ही लिया है। दण्डी ने काव्यादर्श में, सुबन्धु ने वासवदत्ता में, धनञ्जय ने 'दशरूपक' में, त्रिविक्रमभट्ट ने 'नलचम्पू' में, सोमदेव ने 'यशस्तिलकचम्पू' में और गोवर्धन ने 'आर्यासप्तशती' में ग्रन्थ अथवा ग्रन्थकार की प्रशंसा की है।

(५) वेतालपञ्चविंशति—एक 'वेताल' राजा विक्रमादित्य से पहेलियों के रूप में २५ कहानियों को कहता है इसीलिए इसे 'वेतालपञ्चविंशति' कहा जाता है। ये कहानियाँ 'बृहत्कथामञ्जरी' तथा 'कथासरित्सागर' में भी हैं। शिवदासकृत इसका एक गद्यपद्यात्मक संस्करण मिलता है किन्तु जम्भलदत्तकृत संस्करण गद्यात्मक ही है।

'वेतालपञ्चविंशति' की कथाओं में कौतूहल का आधिक्य है। कथायें जटिल एवं सूक्ष्म पहेलियों का रूप हैं जिनके प्रश्नों का उत्तर नहीं सूझता। श्रोता में आश्चर्य, जिज्ञासा एवं द्विविधा उत्पन्न हो जाती है। यह प्रश्न होने पर भी कथायें अतीव रोचक हैं। क्षान्तिशील नामक एक कपटी भिक्षु राजा त्रिविक्रमसेन—जो आगे चलकर राजा विक्रमादित्य कहलाये को प्रतिदिन रत्नगर्भित फलों को दे देकर अपने गुण से प्रभावित कर लिया और योगसिद्धि हेतु एक शीशम के पेड़ पर लटके हुए शव को लाने को कहा। अदम्य साहसी राजा शव को लेकर चल देता है। शव में एक प्रेत का निवास है। राजा के बोलने पर वह पुन उसी पेड़ पर लटक जाता है। राजा ने न बोलने का निश्चय किया। वेताल ने राजा से कहा कि हम कहानी कहेंगे, कहानी प्रश्न के रूप में होगी। यदि उत्तर जानते हुए भी तुम उत्तर न दोगे तो तुम्हारा सिर सैकड़ों टुकड़ों में चूर-चूर हो जायेगा और यदि बोलोगे अर्थात् यदि उत्तर न दोगे तो मैं फिर वहीं पेड़ पर लटक जाऊँगा। वह कहानी कहता गया। २३ कहानियों का उत्तर राजा ने दे दिया, २४ वीं का उत्तर नहीं सूझा। राजा चुप रहा। वेताल राजा

के साहस से प्रसन्न हुआ और कपटी भिक्षु को राजा द्वारा मरवा दिया। राजा को सिद्धि मिली और भगवान् शङ्कर के दर्शन हुए। राजा विक्रमादित्य की उपाधि से विभूषित हुआ। एक कहानी का रूप देखें—

कन्या मन्दारवती की इच्छा थी कि वह अपना विवाह ज्ञानी, विज्ञानी या वीर में से किसी के साथ करेगी। ऐसा सयोग कि पिता ने एक विज्ञानी को सातवें दिन कन्या देना स्वीकार किया। उसी (७ वें) दिन माता ने एक ज्ञानी को कन्या देने का वचन दे दिया और उसी दिन भाई ने एक वीर को। पिता, माता एव भाई भिन्न-भिन्न स्थान पर थे अत वे एक दूसरे के सङ्कल्प को न समझ सके। सातवें दिन जब तीनों वर—ज्ञानी, विज्ञानी एव वीर—विवाह करने आते हैं तो क्या देखते हैं कि कन्या गायब है। ज्ञानी ने बतलाया कि विन्ध्याचल का धूम्रशिख नामक राक्षस उसे माया के द्वारा अपने स्थान पर ले गया है। विज्ञानी ने आकाशचारी रथ बना दिया जिसके द्वारा सभी वहाँ पहुँचते हैं। वीर घोर युद्ध करके कन्या को राक्षस से छुड़ा लेता है। तीनों व्यक्तियों के सहयोग से ही कन्या मिल सकी। यदि किसी एक का भी सहयोग न मिलता कन्या भी न मिल पाती। वेताल कहता है कि 'राजन्! कन्या किसे मिलनी चाहिए ?'

एक दूसरी कथा—एक व्यक्ति को भोजन में मृतक के जलने की गन्ध आई। छानबीन करने पर ज्ञात हुआ कि भोजन का भात (चावल, धान) उस खेत में पैदा हुआ था जहाँ कभी एक शव का दाह किया गया था। दूसरे व्यक्ति को वेश्या के शरीर से बकरे की दुर्गन्ध आ रही थी क्योंकि वेश्या की माँ के मर जाने के कारण वह बचपन में बकरी का दूध पीती रही थी। तीसरे सज्जन सात गद्दों वाले एक पलग पर सोये हुए थे। एकाएक व्याकुल होकर बिछौने से उठे तो देखा कि उनके पार्श्व (पाँजर) में एक लाल चिह्न है। देखने पर मालूम हुआ कि सातवें गद्दे के नीचे एक बाल पड़ा था वही गड रहा था। राजन्! बतलाइये इन सबमें सबसे अधिक सुकुमार (नाजुक) कौन है ?

(६) सिंहासन-द्वात्रिंशिका—इसके दो और नाम है—(१) द्वात्रिंशत्पुत्तलिका तथा (२) विक्रमचरित। इसकी प्रत्येक कथा म राजा भोज (१०१८-१०६३ ई० सन्) का नाम उल्लिखित है अत इसकी रचना ११ वीं शताब्दी के पूर्व नहीं हुई है। इसके तीन संस्करण हैं। एक में केवल गद्य ही है, दूसरे में केवल पद्य ही है और तीसरा गद्यपद्यात्मक है। राजा भोज को भूमि में गड़ा

हुआ एक सिंहासन मिलता है। यह सिंहासन प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य का है। भोज उस सिंहासन पर बैठना चाहता है। किन्तु जैसे ही वह उस पर बैठने लगता है सिंहासन में जड़ी हुई पुतलियाँ एक-एक करके राजा विक्रम का पराक्रम वर्णित करती हैं और भोज को उस सिंहासन पर बैठने के लिये अयोग्य घोषित करती हुई उड़ जाती हैं। इस प्रकार बत्तीसों पुतलियाँ एक-एक कहानी कहकर उड़ जाती हैं। इन कथाओं में उतना सूक्ष्म भाव एवं बौद्धिक उड़ान नहीं है जितना 'वेतालपञ्चविंशति' की कथाओं में है।

(७) शुकसप्तति—इस ग्रन्थ में सुग्गा ७० कथायें कहता है इसीलिये इसका नाम 'शुकसप्तति' पड़ा। कथायें रोचक हैं अतएव लोकप्रिय हो गई हैं। इसका एक अनुवाद पारसी में उपलब्ध है जिसका समय १४ वीं शताब्दी है। इससे सिद्ध होता है कि ग्रन्थ की रचना १४ वीं शताब्दी के पूर्व हुई है। इसके ३ संस्करण हैं।

युवक मदनसेन का अपनी पत्नी के प्रति अत्यधिक आकर्षण है। कुछ दिनों के लिये उसे बाहर जाना होता है। विरहविधुरा पत्नी मदनपीड़ा से व्यथित हो जाती है और अन्य पुरुषों के प्रति आकृष्ट होने लगती है। उसका सुग्गा परपुरुष के सम्पर्क से होने वाली आपत्तियों की ओर सङ्केत करता है। यह सङ्केत कहानी के रूप में होता है। प्रतिदिन एक कहानी कही जाती है जिसे सुनकर वह परपुरुष के सम्पर्क से विरत हो जाती है। इस प्रकार ७० दिनों में सुग्गा ७० कहानियाँ कहता है। इसके पश्चात् मदनसेन वापस आ जाता है और इस प्रकार मदनसेन की पत्नी के सतीत्व की रक्षा हो जाती है।

(८) पुरुषपरीक्षा—इसमें कुल ४४ कथायें हैं। इसके लेखक मैथिल कवि विद्यापति हैं। यह विख्यात कथाग्रन्थों में अन्यतम है।

(९) भोजप्रबन्ध—इस ग्रन्थ को बल्लाल नामक कवि ने १६ वीं शताब्दी में लिखा। यहाँ हम विभिन्न युगों के कालिदास, बाण, मयूर, भवभूति, माघ आदि कवि भोज की सभा में एकत्र देखते हैं। महाभारत, पञ्चतन्त्र, भर्तृहरिकृत नीतिशतक आदि ग्रन्थों के श्लोक दूसरे कवियों की रचनायें मानकर उन्हीं के मुख से कहलवाये गये हैं। कुछ उन कवियों की भी रचनायें हैं जिनके मुख से वे सुनी जाती हैं। कुछ श्लोकों की रचना बल्लाल ने की होगी और उनका पाठ अन्य कवियों की रचनायें मानकर करवाया गया है। कुछ पद्यों का सम्बन्ध नीति से है, कुछ का राजनीति से एवं कुछ की रचना भाव के गुणों को प्रदर्शित

करने के लिये की गई है। कुछ पद्यों में प्रकृतिचित्रण भी प्राप्त होता है। ग्रंथ की ऐतिहासिक सामग्री प्रामाणिक नही है।

पुस्तक में भोज की दानशीलता, कवित्व-प्रियता, कविसम्मान आदि गुणो का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। संसार को धवलित करते हुए भोज के यश को देखकर शङ्कर कवि इसलिये दु:खी हो जाता है कि कही उसकी प्रियतमा के केश भी धवल न हो जायें-:—

'यथा यथा भोज यशो विवर्धते
सितां त्रिलोकीमिव कर्तुमुद्यतम्।
तथा तथा मे हृदयं विदूयते
प्रियालकाली-धवलत्व शङ्कया ॥'

यहाँ भोज पदे-पदे, एक-एक अक्षर पर एक-एक लाख देते देखे जाते है। कविता करने वाले जुलाहे और कुम्भकार आदि निम्नस्तर के व्यक्तियो का भी स्वागत किया जाता है।

जैनकथा ग्रन्थ

(१०) प्रबन्धचिन्तामणि—इस ग्रन्थ की रचना १४ वी शताब्दी के प्रारम्भ में जैनविद्वान् मेरुतुङ्गाचार्य ने की। इसमें कुल ५ प्रकाश हैं। इस ग्रन्थ के प्रणयन का प्रयोजन, जैसा कि ग्रंथकार ने स्वयं कहा है, महापुरुष के गुणों का कथन करना है। इसमें विक्रमार्क, सातवाहन, मुञ्ज, मूलराज, सिद्धराज, जयसिंह, कुमारपाल, वीरधवल, वस्तुपाल, तेजपाल, वराहमिहिर, वाग्भट्ट तथा भर्तृहरि से सम्बद्ध कथायें हैं।

(११) प्रबन्धकोश—इस कथाग्रंथ के लेखक राजशेखर (१४ वीं शताब्दी) हैं। प्रसिद्ध २४ पुरुषों के सम्बन्ध में रचित होने के कारण इसे 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' भी कहा जाता है। वर्ण्यपुरुषों में १० जैन आचार्य, ४ संस्कृत कवि, ७ राजा और ३ प्रतिष्ठित जैन हैं।

(१२) प्रभावकचरित—राजशेखर के इस पद्यग्रन्थ में २२ जैनाचार्यों का वर्णन किया गया है।

(१३) उपमितिभवप्रपञ्चा—यह ग्रन्थ बोधगम्य बोलचाल की संस्कृत में लिखा गया है। लेखक का नाम है—सिद्धर्षि जैन। इसका प्रणयन ९०६ ई० में पूरा हुआ।

बौद्धकथा ग्रन्थ

(१४) अवदानशतक—ईसा की प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी के इस ग्रन्थ का अवदान साहित्य में विशेष महत्त्व है। अवदान साहित्य में यह सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। 'अवदान' का अर्थ है—'महान् कार्य की कथा'। इसमें शोभन गुणों से सम्बद्ध कथायें हैं। इस गद्यपद्यात्मक ग्रन्थ का महत्त्व कथा तक सीमित है। साहित्य की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व नहीं है। इसमें पापाचारी व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली यातनाओं का वर्णन है।

(१५) दिव्यावदान—हीनयान सम्प्रदाय के इस गद्य-पद्यात्मक ग्रन्थ की संस्कृत पाली से प्रभावित है। समय लगभग दूसरी-तीसरी शताब्दी है। ग्रन्थ विशेष रोचक नहीं है। कहीं-कहीं भाषा आलंकारिक है।

(१६) जातकमाला—आर्यशूर (तृतीय चतुर्थ शताब्दी) ने इसकी रचना जातक कथाओं के आधार पर की। इस ग्रन्थ का मुख्य प्रयोजन बौद्ध धर्म के आचारों का प्रचार है। गद्य में दीर्घ समास हैं। कुछ पाली शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इस ग्रन्थ का अनुवाद चीनी भाषा में भी हुआ है। जैसा कि इसका नाम है इसका सम्बन्ध जातक अर्थात् बुद्ध के जन्मों से है।

अध्याय ८

चम्पू

जिन काव्यों में गद्य एवं पद्य दोनों काव्यविधाओं का प्राय समानरूपेण प्रयोग होता है उन्हें 'चम्पू' कहा जाता है—'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्य-भिधीयते' (साहित्यदर्पण)। यद्यपि नाटकों में भी गद्य एव पद्य दोनों का समावेश रहता है तथापि प्राकृत का प्रयोग, विदूषक की अपेक्षा, प्रकृतियों एवं सन्धियों का अस्तित्व आदि लक्षणों के द्वारा नाटक साहित्य भी एक पृथक् विधा ही है। कादम्बरी आदि गद्यकाव्यों में भी यत्र-तत्र पद्यों का समावेश अवश्य हुआ है किन्तु नाममात्र को ही। कथाग्रन्थों में पद्यों का बाहुल्येन प्रयोग हुआ है तथापि इन ग्रन्थों में गद्य की ही प्रधानता है, पद्यों का उपयोग या तो सूक्तिरूप में अथवा गद्य में निर्दिष्ट विषय को प्रमाणित करने के लिये हुआ है। चम्पू के गद्य एवं पद्य में सामरस्य रहता है।

काव्यलक्षणों से समन्वित कोई भी प्राप्त चम्पू १० वी शताब्दी के पूर्व का नही है। वैसे गद्य-पद्य का मिश्रण वेद–कृष्णयजुर्वेदीय संहिताओ—में भी प्राप्त होता है। 'महाभारत' आर्यशूर की कृति 'जातकमाला' तथा हरिषेण लिखित प्रयाग की प्रशस्ति में भी गद्य एव पद्य दोनो के दर्शन होते है तथापि इन्हें चम्पू के अन्तर्गत न मानकर 'चम्पू' काव्यो का स्रोत माना जा सकता है। दण्डी (६०० ई०) के 'काव्यादर्श' में चम्पू का लक्षण मिलता है अतः ६०० ई० सन् के पूर्व 'चम्पू' काव्यो का अस्तित्व अवश्य हो रहा होगा।

प्रकाशित तथा अप्रकाशित समस्त चम्पू ग्रन्थो की संख्या सवा सौ से भी अधिक है। प्रकाशित चम्पू काव्यो में से कतिपय मुख्य चम्पू ग्रन्थों का विवेचन अग्रिम पङ्क्तियो में किया जा रहा है—

(१) त्रिविक्रमभट्ट—रचित 'नलचम्पू'—चम्पू–साहित्य के अन्तर्गत काल-क्रम से यह सर्वप्रथम चम्पू काव्य है। 'नलचम्पू'* में गद्यकवि 'बाण' (सातवी शताब्दी) का उल्लेख हुआ है तथा भोजराज (११ वी शताब्दी) के 'सरस्वती-कण्ठाभरण' में 'नलचम्पू' का एक पद्य (संख्या–६।६९) उद्धृत मिलता है। त्रिविक्रम को राजशेखर का समसामयिक माना जाता है अत इनका समय १० वी शताब्दी का पूर्वार्ध मानना युक्तियुक्त होगा।

'नलचम्पू' का दूसरा नाम 'दमयन्तीकथा' है। ग्रन्थ में ७ उच्छ्वास है। इसमें नल एव दमयन्ती की कथा वर्णित है। हृदयग्राही श्लेष का प्रयोग त्रिविक्रम की विशेषता है। भोजराज तथा विश्वनाथ कविराज ने अपने समालोचना-ग्रन्थो में 'नलचम्पू' से उदाहरण दिये हैं, इससे इस ग्रन्थ का महत्त्व सिद्ध हो जाता है। त्रिविक्रम स्वयं अपने ग्रन्थ को श्लेष-प्रधान कहते हैं—'भङ्गश्लेष-कथाबन्धं दुष्करं कुर्वता मया' (नलचम्पू–१।२२)। उदाहरणों के द्वार इनकी कविता से परिचय प्राप्त कीजिए—

'सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ॥'†

अर्थात् वाल्मीकि जी को नमस्कार है जिन्होंने ऐसी विचित्र एवं सुन्दर रामायण की कथा का निर्माण किया जो दोषयुक्त ('दूषण' नामक राक्षस के वर्णन से युक्त) होने पर भी दोषरहित है और खर अर्थात् कठोर ('खर' नामक

---

* नलचम्पू–१।११; † नलचम्पू–१।६

राक्षस के वर्णन से युक्त) होने पर भी बहुत कोमल है।

मन्दमति कवि बालकों के समान होते हैं—

> 'अप्रगल्भाः पदन्यासे जननीरागहेतवः।
> सन्त्येके बहुलालाप कवयो बालका इव ॥ *

'बालक पदन्यास अर्थात् पैर रखने में अप्रगल्भ (असमर्थ) होते हैं और कवि पदों की योजना में अशक्त होते हैं। बालक अपनी 'जननी' के स्नेह ('राग') के कारण ('हेतु') होते हैं अर्थात् बालकों की मातायें उनसे प्रेम करती हैं और कुकवि लोगों (सहृदय 'जनों') के 'नीराग' (राग के अभाव अर्थात् आकर्षण-शून्यता) का कारण होते हैं। उनकी कविता के प्रति लोगों को अनुराग नहीं होता। बालक बहुत सी लार (लाला) को पी जाया करते हैं और ये कवि बहुत ('बहुल') बकवास (आलाप) करते हैं। उनकी कविता में तत्त्व नहीं होता।

(२) त्रिविक्रमभट्ट–के द्वारा रचित 'मदालसाचम्पू'–'नलचम्पू' के रचयिता त्रिविक्रमभट्ट ही 'मदालसाचम्पू' के रचयिता हैं। इस ग्रन्थ का विशेष विवरण नहीं प्राप्त होता है तथापि प्रसङ्गवश यहाँ उसका उल्लेख मात्र किया जा रहा है।

(३) सोमदेवसूरि—(१० वीं शताब्दी) के द्वारा रचित 'यशस्तिलक-चम्पू'—प्रकृत ग्रन्थ का निर्माण कवि ने ९५९ ईसवी में किया। सोमदेव राष्ट्रकूट के राजा कृष्ण के राज्यकाल में थे। यह ग्रन्थ जैनधर्म के प्रचारहेतु लिखा गया प्रतीत होता है। इसका कथानक भी अतीव मार्मिक है। अवन्तिनरेश यशोधर अपनी रानी के कपट व्यवहार के कारण विरक्त हो जाते हैं और जैनधर्म स्वीकार कर लेते हैं। राजा के वध के पश्चात् उसका अनेक योनियों में जन्म होता है। ग्रन्थकार ने अन्त में प्रतिपादित किया है कि जैनधर्म के सिद्धान्तों पर आचरण करने से मनुष्य का उद्धार हो सकता है। विनोदपूर्ण रोचक शैली में ग्रन्थ का प्रणयन किया गया है। क्या जो कवि नहीं है, कविता नहीं करता है वह काव्य के गुण-दोषों की समीक्षा नहीं कर सकता? क्या जो व्यक्ति भोजन बनाने में निपुण नहीं है वह भोजन का आनन्द नहीं ले सकता? उसके सुस्वादु एवं कुस्वादु के विषय में अभिज्ञ नहीं होता?—

> 'अकर्तापि स्वयं लोकः कामं काव्यपरीक्षकः।
> रसपाकानभिज्ञोऽपि भोक्ता वेत्ति न किं रसम् ॥'

---

* नलचम्पू १।६।

क्या नदी, सरोवर, समुद्र या वापी में गोता लगाने—डूबने उतराने—से ही पुण्य होता है ? यदि ऐसा है तो जलचर जीवों को स्वर्ग पहले मिलना चाहिए (वे आजन्म पानी में ही रहते हैं) तथा औरों को बाद में—

'सरित्सरोवारिधिवापिकासु निमज्जनोन्मज्जनमात्रमेव ।
पुण्याय चेत्तर्हि जलेचराणां स्वर्गः पुरा स्यादितरेषु पश्चात् ॥'

(४) हरिश्चन्द्र—(९०० ई०) का लिखा हुआ 'जीवन्धरचम्पू'—यह जैन सम्प्रदाय का काव्य है। इसका कथानक गुणभद्र के 'उत्तरपुराण' से लिया गया है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ पर वादीभसिंह के दो ग्रन्थों का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। वादीभसिंह का एक गद्य काव्य—'गद्यचिन्तामणि' है और दूसरा पद्यों में लिखा हुआ 'क्षत्रचूडामणि' है। 'जीवन्धरचम्पू' में सरल एवं मधुर गद्य-पद्य के दर्शन होते हैं। इसका गद्य बाण के गद्य से प्रभावित प्रतीत होती है। इस कृति के द्वारा कवि के जैनधर्म के प्रचार के प्रयास को सफल कहा जायेगा।

(५) भोज—(११ वीं शताब्दी) द्वारा प्रणीत 'रामायणचम्पू'—धारा नगरी के राजा भोज (१०१८–१०३६ ईसवी) इस चम्पू के निर्माता हैं। भोज ने इस ग्रन्थ को केवल 'किष्किन्धाकाण्ड' तक ही लिखा था। बाद में लक्ष्मणभट्ट ने युद्धकाण्ड और वेंकटराज ने उत्तरकाण्ड लिखकर इसमें जोड़ा। जैसा कि इसका नाम है इसमें रामायण की कथा का वर्णन है। अलङ्कारों का अधिक प्रयोग इस काव्य की विशेषता है।

(६) अनन्तभट्ट—प्रणीत 'भारतचम्पू'—महाभारत की कथा को आधार बनाकर १२ स्तवकों में इस चम्पू का निर्माण किया गया है। वैदर्भी शैली में लिखा गया प्रकृत काव्य अतीव सरल एवं मनोहर है। नवीन कल्पनाओं के द्वारा ग्रन्थ में चारुता की वृद्धि हो गई है।

(७) सोड्ढल कृत 'उदयसुन्दरीकथाचम्पू'—गुजराती कायस्थ सोड्ढल ने इस काव्य की रचना की। ये कोंकण के राजा मुम्मुणिराज के आश्रय में रहते थे। यह काव्य बाणकृत 'हर्षचरित' से सर्वथा प्रभावित है। इसमें राजा मलयवाहन तथा राजकुमारी उदयसुन्दरी के विवाह की कथा का वर्णन है। कवि ने अपना परिचय भी दिया है। भाषा एवं भाषा दोनों की दृष्टियों से यह ग्रन्थ मनोहर है।

(८) तिरुमलाम्बा—द्वारा प्रणीत 'वरदाम्बिकापरिणयचम्पू'—राजा अच्युत राय की पत्नी तिरुमलाम्बा अतीव विदुषी थी जिन्होंने इस चम्पूकाव्य की रचना की है। इसका रचना-काल १५२९ ईसवी से १५४० ईसवी के बीच माना जाता है। इस चम्पू में राजा अच्युत राय तथा वरदाम्बिका की प्रणयकथा का वर्णन है। समासों की दीर्घता तथा वाक्यों की जटिलता के साथ-साथ विचित्र कल्पनाओं से युक्त यह ग्रन्थ अवश्य प्रशंसनीय है।

(९) समरपुङ्गव दीक्षित—विरचित 'यात्राप्रबन्धचम्पू'—इसका समय १६ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। कवि महोदय ने अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ दक्षिण भारत की यात्रा की थी। उसी के संस्मरण इस काव्य के विषय हैं। प्रकृति-वर्णन ढंग का है तथा वर्ण्यविषय हृदयग्राही है।

(१०) कर्णपूर का 'आनन्दवृन्दावनचम्पू'—इसका समय १६वीं शताब्दी है। इसमें कृष्ण की बाल्यलीला का मनोरम चित्रण उपस्थित किया गया है।

(११) वेंकटाध्वरी द्वारा प्रणीत 'विश्वगुणादर्शचम्पू'—१७ वीं शताब्दी में इस काव्य में एक नवीन शैली को जन्म दिया गया है। विश्वावसु एवं कृशानु संज्ञक दो गन्धर्व विमान से तीर्थ यात्रा करते हैं तथा तत्तत् स्थलों के गुणदोषों का वर्णन बड़े ही मार्मिक शब्दों में करते हैं।

(१२) जीवगोस्वामी—(१७ वीं शताब्दी) का 'गोपालचम्पू'—इस चम्पू को गौडीय वैष्णव अपना सिद्धान्त ग्रन्थ मानते हैं। इसमें कृष्ण के ... का हृदयस्पर्शी वर्णन है।